प्रवचन-क्रम

1. यौन : जीवन का ऊर्जा-आयाम 2
2. युवक और यौन 21
3. प्रेम और विवाह.... 34
4. जनसंख्या विस्फोट.... 50
5. विद्रोह क्या है 74
6. युवक कौन.... 94
7. युवा चित्त का जन्म 106
8. नारी और क्रांति 125
9. नारी--एक और आयाम 140

पहला प्रवचन

यौन : जीवन का ऊर्जा-आयाम

प्रश्नः धर्मशास्त्रों में स्त्रियों और पुरुषों का अलग रहने में और स्पर्श आदि के बचने में क्या चीज है? इतने इनकार में अनिष्ट वह नहीं होता है?

धर्म के दो रूप हैं। जैसे कि सभी चीजों के होते हैं। एक स्वस्थ और एक अस्वस्थ।

स्वस्थ धर्म तो जीवन को स्वीकार करता है। अस्वस्थ धर्म जीवन को अस्वीकार करता है। जहां भी अस्वीकार है, वहां अस्वास्थ्य है। जितना गहरा अस्वीकार होगा, उतना ही व्यक्ति आत्मघाती है। जितना गहरा स्वीकार होगा, उतना ही व्यक्ति जीवनोन्मुख है।

तो जिन धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि स्त्री-पुरुष दूर रहें, स्पर्श भी न करें, मैं उन्हें रुग्ण मानता हूं, बीमार। स्वस्थ तो मैं उस बात को मानता हूं, जो जीवन में, जीवन की जो सहजता है, जो जीवन का निसर्ग भाव है, उसका जहां अंगीकार हो।

तो ऐसे धर्मशास्त्र भी हैं, जो स्त्री-पुरुष के बीच किसी तरह की कलह, द्वंद्व और संघर्ष नहीं करते। उन्हीं तरह के धर्मशास्त्रों का नाम तंत्र है। और मेरी मान्यता यह है कि जितनी गहरी पहुंच तंत्र की है जीवन के संबंध में, उतनी उन क्षुद्र शास्त्रों की नहीं है, जहां निषेध किया गया है।

मैं तो समर्थन में नहीं हूं। क्योंकि मेरी मान्यता ऐसी है कि जगत और परमात्मा दो नहीं हैं। परमात्मा जगत की ही गहनतम अनुभूति है। और मोक्ष कोई संसार के विपरीत नहीं है; बल्कि संसार के अनुभव में ही जाग जाने का नाम है।

तो मैं पूरे जीवन को स्वीकार करता हूं--उसके समस्त रूपों में। स्त्री-पुरुष इस जीवन के दो अनिवार्य अंग हैं। और एक अर्थ में पुरुष भी अधूरा है, और एक अर्थ में स्त्री भी अधूरी है। उनकी निकटता जितनी गहन हो सके, उतने ही ऐक्य का अनुभव शुरू होता है। तो मेरी दृष्टि में, स्त्री-पुरुष के प्रेम में परमात्मा की पहली झलक उपलब्ध होती है। और जिस व्यक्ति को स्त्री-पुरुष के प्रेम में परमात्मा की पहली झलक उपलब्ध नहीं होती, उसे कोई भी झलक उपलब्ध होनी मुश्किल है।

स्त्री-पुरुष के बीच जो आकर्षण है, वह अगर हम ठीक से समझें, तो जीवन का ही आकर्षण है। और गहरे समझें, तो स्त्री-पुरुष के बीच का जो आकर्षण है, वह परमात्मा की ही लीला का हिस्सा है, उसका ही आकर्षण है। तो मेरी दृष्टि में, उनके बीच के आकर्षण में कोई भी पाप नहीं है।

लेकिन, क्या कारण से स्त्री-पुरुष को कुछ धर्मों ने, कुछ धर्मशास्त्रों ने, कुछ धर्मगुरुओं ने एक शत्रुता का भाव पैदा करने की कोशिश की?

गहरे में एक ही कारण है। मनुष्य के अहंकार पर सबसे बड़ी चोट प्रेम में पड़ती है। जब एक पुरुष एक स्त्री के प्रेम में पड़ जाता है, या एक स्त्री एक पुरुष के प्रेम में पड़ती है, तो उन्हें अपना अहंकार तो छोड़ना ही पड़ता है। प्रेम की पहली चोट अहंकार पर होती है। तो जो अति अहंकारी हैं, वे प्रेम से बचेंगे। बहुत अहंकारी व्यक्ति प्रेम नहीं कर सकता, क्योंकि वह दांव पर लगाना पड़ेगा प्रेम में। प्रेम का मतलब ही यह है कि मैं अपने से ज्यादा

मूल्यवान किसी दूसरे को मान रहा हूं। उसका मतलब ही यह है कि मेरा सुख गौण है अब, किसी दूसरे का सुख ज्यादा महत्वपूर्ण है। और जरूरत पड़े तो मैं अपने को पूरा मिटाने को राजी हूं, ताकि दूसरा बच सके।

और फिर प्रेम की जो प्रक्रिया है, उसका मतलब ही है कि एक-दूसरे में लीन हो जाना। शरीर के तल पर यौन भी इसी लीनता का उपाय है--शरीर के तल पर। प्रेम और गहरे तल पर इसी लीनता का उपाय है। लेकिन दोनों लीनताएं हैं--एक-दूसरे में डूब जाना और एक हो जाना; एक फ्यूजन, फासला मिट जाए और कहीं मेरा मैं खो जाए; अस्तित्व रह जाए, मैं का कोई भाव न रहे।

तो प्रेम से सबसे ज्यादा पीड़ा उनको होती है, जिनको अहंकार की कठिनाई है। तो अहंकारी व्यक्ति प्रेम नहीं कर सकता। अहंकारी व्यक्ति प्रेम के भी विरोध में हो जाएगा और अहंकारी व्यक्ति काम के भी विरोध में हो जाएगा।

ऐसे अहंकारी व्यक्ति अगर धार्मिक हो जाएं, तो उनसे जो धर्म का जन्म होता है, वह रुग्ण धर्म है। और ऐसे अहंकारी व्यक्ति अक्सर धार्मिक हो जाते हैं; क्योंकि उन्हें जीवन में अब कहीं जाने का उपाय नहीं रह जाता। जिसका प्रेम का द्वार बंद है, उसके जीवन का भी द्वार बंद हो गया। और जिसे प्रेम का अनुभव नहीं हो रहा है, उसके जीवन में दुख ही दुख रह गया। अब इस दुख से ऊबने के लिए, उबरने के लिए कोई रास्ता खोजेगा। वह प्रेम में खो नहीं सकता तो अब वह कहीं और खोने का रास्ता खोजेगा। तो वह परमात्मा की कल्पना करेगा, मोक्ष की कल्पना करेगा। लेकिन उसका परमात्मा और मोक्ष अनिवार्य रूप से संसार के विरोध में होगा; क्योंकि वह संसार के विरोध में है। संसार से मतलबः वह प्रेम के विरोध में है, शरीर के विरोध में है। तो उसका जो परमात्मा है--उसकी कल्पना का--वह विपरीत होगा संसार के। एक अर्थ में संसार का दुश्मन होगा।

ऐसा जो आदमी धार्मिक हो जाए तो रुग्ण धर्म पैदा हो जाता है। और ऐसे लोग अक्सर धार्मिक हो जाते हैं। ऐसे लोग शास्त्र भी लिखते हैं, ऐसे लोग अपने विचार का प्रचार भी करते हैं। और दुनिया में बहुत दुखी लोग हैं, वे इस आशा में कि इस तरह के विचारों से आनंद मिलेगा, वे भी इस तरफ झुकते हैं। और दुनिया में सभी के पास थोड़ा-बहुत अहंकार है। तो जिनके भी अहंकार को थोड़ा बढ़ावा पाने की इच्छा हो, वे भी इस ओर झुक जाते हैं।

अहंकारी आदमी हमेशा आक्रामक होता है। तो वह अपने धर्म को लेकर भी आक्रमण करता है दूसरों पर। उनको कनवर्ट करता, उनको समझाता-बुझाता, बदलता है। और चूंकि वह प्रेम, काम, जीवन के सामान्य संबंधों से अपने को दूर रखता है, स्वभावतः ऐसा लगता है कि वह बड़ा त्याग कर रहा है। और जिन चीजों में हमें सुख मिल रहा है, उन सबको छोड़ रहा है, इसलिए हमारे मन में भी आदर पैदा होता है।

आदर तभी पैदा होता है जब हमसे विपरीत कोई कुछ कर रहा हो। जो हम न कर पा रहे हों, वह कोई कर रहा हो, तो आदर पैदा होता है। और वह आक्रामक है, अहंकारी है। वह सब भांति अपने विचार को हमारे ऊपर थोपने की कोशिश करता है। हम उससे राजी न भी हो पाएं, तो कम से कम हममें वह अपराध-भाव, गिल्ट तो पैदा कर ही देता है कि तुम पाप कर रहे हो। तुम जो कर रहे हो वह गलत है और पाप है, इतना भाव तो वह पैदा कर ही देता है।

इस भाव के बड़े मजेदार परिणाम होते हैं। इसका बड़ा परिणाम तो यह होता है कि जो आप कर रहे हैं वह छोड़ तो नहीं पाते, क्योंकि वह स्वाभाविक है, लेकिन अब उसे करते वक्त आपको अपराध की प्रतीति होने लगती है। तो प्रेम जो है, वह पाप हो जाता है। प्रेम भी करते हैं और भीतर कहीं गहरे में यह भी लगता रहता है

कि कुछ गलत कर रहे हैं, कुछ पाप कर रहे हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रेम से जो भी सुख मिलता था, वह मिलना बंद हो जाता है। प्रेम जारी रहता है और सुख इस अपराध-भाव के कारण मिलना बंद हो जाता है।

जिस चीज में भी अपराध-भाव पैदा हो जाए, उसमें सुख नहीं मिल सकता।

सुख के लिए पहली बात जरूरी है कि मन में अहोभाव हो, अपराध-भाव न हो।

तो पुरुष का मन है कि स्त्री को प्रेम करे, स्त्री का मन है कि पुरुष को प्रेम करे, यह स्वाभाविक आकर्षण है, नैसर्गिक, कुछ इसमें बुरा नहीं है। लेकिन अब वह जो अपराध पैदा कर देंगे त्यागी, वह जहर बन जाएगा। तो स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के प्रति आकर्षित भी होंगे और साथ ही विकर्षित भी होंगे। एक दोहरी धारा, द्वंद्व और विपरीत स्थिति बन जाएगी, एक भीतरी कंट्राडिक्शन खड़ा हो जाएगा।

यह सारी मनुष्य-जाति में उन्होंने पैदा कर दिया। इसके उनको फायदे हैं। क्योंकि जब आपको प्रेम से कोई सुख नहीं मिलता, तो उनकी बात बिल्कुल ठीक लगने लगती है कि न तो इसमें कोई सुख है... और सुख नहीं मिलता इसलिए नहीं कि प्रेम में सुख नहीं है, सुख नहीं मिलता इसलिए कि उन्होंने पाप का भाव पैदा कर दिया। अगर कोई बच्चे को समझा दे कि श्वास लेने में पाप है, तो श्वास लेने में दुख मिलने लगेगा। हम जो भी समझा दें, उसमें दुख मिलने लगेगा। दुख जो है, वह कोई भी गलत काम हम कर रहे हैं, उससे मिलने लगेगा। वह काम गलत है या नहीं, यह सवाल नहीं है।

जैसे, जैन घर का बच्चा रात को खाना खाए, तो लगता है कि पाप हो रहा है। जब मैंने पहली दफा रात में खाना खाया तो मुझे वॉमिट हो गई, एकदम उलटी हो गई। क्योंकि चौदह साल तक मैंने कभी रात खाना खाया नहीं था, घर पर कोई कभी खाता नहीं था। और रात खाना पाप था--जाहिर। और जब पहली दफे विद्यार्थियों के साथ पिकनिक पर चला गया और वहां कोई जैन नहीं था, सब हिंदू थे, उन्होंने दिन में कोई फिक्र न की भोजन बनाने की या खाने की। और मेरे अकेले के लिए मुझे अच्छा भी नहीं लगा कि कुछ कहूं। दिन भर की थकान, पहाड़ी पर चढ़ना, दिन भर की भूख, और फिर रात उनका खाना बनाना मेरे ही सामने। तो भूख भी, उनके खाने की गंध भी, तो मैं राजी हो गया। फिर मैंने सोचा कि इतने लोग इतने दिन से खाकर अभी तक नरक नहीं गए, एक दिन खा लेने से मैं नरक चला जाऊंगा? नरक तो नहीं गया, लेकिन रात मेरी तकलीफ में पड़ गई, मैं नरक में ही रहा; क्योंकि मुझे उलटी हो गई खाने के बाद। चौदह साल तक जिस बात को पाप समझा हो, उसको एकदम से भीतर ले जाना बहुत मुश्किल है। उस दिन जब मुझे उलटी हो गई तो मैंने यही सोचा कि बात पाप ही है, नहीं तो उलटी कैसे हो जाती!

तो विसियस सर्किल हैं, विचार के भी दुष्टचक्र हैं। जिस चीज को हम पाप मान लेते हैं, उसमें सुख नहीं मिलता, दुख मिलने लगता है। और जब दुख मिलने लगता है, तो उसे और भी पाप मान लेने का गहरा भाव हो जाता है। जितना गहरा पाप मानते हैं, उतना ज्यादा दुख मिलने लगता है।

इस भांति पांच हजार साल से त्यागवादी आदमी की गर्दन पकड़े हुए हैं। और वे बीमार लोग हैं, रुग्ण हैं। जीवन को जो भोग नहीं सकते--क्योंकि जीवन के भोगने के लिए जो अनिवार्य शर्त है, उसको वे पूरी नहीं कर सकते, उनका अहंकार बाधा बनता है--तब फिर वे कहना शुरू कर देते हैं कि सब अंगूर खट्टे हैं। और वह इतना प्रचार किया हुआ है अंगूर खट्टे होने का कि अंगूर खट्टे हैं या नहीं, जब आप उनको मुंह में डालते हैं तो आपके दांत कहते हैं कि खट्टे हैं। प्रचार इतना बड़ा है।

इन सारे लोगों ने स्त्री-पुरुष के बीच बहुत तरह की बाधाएं खड़ी की हैं। और चूंकि इनमें अधिक लोग पुरुष थे, इसलिए स्वभावतः स्त्री को उन्होंने बुरी तरह निंदित किया। ये सब शास्त्र रचने वाले चूंकि अधिकतर

पुरुष थे, इसलिए स्त्री को उन्होंने बिल्कुल नरक का द्वार बना दिया। तो नरक के द्वार को छूने में खतरा तो है ही फिर। नरक के द्वार के पास होने में खतरा है।

और जितना इन लोगों ने यह भाव पैदा किया कि स्त्री नरक का द्वार है, स्त्री-पुरुष के संबंध पाप हैं, अपराध हैं--ये भी सामान्य मनुष्य थे, इनके भीतर भी स्त्री के प्रति वही आकर्षण था जो किसी और के मन में है। और जब इन्होंने इतना विरोध किया तो यह आकर्षण और बढ़ गया। निषेध से आकर्षण बढ़ता है। जिस चीज का इनकार किया जाए, उसमें एक तरह का रस पैदा होना शुरू हो जाता है। तो ये दिन-रात इनकार करते रहे तो इनका रस भी बढ़ गया। और जब इनका रस बढ़ गया, तो अगर इस तरह के लोग ध्यान करने बैठें, प्रार्थना करने बैठें, तो स्त्री ही उनको दिखाई पड़ने वाली है। वे भगवान को देखना चाहते हैं, लेकिन दिखाई स्त्री पड़ती है! तब स्वभावतः उनको और भी पक्का होता चला गया कि स्त्री ही नरक का द्वार है। कहां हम भगवान को जब भी पाने जाना चाहते हैं, तभी स्त्री बीच में आ जाती है!

सारे ऋषि-मुनियों को स्त्रियां सताती हैं। इसमें स्त्रियों का कोई कसूर नहीं है, इसमें ऋषि-मुनियों के मन की भाव-दशा है। ये ऋषि-मुनि स्त्री के खिलाफ लड़ रहे हैं। कोई ऊपर इंद्र बैठा हुआ नहीं है कि अप्सराएं भेज दे। मगर इन सबको अप्सराएं घेर लेती हैं--नग्न स्त्रियां, सुंदर स्त्रियां--ये इनके मन के रूप हैं! जो इन्होंने दबाया है और जिसको निषेध किया है, वह इतना प्रगाढ़ हो गया है, वह इतना प्रगाढ़ हो गया है कि अब वह बिल्कुल इनको वास्तविक मालूम पड़ता है।

तो इनके कहने में भी गलती नहीं है कि इन्होंने जो अप्सराएं देखीं, बिल्कुल वास्तविक हैं। यह अत्यंत रुग्ण चित्त की दशा है, विक्षिप्त चित्त की दशा है--जब कि कोई वासना इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि उस वासना से जो स्वप्न खड़ा होता है वह वास्तविक मालूम होता है। यह पागल मन की हालत है। और इन सबको स्त्रियां ही सताती हैं, क्योंकि इनका पूरे जीवन का सारा संघर्ष स्त्री से है।

जिससे संघर्ष है, वह सताएगा। जिस दिन आपने उपवास किया है, उस दिन भोजन के स्वप्न आ जाएंगे। और अगर दो-चार महीने का आपको लंबा उपवास करना पड़े, तो आप डिल्यूजन की हालत में हो जाएंगे--मस्तिष्क फिर जो भी देखेगा, भोजन ही दिखाई पड़ेगा; कुछ भी सुनेगा, भोजन ही सुनाई पड़ेगा; कोई भी गंध आएगी, वह भोजन की ही गंध होगी। इससे कहीं कोई संबंध बाहर का नहीं है। इसके भीतर जो अभाव पैदा हो गया है, वह प्रक्षेपण कर रहा है।

तो जब इन ऋषि-मुनियों को ऐसा लगा कि स्त्री सब तरह डिगाती है और उनके ध्यान की अवस्था नष्ट हो जाती है, और वे बड़ी ऊंचाई पर चढ़ रहे थे और नीचे गिर जाते हैं--कोई न गिरा रहा है, न कहीं वे चढ़ रहे थे, सब उनका मन का खेल है; वे जिससे लड़ रहे थे, जिससे भाग रहे थे, उसी से खिंच कर नीचे गिर जाते हैं--तो फिर स्वभावतः उन्होंने कहा कि स्त्री को देखना भी नहीं, छूना भी नहीं। स्त्री बैठी हो किसी जगह, तो उस जगह पर एकदम मत बैठ जाना; कुछ काल व्यतीत हो जाने देना, ताकि उस स्त्री की ध्वनि-तरंगें उस स्थान से अलग हो जाएं।

अब यह बिल्कुल रुग्ण-चित्त लोगों की दशा है। इतने भयभीत लोग! और जो स्त्री से इतने भयभीत हों, वे कुछ और पा सकेंगे, इसकी संभावना नहीं है। इस तरह के लोगों ने जो बातें लिखी हैं, मैं मानता हूं कि आज नहीं कल हम उनको विक्षिप्त, मनोविकारग्रस्त शास्त्रों में गिनेंगे।

मेरा कोई समर्थन इनको नहीं है। मेरा तो मानना ऐसा है कि जीवन में मुक्ति का एक ही उपाय है कि जीवन का जितना गहन अनुभव हो सके! और जिस चीज के हम जितने गहन अनुभव में उतर जाते हैं, उतना ही उससे हमारा छुटकारा हो जाता है।

अगर निषेध से रस पैदा होता है, तो अनुभव से वैराग्य पैदा होता है। मेरी जो दृष्टि है कि जिस चीज को हम जान लेते हैं, जानते ही हमारा उससे जो विक्षिप्त आकर्षण था, वह शांत होने लगता है।

और स्वभावतः काम का आकर्षण सर्वाधिक है। होगा! क्योंकि हम उत्पन्न काम से होते हैं। और हमारे शरीर का एक-एक कण जीवाणु काम-कण है। माता-पिता के जिस कामाणु से निर्माण होता है, फिर उसी का विस्तार हमारा पूरा शरीर है। तो हमारा रोआं-रोआं काम से निर्मित है। पूरी सृष्टि काम-सृष्टि है। इसमें होने का मतलब ही है कामवासना के भीतर होना।

जैसे हम श्वास ले रहे हैं हवा में, उससे भी गहरा हमारा अस्तित्व कामवासना में है। क्योंकि श्वास लेना तो बहुत बाद में शुरू होता है। बच्चा जब मां के पेट से पैदा होगा और जब रोएगा, तब पहली श्वास लेगा। इसके पहले भी नौ महीने वह जिंदा रह चुका है। और वह नौ महीने जो जिंदा रह चुका है, वह तो उसकी काम-ऊर्जा का ही सारा फैलाव है।

तो वह जो काम-ऊर्जा से हमारा सारा शरीर निर्मित है, कण-कण निर्मित है, श्वास से भी गहरा हमारा उसमें अस्तित्व छिपा हुआ है, उससे भाग कर कोई बच नहीं सकता। क्योंकि भागोगे कहां? वह तुम्हारे भीतर है, तुम ही हो। तो मैं कहता हूं, उससे भागने की कोई जरूरत नहीं। और भागने वाला उपद्रव में पड़ जाता है। तो जीवन में जो है, उसका सहज अनुभव, उसका स्वीकार।

और जितना गहरा अनुभव होता है, उतने हम जाग सकते हैं।

इसलिए मैं तंत्र के पक्ष में हूं, त्याग के पक्ष में नहीं हूं। और मेरा मानना है, जब तक त्यागवादी धर्म दुनिया से समाप्त नहीं होते, तब तक दुनिया सुखी नहीं हो सकती, शांत भी नहीं हो सकती। सारी रोग की जड़ इनमें छिपी है।

तंत्र की दृष्टि बिल्कुल उलटी है। तंत्र कहता है कि अगर स्त्री-पुरुष के बीच आकर्षण है, तो इस आकर्षण को दिव्य बनाओ। इससे भागो मत, इसको पवित्र करो। अगर कामवासना इतनी गहरी है तो इससे तुम भाग सकोगे भी नहीं। तो इस गहरी कामवासना को ही क्यों न परमात्मा से जुड़ने का मार्ग बनाओ। और अगर सृष्टि काम से हो रही है, तो परमात्मा को हम कामवासना से मुक्त नहीं कर सकते, नहीं तो कुछ होने का उपाय नहीं रह जाता। अगर कहीं भी कोई शक्ति है इस जगत में, तो उसका हमें किसी न किसी रूप से कामवासना से संबंध जोड़ना ही पड़ेगा। नहीं तो इस सृष्टि के होने का कहीं कोई आधार नहीं रह जाता। इस सृष्टि में जो कुछ हो रहा है, यह किसी न किसी रूप में परमात्मा से जुड़ा है।

और हम आंखें खोल कर चारों तरफ देखें तो सारा काम का फैलाव है। आदमी में तो हम बेचैन हो जाते हैं, वे ऋषि-मुनि भी आदमी में बेचैन हो जाते हैं, लेकिन और तरफ उनको खयाल में नहीं आता। सुबह जब पक्षी गीत गा रहे हैं तो उनको लगता है कि बड़ी दिव्य बात हो रही है। लेकिन वह पक्षी जो पुकार लगा रहा है वह सब कामवासना की है। और जब फूल खिलते हैं ऋषि की वाटिका में तो वह सोचता है, बड़ी अदभुत बात है। और फूलों को जाकर भगवान को चढ़ा रहा है। लेकिन सब फूल कामवासना के रूप हैं। वे वीर्याणु हैं उनमें। उनमें छिपा बीज है जन्म का। और फूलों पर तितलियां घूम कर उनके वीर्याणु को लेकर दूसरे फूलों से जाकर मिला रही हैं। तो फूल देख कर तो ऋषि खुश होता है, क्योंकि उसको खयाल में नहीं है कि फूल जो है वह कामवासना

का रूप है। पक्षी का गीत सुन कर खुश होता है। मोर नाचता है तो खुश होता है। कोयल पुकारती है तो खुश होता है। लेकिन उसे पता नहीं। सिर्फ आदमी में ही क्यों परेशान है? आदमी से क्या परेशानी है? वही काम!

लेकिन आदमी के काम से वह परिचित है, वह उसकी खुद की पीड़ा है। बाकी पूरी प्रकृति काम का फैलाव है। यहां जो भी दिखाई पड़ रहा है, उस सबके भीतर काम छिपा हुआ है। सारा फैलाव, सारा खेल उसका है। तो जो काम इतने गहरे में है, वह परमात्मा से जुड़ा होगा।

तंत्र कहता है, सबसे ज्यादा गहरी चीज कामवासना है, क्योंकि उससे ही जन्म होता है, उससे ही जीवन फैलता है। तो इस गहरे तंतु का हम उपयोग कर लें। इस तंतु से लड़ें न, बल्कि इस तंतु को धारा बना लें, जिसमें हम बह जाएं।

और कामवासना को अगर कोई धारा बना ले, ध्यान बना ले, समाधि बना ले, तो दोहरे परिणाम होते हैं। वह जो ऋषि निरंतर चाहता है--त्यागवादी--कि छुटकारा हो जाए, वह भी हो जाता है। और दूसरा परिणाम यह होता है कि यह व्यक्ति कामवासना से भी छूट जाता है और कामवासना के कारण अहंकार से भी छूट जाता है।

तंत्र की साधना ही स्वस्थ साधना है।

तो मैं तो विरोध में नहीं हूं। न तो मैं विरोध में हूं कि स्पर्श से बचें वे। न बच सकते हैं। ऐसा ऊपर से बचेंगे तो भीतर अप्सराएं सताएंगी। उससे इस पृथ्वी की स्त्रियों में कुछ ज्यादा उपद्रव नहीं है। बचने की बात ही, मैं मानता हूं, गलत है। भागना क्यों? डरना क्यों? जीवन जैसा है, उसके तथ्य में जागरूक होना। अगर मेरे मन में किसी चीज के प्रति आकर्षण है, तो मैं इस आकर्षण को समझने की कोशिश करूं--क्या है यह आकर्षण? क्यों है यह आकर्षण? और इस आकर्षण को मैं कैसे सृजनात्मक करूं कि इससे मेरा जीवन खिले और विकसित हो। यह मेरा विध्वंस न बन जाए। और इस आकर्षण का मैं उपयोग कैसे करूं, यह सवाल है।

तो इस आकर्षण का गहरा उपयोग ध्यान के लिए हो सकता है। और स्त्री-पुरुषों की सन्निधि बड़ी मुक्तिदायी हो सकती है। अगर कभी ऐसा हुआ कि मनुष्य और ज्यादा समझदार, और ज्यादा विचारपूर्ण हुआ, तो हम स्त्री-पुरुष के बीच की सारी बाधाएं तोड़ देंगे। स्त्री-पुरुष के बीच की बाधाएं तोड़ते ही हमारी नब्बे परसेंट बीमारियां विलीन हो जाएंगी। क्योंकि उन बाधाओं के कारण सारे रोग खड़े हो रहे हैं। हमको दिखाई नहीं पड़ता। और चक्र ऐसा है कि जब रोग खड़े होते हैं तो हम सोचते हैं, और बाधाएं खड़ी करो, ताकि रोग खड़े न हों!

अभी मैं एक गांव में था। और कुछ बड़े विचारक और संत-साधु मिल कर अश्लील पोस्टर विरोधी एक सम्मेलन कर रहे थे। तो उनका खयाल है कि अश्लील पोस्टर लगता है दीवाल पर, इसलिए लोग कामवासना से परेशान रहते हैं। जब कि हालत दूसरी है, लोग कामवासना से परेशान हैं, इसलिए पोस्टर में मजा है। यह पोस्टर कौन देखेगा? पोस्टर को देखने कौन जा रहा है?

पोस्टर को देखने वही जा रहा है, जो स्त्री-पुरुष के शरीर को देख ही नहीं सका। जो शरीर के सौंदर्य को नहीं देख सका, जो शरीर की सहजता को अनुभव नहीं कर सका, वह पोस्टर देख रहा है। पोस्टर इन्हीं गुरुओं की कृपा से लग रहे हैं, क्योंकि ये इधर स्त्री-पुरुष को मिलने-जुलने नहीं देते, पास नहीं होने देते, तो इसका परवर्टेड, विकृत रूप है कि कोई गंदी किताब पढ़ रहा है, कोई गंदी तस्वीर देख रहा है, कोई फिल्म बना रहा है। क्योंकि आखिर यह फिल्म कोई आसमान से नहीं टपकती, लोगों की जरूरत है।

इसलिए सवाल यह नहीं है कि गंदी फिल्म क्यों है, सवाल यह है कि लोगों में जरूरत क्यों है? यह तस्वीर जो पोस्टर लगती है, कोई ऐसे ही मुफ्त पैसा खराब करके नहीं लगाता, इसका कोई उपयोग है। इसे कहीं कोई देखने को तैयार है, मांग है इसकी। वह मांग कैसे पैदा हुई है?

वह मांग हमने पैदा की है। स्त्री-पुरुष को दूर कर-कर के वह मांग पैदा कर दी। अब वह मांग को पूरा करने जब कोई जाता है तो हमको लगता है कि गड़बड़ हो रही है। तो उसको और बाधाएं डालो। उसको जितनी वे बाधाएं डालेंगे, वह नये रास्ते खोजता है मांग के। क्योंकि मांग तो अपनी पूर्ति मांगती है।

तो मैंने उनको कहा कि अगर सच में ही चाहते हो कि ये पोस्टर विलीन हो जाएं, तो स्त्री-पुरुषों के बीच की बाधा कम करो। क्योंकि मैं नहीं देखता--आदिवासी समाज है, जहां स्त्री-पुरुष सहज हैं, करीब-करीब नग्न हैं--वहां कोई पोस्टर लगा है? या कोई पोस्टर में रस ले?

जब पहली दफे ईसाई मिशनरी ऐसे कबीलों में पहुंचे जहां लोग नग्न थे, तो उनको यह भरोसा ही नहीं आया कि कोई नग्न स्त्री में भी रस ले सकता है। क्योंकि रस लेने का कोई कारण नहीं है। जब तक हम वस्त्रों में ढांके हैं और दीवालें और बाधाएं खड़ी किए हैं, तब रस पैदा होगा। रस पैदा होगा, तो हम सोचते हैं कि--और डर पैदा हो रहा है--तो इसको रोको। मनुष्य की अधिक उलझनें इसी भांति की हैं--कि जो सोचता है कि सीढ़ियां हैं सुलझाव की, वही उपद्रव हैं, वही बाधाएं हैं।

तो मैं तो मानता हूं कि बच्चे बड़े हों, साथ बड़े हों; लड़के और लड़कियों के बीच कोई फासला न हो; साथ खेलें, दौड़ें, बड़े हों; साथ स्नान करें, तैरें; ताकि स्त्री-पुरुष के शरीर की नैसर्गिक प्रतीति हो। और वह प्रतीति कभी भी रुग्ण न बन जाए। और उसके लिए कोई बीमार रास्ते न खोजने पड़ें।

और यह बिल्कुल उचित ही है। यह उचित ही है कि पुरुषों की स्त्री के शरीर में उत्सुकता हो, स्त्री की पुरुषों के शरीर में उत्सुकता हो। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। और इसमें कुछ भी कुरूप नहीं है और कुछ भी अशोभन नहीं है।

अशोभन तो तब होता है... जो हमने किया है उससे अशोभन हो गई बात। अब जिस स्त्री से मेरा प्रेम हो उसके शरीर में मेरा रस होना स्वाभाविक है, नहीं तो प्रेम ही नहीं होगा। लेकिन एक अनजान स्त्री को रास्ते पर मैं धक्का मार दूं भीड़ में, यह अशोभन है। लेकिन इसके पीछे ऋषि-मुनियों का हाथ है। जिस स्त्री से मेरा प्रेम है, उसे मैं अपने करीब, निकट ले लूं, उसका आलिंगन करूं, यह समझ में आने वाली बात है, इसमें कुछ बुरा नहीं है। लेकिन जिस स्त्री को मैं जानता ही नहीं, जिससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है, रास्ते पर मौका भीड़ में मिल जाए तो मैं उसको धक्का मार दूं। उस धक्के में कुछ बीमार बात है। वह धक्का क्यों पैदा हो रहा है?

वह धक्का किसी जरूरत की कमी है। जिससे प्रेम हो सकता है, उसको मैं कभी पास नहीं ले पाता! वह रुग्ण हो गई मेरी वृत्ति, अब मैं धक्का मारने में भी रस ले रहा हूं। तो भीड़ में एक धक्का ही मार कर चला गया तो भी समझो कि कुछ सुख पाया। और सुख इसमें मिल नहीं सकता; ग्लानि मिलेगी मन को, निंदा मिलेगी, अपराध का भाव पैदा होगा; तो मैं समझूंगा कि मैं पाप कर रहा हूं। और जितना मैं समझूंगा कि मैं पाप कर रहा हूं, उतना स्त्री और मेरे बीच का फासला बढ़ता जाएगा। और जितना फासला बढ़ेगा, इसको मिटाने की मैं बेहूदी कोशिशें करूंगा। और यह चलता रहेगा।

तो मैं तो स्त्री-पुरुष को निकट लाना चाहता हूं। इतने निकट कि उनको यह प्रतीति नहीं रह जानी चाहिए कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष है। स्त्री-पुरुष होना चौबीस घंटे का बोध नहीं होना चाहिए। वह बीमारी है, अगर इतना बोध बना रहता है तो। स्त्री-पुरुष होना चौबीस घंटे का बोध नहीं होना चाहिए। वह मिटेगा तभी जब

हम बीच के फासले मिटाएंगे। और इसके गहरे परिणाम हों कि समाज की अश्लीलता, गंदा साहित्य, गंदी फिल्में, बेहूदी वृत्तियां, वे अपने आप गिर जाएं। और एक ज्यादा स्वस्थ मनुष्य का जन्म हो। और यह जो स्वस्थ मनुष्य है, इसकी मैं आशा कर सकता हूं कि यह धार्मिक हो सके। क्योंकि जो स्वस्थ ही नहीं हो पाया अभी, उसके धार्मिक होने की कोई आशा मैं नहीं मानता।

तो एक तो धर्म है जो अधर्म से भी बुरा है, अस्वस्थ धर्म। उससे तो अधर्म ठीक। और एक धर्म है जो अधर्म से श्रेष्ठ है, और उसे मैं कहता हूं स्वस्थ धर्म। जीवन की समझ, प्रतीति, अनुभव, होश--इससे पैदा हुआ धर्म। स्त्री-पुरुष जितने निकट होंगे, उतना ही यह जो उपद्रव है, शांत हो जाए। और यह उपद्रव शांत हो जाए तो असली खोज शुरू हो। क्योंकि आदमी बिना आकर्षण के नहीं जी सकता। और अगर स्त्री-पुरुष का आकर्षण शांत हो जाता है तो वह और गहरे आकर्षण की खोज में लग जाता है। बिना आकर्षण के जीना मुश्किल है। वही प्रयोजन है। और जो स्त्री-पुरुष में ही लड़ता रहता है, उसका आकर्षण तो कायम रहता है, दूसरे आकर्षण का कोई उपाय नहीं है।

परमात्मा मेरे लिए प्रकृति में ही गहरे अनुभव का नाम है। और जिस दिन वह अनुभव होने लगता है, उस दिन ये सारे, जिनसे हम बचना चाहते थे, इनसे हम बच जाते हैं, पर बिना कोई चेष्टा किए। एक तो कच्चा फल है, जिसको कोई झटका देकर तोड़ ले। और एक पका हुआ फल है जो वृक्ष से गिर जाता है। न वृक्ष को खबर होती है कि वह कब गिर गया; न फल को खबर होती है कि कब गिर गया। न फल को लगता है कि कोई बड़ा भारी प्रयास करना पड़ा। न, कहीं कुछ होता नहीं, सब चुपचाप हो जाता है।

तो जीवन के अनुभव से एक वैराग्य का जन्म होता है, जिसको मैं पका हुआ फल कहता हूं। और जीवन से लड़ने से एक वैराग्य का जन्म होता है, जिसको मैं कच्चा फल कहता हूं। सब तरफ घाव छूट जाते हैं। और उन घावों का भरना मुश्किल है।

तो मैं तो ऐसे किसी शास्त्रों के पक्ष में नहीं हूं। मेरा तो मानना यह है कि जो भी प्रकृति से उपलब्ध है, उसका समग्र, सर्वांगीण स्वीकार। और उसी स्वीकार से रूपांतरण है। और यही रूपांतरण गहरा हो सकता है। संघर्ष में मेरा भरोसा नहीं है।

और इसी बात को मैं आस्तिकता कहता हूं। सब त्यागियों को मैं नास्तिक कहता हूं। क्योंकि परमात्मा की सृष्टि उन्हें स्वीकार नहीं। और जिनको परमात्मा की सृष्टि स्वीकार नहीं, वे परमात्मा भी उन्हें मिल जाएगा तो स्वीकार करेंगे, मैं नहीं मानता। अस्वीकृति की उनकी आदत इतनी गहरी है कि जब वे परमात्मा को भी देखेंगे तो हजार भूलें निकाल लेंगे कि इसमें यह पाप है। और यह... ।

शॉपनहार ने कहीं कहा है कि हे परमात्मा, तू तो मुझे स्वीकार है, तेरी सृष्टि स्वीकार नहीं है।

लेकिन अगर परमात्मा स्वीकार है, तो उसकी सृष्टि अनिवार्यरूपेण स्वीकृत हो जाती है। और अगर उसकी सृष्टि स्वीकार नहीं है, तो बहुत गहरे में हम उसे भी स्वीकार नहीं कर सकते। कैसे स्वीकार करेंगे? फिर या तो हम परमात्मा से ज्यादा समझदार हो गए, उससे ऊपर अपने को रख लिया कि हम उसमें भी चुनाव करते हैं।

मेरा कोई चुनाव नहीं। मैं तो मानता हूं, जो प्रकट है, वह अप्रकट का ही हिस्सा है। जो दिखाई पड़ रहा है, उसके पीछे ही अदृश्य छिपा हुआ है। थोड़ी पर्त में भीतर प्रवेश करने की जरूरत है।

और प्रेम जितना गहरा जाता है, इस जगत में कोई और चीज इतनी गहरी नहीं जाती। मैं छुरा मार सकता हूं आपकी छाती में, वह उतना गहरा नहीं जाएगा जितना मेरा प्रेम आपके भीतर गहरा जाएगा। तो प्रेम से गहरा तो कुछ भी नहीं जाता। इसको ही जो छोड़ देता है, वह उथला सतह पर रह जाता है।

तो मेरे मन में तो ऐसे शास्त्र अनिष्ट हैं। और जितने शीघ्र उनसे छुटकारा हो उतना अच्छा। और ऐसे ऋषि-मुनियों की चिकित्सा होनी चाहिए, मानसिक रोग है उन्हें।

प्रश्नः जो अभी सब साधु-संत आते हैं, वे चमत्कार बताते हैं, उसको सब लोग बहुत मानते हैं। तो चमत्कार के विषय में आपका क्या मत है?

आदमी बहुत कमजोर है, और बहुत तरह की तकलीफों में है। उसकी तकलीफें बिल्कुल सांसारिक हैं। और सामान्य आदमी ही नहीं, सुशिक्षित, जिनको हम विशेष कहें, वे भी।

अभी एक चार-छह दिन पहले कलकत्ता से एक डाक्टर का पत्र मुझे आया। वह डाक्टर है, तबादला करवाना है कलकत्ता से बनारस। पत्नी-बच्चे बनारस में हैं। तो मुझे लिखता है कि मैं सब तरह के पूजा-पाठ करवा चुका, साधु-संतों के सब तरह के दर्शन कर चुका, सैकड़ों रुपये भी खर्च कर चुका इस पर, लेकिन अभी तक मेरा तबादला नहीं हो पाया। तब आखिरी आपकी शरण आता हूं कि तबादला करवा दें, नहीं तो मेरा भगवान से भरोसा ही उठ जाएगा।

इधर मैं देखता हूं, सौ में निन्यानबे आदमियों की तकलीफें ऐसी हैं। और जितना गरीब मुल्क होगा, उतनी ये तकलीफें ज्यादा होंगी। किसी को नौकरी नहीं, किसी को बच्चा नहीं, किसी को बीमारी है, किसी को कोई तकलीफ है--हजार तरह की तकलीफें हैं। यह जो तकलीफों से भरा हुआ आदमी है, यह चमत्कार की तलाश करता है। अगर कोई चमत्कार कर रहा है तो इसे एक आशा बंधती है कि शायद इसकी तकलीफ भी दूर हो सकती है। और तो सब आशा छूट गई है, और यह सब उपाय कर चुका, कुछ होता दिखाई इसे पड़ता नहीं। लेकिन अगर यह देख ले कि कोई आदमी हवा में से भभूत दे रहा है, तो फिर इसे भरोसा आता है कि अभी भी कुछ आशा है, मुझे भी लड़का मिल सकता है। जब हवा से भभूत आ सकती है, तो साधु के चमत्कार से बच्चा भी आ सकता है। और अगर हाथ से सोना आ जाता है और घड़ियां आ जाती हैं, तो फिर क्या दिक्कत कि मेरा तबादला न हो जाए और मुझे नौकरी न मिल जाए।

गरीब समाज है, दुखी-पीड़ित समाज है। और जब तक लोग दुखी हैं, तब तक कोई न कोई चमत्कार से शोषण करेगा। सिर्फ ठीक संपन्न समाज हो तो चमत्कार का असर कम हो जाएगा। जितनी तकलीफ होगी उतना चमत्कार का परिणाम होगा।

फिर चमत्कार क्या हैं? एक तरफ तो ये दुखी-पीड़ित लोग हैं जिनका शोषण किया जा सकता है आसानी से। ये हाथ फैलाए खड़े हैं कि इनका शोषण करो। और इनका शोषण एक ही तरह से किया जा सकता है कि इनकी वासनाओं की तृप्ति की कोई आशा बंधे। तो वह आशा कैसे बंधे?

अगर कोई बुद्ध-महावीर हो, तो वह तो आशा बंधाता नहीं। वह तो उलटे इस आदमी को कहता है कि तुम्हारे दुखों का कारण तुम्हीं हो। तो तुम दुख के बाहर कैसे जाओगे, उसका मैं रास्ता बता सकता हूं। लेकिन जिन कारणों से तुम दुखी हो, उनको पूर्ति करने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है।

लेकिन बुद्ध-महावीर के प्रति ये आदमी आकर्षित नहीं होंगे। इनकी वासना ही वह नहीं है अभी। एक आदमी ताबीज निकाल देगा, उसके प्रति आकर्षित होंगे, क्योंकि इनकी वासना के लिए रास्ता मिलता है। और ताबीज निकालना इतना आसान काम है कि सड़क पर मदारी कर रहा है उसको। जिसको हम दो पैसे देने को

भी राजी नहीं हैं। और वही मदारी कल साधु बन कर खड़ा हो जाए तो फिर हम उसके चरणों में सिर रखने को और सब कुछ रखने को राजी हैं।

तो गरीबी है, दुख है और मूढ़ता है। और मूढ़ता यह है कि साधु कर रहा है तो चमत्कार है और गैर-साधु कर रहा है तो मदारी है। और जो वे कर रहे हैं वह बिल्कुल एक चीज है। उसमें जरा भी फर्क नहीं है। बल्कि मदारी ईमानदार है और यह साधु बेईमान है। क्योंकि मदारी बेचारा कह रहा है कि यह खेल है। यही उसकी भूल है, मूढ़ों के बीच इतना साफ होना ठीक नहीं। इतना सच्चा होना, यही उसकी गलती है--कि वह कह रहा है, यह खेल है, इसमें हाथ की तरकीब है; कि आप भी चाहें तो सीख सकते हैं और कर सकते हैं। बात खतम हो गई, तो फिर हमें कोई रस नहीं है उसमें। हमें खुद में तो कोई रस है ही नहीं। जो हम ही कर सकते हैं, उसमें कोई बात नहीं रह गई। यह मदारी बताने को तैयार है कि कैसे हो रहा है। यह मदारी परीक्षा ली जाए इसके लिए तैयार है। वह आपका साधु न तो परीक्षा के लिए तैयार है, न किसी तरह के वैज्ञानिक शोध के लिए राजी है।

लेकिन फिर कारण क्या है, हम उसको इतना मूल्य देते हैं और मदारी को नहीं देते?

क्योंकि मदारी से हमारी वासना की कोई पूर्ति की आशा नहीं बंधती। ठीक है, हाथ का खेल है, बात खतम हो गई। अगर मैं हाथ के खेल से ही ताबीज निकाल रहा हूं तो बात खतम हो गई। ठीक है, अब मुझसे क्या आपको मिलेगा और। कोई हाथ के खेल से बच्चा तो पैदा नहीं हो सकता। न नौकरी मिल सकती है, न धन आ सकता है, न मुकदमा जीता जा सकता--कुछ नहीं हो सकता--न आपकी बीमारी दूर हो सकती है। हाथ का खेल तो हाथ का खेल है। ठीक है, मनोरंजन है, बात खतम हो गई।

जब मैं यह दावा करता हूं कि हाथ का खेल नहीं है, यह चमत्कार है, दिव्य शक्ति है, तब आपकी आशा बंधती है। फिर आपकी आशा का शोषण होता है।

तो मैं मानता हूं, जो भी साधु चमत्कार करते हैं, उनसे ज्यादा असाधु व्यक्ति खोजने कठिन हैं। क्योंकि असाधुता और क्या होगी इसके कि लोगों का शोषण हो! और उनकी मूढ़ता का लाभ! और धोखा! एक भी चमत्कार ऐसा नहीं है जो मदारी नहीं करते। पर अंधेपन की सीमाएं नहीं हैं। सच तो यह है कि मदारी जो करते हैं वह आपके कोई साधु नहीं कर सकते। और जो आपके साधु करते हैं वह दो कौड़ी का मदारी कोई भी करता है। और जो मदारी करते हैं वह आपका कोई साधु नहीं कर सकता। फिर भी... तो इसके पीछे कोई कारण है।

यह मैं समझा भी दूं तो मैं यह मानता नहीं कि मेरे समझाने से कोई चमत्कार में आस्था रखने वाले में कोई फर्क पड़ने वाला है। कोई फर्क नहीं। क्योंकि यह समझाने का सवाल नहीं है, उसकी जो वासना है वह तकलीफ दे रही है। उसके भीतर जो वासना है उसका प्रश्न है कि वह कैसे हल हो?

अब यह जो आदमी है, डाक्टर, जिसने मुझे लिखा, इसको मैं कितना ही समझाऊं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। क्योंकि समझाने से तबादला तो होगा नहीं। समझाने का एक ही परिणाम होगा कि यह मुझे हाथ जोड़ कर किसी और की तलाश करे। और कोई उपाय नहीं है। क्योंकि यह आदमी--इस आदमी को कुछ मालूम नहीं है, बात खतम हो गई। इतना ही इसका परिणाम होगा, और कोई परिणाम होने वाला नहीं। यह किसी और की तलाश करेगा। जो चमत्कार के तलाशी हैं... और हमारे मुल्क में ज्यादा होंगे, क्योंकि बहुत दुखी मुल्क है, बहुत पीड़ित मुल्क है, अति कष्ट में है। इतने कष्ट में यह शोषण आसान है।

मगर मेरा मानना ऐसा है कि धर्म से चमत्कार का कोई लेना-देना नहीं है। क्योंकि धर्म का वस्तुतः आपकी वासना से कोई लेना-देना नहीं है। धर्म तो इस बात की खोज है कि वह घड़ी कैसे आए जब सब वासनाएं शांत हो जाएं। कैसे वह क्षण आए जब मेरे भीतर कोई चाह न रह जाए। क्योंकि तभी मैं शांत हो पाऊंगा। जब

तक चाह है तब तक अशांति रहेगी। चाह ही अशांति है। तो धर्म की तो पूरी चेष्टा यह है कि कैसे आपके भीतर वह भावदशा बन जाए, जहां कोई चाह नहीं है, कोई मांग नहीं है। उस घड़ी ही अनुभव होगा जीवन की परम धन्यता का।

तो चमत्कार से क्या लेना-देना है? धर्म का कोई लेना-देना चमत्कार से नहीं है। और सब चमत्कार मदारी के लिए हैं। जो नासमझ मदारी हैं वे बेचारे सड़कों पर करते हैं। जो समझदार हैं, चालाक हैं, होशियार हैं, बेईमान हैं, वे साधु के वेश में कर रहे हैं। और इनको तोड़ा भी नहीं जा सकता, वह भी मैं समझता हूं, कि इनके खिलाफ कुछ भी कहो उससे कोई परिणाम नहीं होता। परिणाम उस आदमी पर हो सकता है जो वासना के पीछे न हो, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है।

एक स्त्री मेरे पास आई, उसको बच्चा चाहिए। और उसको मैं समझा रहा हूं कि सब चमत्कार मदारीगिरी है। वह उदास हो गई बिल्कुल, वह बोली कि सब मदारीगिरी है? उसको दुख हो रहा है मेरी बात सुन कर। मुझे खुद ही ऐसा अनुभव होने लगा कि मैं पाप कर रहा हूं जो इसको मैं समझा रहा हूं। क्योंकि हो बच्चा, न हो बच्चा, होने की आशा में तो वह अपना दौड़-धूप कर रही है। तो उससे मैंने कहा, तू मेरी बात की फिकर मत कर, और तू वैसे भी नहीं करेगी, तू जा कोई और खोज, कोई न कोई... पता नहीं कोई कर सके चमत्कार। उसकी आंखों में ज्योति वापस लौट आई। उसने कहा कि आप कहते हैं कि शायद कोई कर सके?

ये हमारे विश फुलफिलमेंट हैं, भीतर हमारी इच्छा है कि ऐसा हो। चमत्कार होना चाहिए, ऐसा हम चाहते हैं। इसलिए फिर कोई तैयार होकर बता देता है कि देखो, ये हो रहे हैं! और तुम चाहते थे वह इच्छा पूरी हो गई। और उन चमत्कारियों से कोई भी नहीं कहता कि जब तुम राख ही निकालते हो, तो क्यों राख निकालते हो? कुछ और काम की चीज निकालो, इस मुल्क में कुछ काम आए! क्या तुम ताबीज निकालते हो, जब निकाल ही रहे हो और चमत्कार ही दिखा रहे हो, तो फिर इस मुल्क में कुछ और बहुत चीजों की जरूरत है। और इससे क्या फर्क पड़ता है, जब राख निकल सकती है, ताबीज निकल सकता है, घड़ी निकल सकती है, तो जब एक तरकीब तुम्हारे हाथ ही आ गई तो अब कुछ भी निकल सकता है। अगर एक बूंद पानी को हम भाप बना सकते हैं, तो फिर हम पूरे सागर को भाप बना सकते हैं। नियम की बात है, जब नियम मेरे हाथ में आ गया कि शून्य से राख बन जाती है, तो अब क्या दिक्कत रही! अब कोई दिक्कत नहीं है।

ये चमत्कार दिखाने वाले इस मुल्क में दिखा रहे हैं हजारों साल से चमत्कार। और यह मुल्क रोज बीमारी और गरीबी और दुख में दबता जाता है और मरता जाता है। और ये दिखाते चले जाते हैं। इनकी वजह से, इनके चमत्कार की वजह से गरीबी नहीं मिटती। मेरा मानना है, गरीबी की वजह से इनके चमत्कार चलते हैं। थोड़ी देर को सोच लेना, इतने लोग बैठे हैं, अगर अभी यहां बाहर पता चले कि सत्य साईंबाबा मौजूद हैं, तो आपके मन में पहला खयाल क्या आएगा? और अगर कोई यह कह दे कि वह जो भी आपकी इच्छा है उनसे पूरी हो सकती है। फिर आपकी समझने में उत्सुकता नहीं रह जाएगी। फिर आप चाहेंगे कि कब यहां से छुटकारा हो। क्योंकि समझ-वमझ तो पीछे भी हो सकती है। आपको तत्काल क्या खयाल आएगा? अगर आपको पता चले कि बाहर साईंबाबा खड़े होकर आपकी इच्छा पूरी कर सकते हैं, तो आपको जो पहला खयाल आएगा वह यह नहीं आएगा कि चमत्कार मदारीगिरी है, पहला खयाल आपको यह आएगा कि आपकी वासना क्या है? फौरन आपको आपकी वासना उठ जाएगी मन में--कि तो फिर ठीक है, चल कर मैं इतनी मांग कर ही लूं।

आदमी जी रहा है अपनी वासनाओं से। वासनाग्रस्त आदमी, चमत्कार नहीं होता, ऐसा मान नहीं सकता। यह तकलीफ है। वह चाहता है कि चमत्कार होते हों। अगर एक साईंबाबा गलत हों तो कोई फिकर नहीं, यह आदमी गलत होगा। लेकिन कहीं कोई न कोई चमत्कार कर रहा होगा, कोई दूसरा ठीक होगा।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ये गलत होंगे, वे गलत होंगे, लेकिन कोई तो ठीक होगा! यह सवाल नहीं है, सब गलत सिद्ध हो जाएं--तो रोज पता चल जाता है कि फलां आदमी गलत सिद्ध हो गया, पर कोई फर्क नहीं पड़ता, चमत्कार जारी रहता है। अ गलत होता है तो ब करता है, ब गलत होता है तो स करता है। कोई न कोई करता है। कोई न कोई देखने वाला तैयार है। चमत्कार नहीं रुकते, चमत्कारी गिरते जाते हैं, चमत्कार नहीं रुकते। क्योंकि कोई बहुत मौलिक वासना की तृप्ति हो रही है। हम हैं दीन और दुखी, बड़ी चाहों से भरे, और कोई आशा नहीं दिखती कि ये चाहें पूरी हम कर पाएंगे। कोई पूरी कर दे आकाश से, तो ही एकमात्र आशा है।

इसलिए दुनिया में चमत्कार होते रहेंगे, जब तक दीनता, दुख, पीड़ा, मूढ़ता सघन हैं। और मैं नहीं देखता कि कभी भी ऐसा मौका आएगा कि आदमी इतना समझदार होगा कि चमत्कार न चलें। बहुत मुश्किल दिखता है, बहुत मुश्किल दिखता है। पांच हजार साल पहले चलते थे, तो हम सोचते थे विज्ञान विकसित नहीं हुआ है। अभी भी चलते हैं, और अब विज्ञान इतना विकसित है। लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई फर्क नहीं पड़ता। आदमी जब तक नहीं बदलता, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आप कुछ भी खोजबीन करके ले आओ, सब जाहिर कर दो।

इधर मैंने प्रयोग किए, मैं सोचा कि शायद इसका कुछ परिणाम हो! लेकिन फिर मुझे लगा नहीं होगा। मैंने दो मित्रों को राजी किया कि मैं तुम्हें लेकर घूमूं सारे मुल्क में, और जो-जो चमत्कार लोग दिखाते हैं, तुम मंच पर खड़े होकर दिखा दो। और फिर हम लोगों को समझा दें कि यह सब खेल है। मैंने कुछ मित्रों को उनके खेल दिखाए, तो उन्होंने देख कर कहा कि हां, यह होगा खेल! लेकिन सत्य साईंबाबा, वह खेल नहीं है। तब मैंने कहा कि फिजूल है, इसमें कोई मतलब नहीं है, इन दो को बेचारों को परेशान करना। वे कहेंगे कि ये हैं मदारी, लेकिन वे थोड़े ही मदारी हैं। क्या किया जा सकता है? इसमें कोई उनकी ये रक्षा कर रहे हैं, ऐसा भी नहीं है। इनको कोई लेना-देना नहीं है। लेकिन इनकी वासना! ये चाहते हैं कि कहीं तो कोई कर रहा हो चमत्कार जो सच्चा है। बस इनकी चाह है।

तो मैं तो सख्त खिलाफ हूं। क्योंकि मेरा मानना है कि इन क्षुद्र बातों में लोगों को उलझाना, उनका समय नष्ट करना है। उनके मनों को लुभाना, व्यर्थ उलझाव में बनाए रखना है। कुछ हल तो नहीं होता।

धार्मिक व्यक्ति का तो कर्तव्य एक है कि कैसे व्यक्ति का दुख शांत हो, इस दिशा में अगर वह कुछ उनको बता सके, कुछ उनको करवा सके, कुछ उनके जीवन को बदलने की कीमिया खोज सके।

बुद्ध ने कहा है कि मैं चिकित्सक हूं, वैद्य हूं। मैं कोई चमत्कार नहीं दिखा सकता, मैं तुम्हें सिर्फ औषधि की प्रक्रिया बता सकता हूं। और तुम बीमार हो। तो अगर तुम्हारी बीमारी को मिटाने की इच्छा हो तो यह औषधि का उपयोग कर सकते हो।

तो मेरा तो औषधि में भरोसा है। लेकिन इस तरह की उत्सुकता उन लोगों में होती है जो कि सच में ही शांति की खोज में हों। अब जो इस खोज में ही नहीं है, उसके लिए तो... ।

फिर मैं मानता हूं कि इतनी बड़ी दुनिया है, उसमें बहुत तरह के लोग हैं। उसमें कोई चमत्कार देखना चाहता है तो उसको देखने का हक है और कोई दिखाना चाहता है उसको दिखाने का हक है। और दोनों मजा ले

रहे हैं तो हम क्यों बीच में बाधा डालें! उनको लेने देना चाहिए। कभी समझ आएगी तो ठीक। इसमें जो देख रहे हैं उनका तो जीवन खराब हो रहा है, जो दिखा रहे हैं उनका और बुरी तरह खराब हो रहा है। क्योंकि देखने वाले तो शायद कभी जग भी जाएं--कि छोड़ो, कहां के खेल में पड़े हुए हैं! वह जो दिखाने वाला है, उसके अहंकार की इतनी तृप्ति होती रहती है, उसे खयाल भी नहीं होता।

तो मेरे लिए तो साईंबाबा जैसे लोग दया के पात्र हैं, दयनीय हैं। उनका जीवन तो बिल्कुल मिट्टी में जा रहा है। धर्म का कोई संबंध चमत्कार से नहीं है।

प्रश्नः भगवान किसी को मनाए जाते हैं।

मेरी दृष्टि में तो भगवान के सिवाय कुछ और है नहीं। कोई जागा हुआ भगवान है, कोई सोया हुआ भगवान है; कोई अच्छे भगवान, कोई बुरे। बाकी भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं है।

प्रश्नः बुरे भी होते हैं भगवान?

बिल्कुल! क्योंकि उसके सिवाय कुछ भी नहीं है। अगर बुरे को हम काट दें उससे, तो फिर बुरा होगा कैसे? होना मात्र ही उसका है। तो कोई राम की शक्ल में भगवान, कोई रावण की शक्ल में भगवान। लेकिन रावण को अगर हम कह दें कि उसमें भगवान नहीं है, तो फिर रावण के होने का कोई उपाय नहीं रह जाता। होगा कैसे वह? अस्तित्व ही उसका है।

तो हमें कठिन लगता है कि बुरे भगवान कैसे? चोर भगवान कैसे? बाकी अगर वही है, तो चोर में भी वही है। उसका ही होना अगर सब कुछ है, तो फिर कोई चीज उसके बाहर नहीं। आमतौर से हमारी धारणा ऐसी है कि भगवान कहीं कोई सातवें आकाश में बैठा हुआ कोई व्यक्ति सारी दुनिया को चला रहा है। यह बचकानी है, इसका कोई मूल्य नहीं।

भगवान से मेरा अर्थ है--अस्तित्व, होना मात्र। और जिस दिन भी कोई शुद्ध होने को समझ लेता है--अपनी उपाधियों से हट कर, अपने रोगों से हट कर--जिस दिन शुद्ध होने को थोड़ा समझ लेता है, वही भगवान हो गया। तो यह हमारा मुल्क अकेला मुल्क है जिसने हिम्मतपूर्वक यह कहा है कि सभी में भगवान है। और भगवान को अलग न रख कर हमने प्रत्येक के भीतर केंद्र पर रख दिया। वह होने का सहज गुण है। न जानो, सोए रहो, मत पहचानो--यह हो सकता है। मगर वह भी तुम्हारी मर्जी। कोई भगवान अपने को नहीं पहचानना चाहता तो क्या किया जा सकता है! वह नहीं पहचाने। लेकिन जिस दिन भी पहचानेगा, उस दिन खयाल में आ जाएगा।

तो भगवान तुमसे कोई दूर कोई अलग वस्तु है, ऐसा नहीं है--मेरी धारणा। मेरी धारणा यह है कि तुम्हारा होना ही भगवत्ता है। और जैसे मछली को पता नहीं चलता कि सागर कहां? पता भी कैसे चले, क्योंकि उसी में पैदा होती है, उसी में जीती है, उसी में मरती है। मछली को तो पता ही तब चलता है सागर का जब कोई उसे खींच कर किनारे पर निकाल लेता है।

हमारी मुसीबत यह है कि भगवान को छोड़ कर कोई किनारा भी नहीं जहां खींच कर हमको निकाला जा सके। इसलिए हमको कोई पता नहीं चलता उसके होने का कि वह क्या है? कहां है? मछली तट पर आकर

तड़फती है, तब उसको पता चलता है कि कुछ खो गया जो सदा था, लेकिन जब था तब पता भी नहीं चलता था। आदमी को भगवान के बाहर नहीं खींचा जा सकता, यही तकलीफ है। नहीं तो हमको पता चल जाए कि भगवान क्या है!

लोग कहते हैं कि भगवान मिलता नहीं। और मैं कहता हूं, चूंकि तुमने कभी खोया नहीं, यही तकलीफ है। एक दफे भी उसे खो देते तो तुम्हें मिल जाता। मिलने के लिए खोना बिल्कुल जरूरी शर्त है। और चूंकि हम उसी में जी रहे हैं, हम वही हैं, इसलिए हमें पता नहीं चलता।

फिर मेरे मन में, चूंकि मैं देखता हूं कि बुरा भी वही है, बुराई के प्रति भी मेरे मन में कुछ बुरा भाव नहीं रह जाता। यह मैं, इसको मैं एक आध्यात्मिक रूपांतरण की कीमिया मानता हूं। अगर यह मेरा खयाल हो कि सभी वही है, तो जिसको हम बुरा कहते हैं वह भी वही है। तो फिर बुराई के प्रति भी बुराई का कोई भाव नहीं रह जाता। ठीक है, वह भी ठीक है। शायद वह भी अनिवार्य हिस्सा है। शायद उसके बिना भी जगत नहीं हो सकता। जैसे अंधेरे के बिना प्रकाश नहीं हो सकेगा और मृत्यु के बिना जीवन नहीं हो सकेगा, शायद इसी तरह रावण के बिना राम भी नहीं हो सकते। शायद परमात्मा के होने के ढंग में ये दोनों बातें साथ-साथ सम्मिलित हैं कि जब भी वह राम होगा तब रावण भी होगा, नहीं तो नहीं हो सकता।

तो यह द्वंद्व जो हमें इतना विपरीत दिखाई पड़ता है, कहीं भीतर जुड़ा हुआ है। थोड़ा रावण को अलग कर लें राम की कथा से, और राम के प्राण निकल जाते हैं। रावण के बिना क्या बल है कथा में? कथा में बचेगा क्या? एक रावण को हटा लें तो पूरी रामायण व्यर्थ हो जाती है।

तो जब मैं ऐसा देखता हूं कि बुरा और भला एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, तो बुरा भी कुछ बुरा नहीं रह जाता। इसलिए मेरी कोई चेष्टा ऐसी नहीं है कि बुरे आदमी को अच्छा बनाओ। मेरी चेष्टा ऐसी है कि बुरा आदमी ठीक से बुरा हो जाए और अच्छा आदमी ठीक से अच्छा हो जाए।

मेरा आप फर्क समझ रहे हैं न?

क्योंकि बुरा आदमी अच्छा हो जाए, ऐसी मेरी कोई कोशिश नहीं, कि रावण को राम बनाओ। कुछ मतलब हल न होगा, सब खराब हो जाएगा, सब खराब हो जाएगा। और कुछ न कहो कि रावण कोई दिन राम बन जाए, तो राम को बेचारों को तत्काल रावण बनना पड़े, क्योंकि इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है, कोई उपाय नहीं है। रावण अच्छा रावण हो--शानदार--पूरी तरह प्रकट हो; और राम पूरी तरह प्रकट हों अपनी प्रतिभा में। तो ये खेल का पूरा रूप आ जाए।

तो मैं नहीं कहता किसी को कि तुम ऐसे हो जाओ। मैं कहता हूं, तुम जो हो वही तुम पूरी तरह हो जाओ। कोई ढांचा नहीं देता कि ऐसे बनो! क्योंकि मैं कौन हूं ढांचा देने वाला? तुम जो बन सकते हो वही बनो। उसमें पूरी तरह संलग्न हो जाओ। और कैसे पूरी तरह संलग्न हो सकते हो, वह मैं जरूर कहता हूं। और जिस दिन तुम जो हो वही बन जाओगे, उस दिन तुम्हें परमात्मा की प्रतीति हो जाएगी। क्योंकि जिस दिन तुम पूरे खिलोगे अपने व्यक्तित्व में--वही, वही अनुभव है उसका। व्यक्ति का पूरा खिल जाना ही, उसके भीतर जो छिपा है उसका पूरा पंखुड़ियों तक फैल जाना ही--अनुभव है।

तो मेरे लिए भगवान तो सभी हैं। और अगर इसका खयाल भी पैदा हो जाए कि मैं भी भगवान हूं, तो तुम्हारी जिंदगी बदलनी शुरू हो जाए। क्षुद्र से जोड़ना ही क्यों नाता अपना? नाता ही जोड़ना हो तो विराट से ही जोड़ लेना चाहिए।

प्रश्नः हमको चमत्कार के बाबत में थोड़ा और समझाइए। आपने जो बताया बराबर मतलब का है। लेकिन को-इंसिडेंस से कभी मेरा खुला रहना वह चमत्कार के टाइम में जब परिणाम आ जाता है, जो घटता है तो परिणाम आता है, तो को-इंसिडेंस है या ऑटो-सजेशन है कि सच्ची बात क्या है?

बहुत से कारण हो सकते हैं, लेकिन चमत्कार नहीं है। चमत्कारिक भी मालूम हो, चमत्कार नहीं है। आदमी के मन के बहुत से नियम हैं, जिनका हमें होश नहीं है। और उन नियमों के कारण बहुत सी घटनाएं घटती हैं।

एक युवक मेरे पास आता है। पहली दफा जब आया तो किसी डाक्टर ने भेजा था। उसके पेट में दर्द था, वह डाक्टर इलाज कर-कर के परेशान हो गया था। तो उसने तो सिर्फ अपनी बला टाली। क्योंकि उस डाक्टर ने मुझे कहा कि यह तो बड़ी मुश्किल बात हो गई, मैं तो इसको इसलिए हटाया कि यह रोज मेरे दवाखाने में बैठ जाता आकर। और इसकी वजह से दूसरे मरीजों पर बुरा असर पड़ता। क्योंकि यह कहता कि साल भर हो गया, अभी तक ठीक नहीं हुआ! तो मैंने इसके हाथ जोड़े और कहा कि तू उनके पास जा, अब उनसे ही ठीक होगा! हमसे ठीक नहीं होने वाला। सिर्फ बला टालने के लिए आपके पास भेजा था और यह ठीक हो गया!

वह मेरे पास आया और कहा कि मुझे अपने हाथ का छुआ हुआ पानी दे दें, वह डाक्टर ने कहा है। मैंने कहा, बात क्या है? उसने कहा कि बात पूछने की--साल भर से मुझे पेट की तकलीफ है।

और जिसको डाक्टर ठीक न कर पाया हो, वह फिर चमत्कार से ही ठीक होता है। क्योंकि डाक्टर ठीक नहीं कर पाया, उसका मतलब यह है कि शरीर में कोई रोग नहीं है। नहीं तो डाक्टर ही ठीक कर लेता, ऐसी कोई बात नहीं थी। रोग सिर्फ मन में है, उसको सिर्फ खयाल है कि पेट में दर्द है।

मैं उसको इनकार किया, उसको कहा कि यह मैं करूंगा नहीं, क्योंकि कल और लोग आ जाएं। तब उसने मेरे पैर पकड़ लिए, उसने कहा कि आप क्या कह रहे हैं, मैं किसी को बताऊंगा ही नहीं! मैंने कहा, यह बात छिपती नहीं, तू साल भर से बीमार है और अगर ठीक हो गया, तो तू तो ठीक हुआ, हम फंस गए, क्योंकि और लोग आ जाएंगे। बारह बजे रात तक मैं उसे रोके रहा। जब वह बिल्कुल छाती पीट कर रोने लगा, मेरी मां मौजूद थी वहां, उसने मुझे कहा कि यह बेचारा सिर्फ पानी ही मांगता है, तीन घंटे से मैं सुन रही हूं तुम्हारी बातचीत, इसको पानी दो--हो ठीक, न हो ठीक--झंझट मिटाओ और सो जाओ।

पर तीन घंटे उसे रोकना जरूरी था। क्योंकि जितना मैंने उसे रोका, उतना उसका पक्का होता गया कि पानी में कुछ है! नहीं तो फिर रोकने की बात भी क्या थी? मजबूरी में मैंने उसे दिया और मैंने कहा कि तू कसम खा कि किसी को बताएगा नहीं अपने घर में भी। जब उसने कसम खा ली, तब मैंने उसे पानी दिया। पानी पीते से ही वह बोला कि अरे, मेरा दर्द तो चला गया! और दर्द उसका चला गया।

न तो कोई संयोग है, न कोई चमत्कार है। उसका एक वहम था। और वहम के निकलने के लिए एक ही उपाय है कि किसी पर भरोसा आ जाए। और कोई उपाय नहीं है। वहम के निकलने का एक ही उपाय है कि उससे बड़ा वहम पैदा हो जाए। उसका वहम था कि पेट में दर्द है, अब उसका वहम है कि मैं चमत्कारी हूं। यह बड़ा वहम है। और जो झूठा पेट में दर्द पैदा कर ले, वह झूठा चमत्कारी न पैदा कर ले इसमें कठिनाई क्या है? है उसका ही खेल, मेरा कोई लेना-देना नहीं है उसमें। कल तक वह पेट में दर्द पैदा कर रहा था, डाक्टर को साल भर तक जिसने हराया, वह कोई छोटा-मोटा आदमी नहीं है--वहम पैदा कर सकता है। और दर्द जैसा वहम पैदा कर लिया, जिसमें दुख ही पाया। तो यह तो बड़ा सुखद था मामला। उसने, घूंट अंदर नहीं गया कि उसने कहा

कि गजब, यह तो चमत्कार हो गया! और उसने कहा कि वह कसम-वसम मैं नहीं मानूंगा, क्योंकि मेरी मां की तबीयत खराब है।

और आप जान कर हैरान होंगे कि वह एक बोतल रखने लगा, जिसको मुझसे छुआ कर ले जाता था, और मरीजों को ठीक करने लगा। क्योंकि उसको देख कर मरीज... उसका पूरा मोहल्ला जानता था कि वह तो क्रानिक मरीज है, वह कोई ठीक होने वाला प्राणी नहीं। वह ठीक हो गया, तो उससे लोग मांगने लगे कि किस तरकीब से? और अनेकों को वह ठीक करने लगा।

अब मैं उसको समझाऊं भी तो समझाने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि वह ठीक हो गया है। और ठीक होने का एक नियम है, सौ में से नब्बे बीमारियां मानसिक हैं, इसलिए नब्बे बीमारियां तो चमत्कार से ठीक हो ही सकती हैं। वे जो दस बीमारियां हैं जो मानसिक नहीं हैं, उनका भी चमत्कार से असर हो सकता है, आपको भुलाई जा सकती हैं। जैसे कि झूठी बीमारी पैदा हो सकती है, वैसे ही सच्ची बीमारी भूल सकती है।

हिप्नोसिस में दो तरह के प्रयोग हैं। अभी किसी को सम्मोहित किया जाए, और एक खाली कुर्सी रख दी जाए। जब वह सम्मोहित हो तब उसको कहा जाए कि खाली कुर्सी पर उसका कोई परिचित व्यक्ति आकर बैठा गया। फिर उससे कहो, आंखें खोलो! वहां कुर्सी खाली है, वह देखेगा बराबर कि फलां आदमी बैठा हुआ है, जो नहीं है वह दिखाई पड़ रहा है। इससे उलटा भी हो जाता है, जो कुर्सी पर बैठा हुआ आदमी है, उसको कहो कि कुर्सी खाली है, यहां कोई नहीं है। फिर उससे आंख खोलने को कहो, उसको दिखाई नहीं पड़ेगा।

हमारा मन जो देखना चाहे, वह न हो तो भी दिखाई पड़ सकता है। और हमारा मन जो देखना न चाहे, तो जो हो वह भी नहीं दिखाई पड़ेगा। अब इसके लिए जरूरी है कि एक बहुत गहरी आस्था का भाव पैदा हो जाए। चमत्कारी व्यक्ति उतना ही काम कर रहा है कि वह उतना भरोसा दिलवा रहा है कि ठीक।

अब इसमें कठिनाइयां ये हैं कि अगर चमत्कारी व्यक्ति... जैसे मैंने यह बात आपसे कह दी, अब आपके पेट में दर्द हो तो मैं कुछ नहीं कर सकता। यह बेकाम है, मेरा चमत्कार काम नहीं करेगा। आपके पेट में दर्द हो तो मैं तभी आपको ठीक कर सकता हूं, जब मेरे आस-पास मैं हवा बना कर रखूं पूरी की पूरी कि मैं चमत्कारी हूं। इसमें जरा भी एक्सप्लेनेशन खतरनाक है। इसमें जरा सी व्याख्या साफ हो गई आपकी तो फिर आपको फायदा मुझसे नहीं हो सकता। आपको फायदा इसी आधार पर हो सकता है कि मैं चमत्कारी हूं, मैं फायदा करता हूं। अगर मैं आपको कहूं कि आपसे आपको ही फायदा हो गया है, मैं सिर्फ बहाना था। तो हो सकता है दर्द चला गया हो वह भी वापस लौट आए। बिल्कुल लौट सकता है! क्योंकि उसका मतलब है कि चमत्कार... आपका अपने पर भरोसा है ही नहीं, यही तो तकलीफ है, इसलिए कोई और चाहिए। आत्मविश्वास की कमी आपकी बीमारियों का आधार है। तो कोई आपको चाहिए जो आत्मविश्वास दिला दे, वह किसी भी तरह से दिला दे।

तो जितना प्रतिष्ठित हो वह विश्वास उतना फायदे का है। जैसे अगर आपको मुझे सच में ठीक करना है तो मेरे आस-पास दस-पच्चीस लोग चाहिए, जो आपके आते से ही बताने लगें--किसी की टांग ठीक हो गई, किसी का कान ठीक हो गया। और ये अपने आप इकट्ठे हो जाते हैं, इनको इकट्ठा करने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। क्योंकि अगर मेरे पास दस आदमी आएं और उनमें से दो ठीक हो जाएं, तो जो आठ ठीक नहीं होंगे वे किसी दूसरे को तलाशेंगे, वे यहां काहे के लिए आएंगे! वे जो दो ठीक हो गए, वे यहां आएंगे। मेरे आस-पास इस तरह के लोगों की भीड़ इकट्ठी हो जाएगी जो मुझसे ठीक हुए। और जब एक नया आदमी आता है बीमारी लिए हुए, तो बीमारी तो वह छोड़ना ही चाहता है, यहां देखता है--इसका यह छूट गया, उसका वह छूट गया। मेरे आने के

पहले ही चमत्कार काफी हो चुका होता है। उसके मेरे पास आने की बात है, वह ऊंट पर आखिरी तिनका रखना है, वह ठीक हो जाएगा।

यह जो ठीक होना है, यह सीधे मन के नियम से हो रहा है। और चूंकि आप अपनी बीमारियां पैदा कर रहे हैं, इसलिए चमत्कार दिखाए जा रहे हैं। नहीं तो कहीं कोई चमत्कार की जरूरत नहीं है।

पर ये चमत्कार खतरनाक हैं। खतरनाक इसलिए हैं कि आपकी मूल जो बीमारी की आधारशिला थी वह नहीं बदलती, बीमारी बदल जाती है। इस आदमी का पेट ठीक हो गया, लेकिन यह आदमी तो वही का वही है। कल यह सिरदर्द पैदा कर लेगा, फिर उसको किसी चमत्कार की जरूरत है। परसों यह पैर में तकलीफ पैदा कर लेगा। इसका मन तो वही का वही है, बीमारी एक तरफ से हटा दी, अब यह दूसरी तरफ से पकड़ लेगा। इस आदमी को कोई लाभ नहीं हो रहा है। क्योंकि लाभ तो इसको तभी हो सकता है जब यह समझ ले कि बीमारी मैं पैदा कर रहा हूं, और होशपूर्वक उस बीमारी को छोड़ दे, तो फिर यह आदमी दुबारा बीमारी पैदा नहीं करेगा।

तो अब मेरे सामने दो विकल्प रहे सदा कि क्या मैं आपकी एक बीमारी में सहायता करके छोड़ दूं, दूसरी बीमारी आप पैदा करें।

मेरे लिए सरल काम वही था कि आपकी एक बीमारी ठीक कर दी, आपको लगा कि बिल्कुल ठीक हो गया, बात खतम हुई। उसमें समझाने-बुझाने की कोई भी जरूरत नहीं है। समझाने-बुझाने का काम ही नहीं है उसमें बिल्कुल। उसमें तो चमत्कारी पुरुष जितना चुप रहे उतना अच्छा है। क्योंकि आपमें बुद्धि डालना ठीक नहीं, अबुद्धि से ही आपको फायदा हो रहा है।

दूसरा यह है कि मैं आपको समझाऊं कि आपकी सारी बीमारी, सारे दुख की जड़ क्या है! मगर तब मुझे चमत्कारी होने का कोई उपाय नहीं है। तब तो मैं आपके साथ संघर्ष करूं, आपकी बुद्धि को निखारूं, तोडूं, मिटाऊं, नया बनाऊं कि किसी दिन ऐसा क्षण आ जाए कि न तो आप झूठी बीमारी पकड़ें, न झूठे चमत्कारों की जरूरत रहे। आप मुक्त हो जाएं भीतर अपनी बीमारी से--अपने बल से--उसमें आपकी सहायता करूं।

सच्चा शिक्षक मैं उसको कहता हूं, जो आपको सहायता करे स्वतंत्र होने के लिए कि एक दिन आप मुक्त हो जाएं और स्वतंत्र हो जाएं, अपने पैर पर खड़े हो जाएं। और झूठा शिक्षक मैं उसको कहता हूं, जो आपकी बीमारी भी ठीक करे, लेकिन उसी कारण से करे जिस कारण से बीमारी थी।

मैं एक कहानी कहता रहा हूं। एक घर में एक मेहमान आकर रहा। तो मेहमान जवान था, और बिगड़ न जाए, तो घर के लोगों ने उसको डरवा रखा था कि बाजार न जाए, रात सिनेमा न जाए। बीच में एक मरघट पड़ता था, तो कह रखा था कि उस मरघट से गुजरना बहुत खतरनाक है। भूत-प्रेत! तो उसे भूत-प्रेत का डर पैदा हो गया। तो वह रात तो नहीं जाता था बस्ती की तरफ, लेकिन धीरे-धीरे डर इतना बढ़ा कि दिन में भी वह अकेला न जाए। तो घर के लोगों ने कहा, यह तो मुसीबत हो गई। वे भूत-प्रेत जिनसे रात में डरवाया था, वे कोई कंपार्टमेंट तो मानते नहीं, वे दिन में भी डरवाएंगे। डर ही तो कारण था, डर पकड़ गया, अब वह दिन में भी कहे कि कोई साथ चलो तो वह बस्ती में जाएगा अंदर। तो फिर उन्होंने कहा, कोई उपाय करना पड़े।

तो एक फकीर के पास ले गए। तो उस फकीर ने कहा कि इसमें कोई दिक्कत की बात नहीं। यह ताबीज मैं बांधे देता हूं, इस ताबीज की इतनी ताकत है कि कोई भूत-प्रेत पास नहीं आ सकता। तू बिल्कुल ताबीज पहन कर मरघट से निकल जा।

ताबीज पहन कर वह आदमी मरघट से निकले, वहां कोई भूत तो था नहीं, कोई आया भी नहीं, लेकिन वह समझा कि ताबीज! अब वह ताबीज के बिना एक मिनट न रहे, क्योंकि ताबीज अगर रात छोड़ कर भी रख दे तो उसे घबड़ाहट लगे कि कहीं भूत-प्रेत पास न आ जाएं। अब वह ताबीज की मुसीबत हो गई! मगर बीमारी वही की वही है। भूत-प्रेत से डरता था, अब ताबीज से डरने लगा--कि कहीं ताबीज खो जाए, कोई ताबीज चुरा ले, या ताबीज गिर जाए, या ताबीज के साथ कोई अशिष्टता हो जाए, या ताबीज अपवित्र हो जाए, या कुछ हो जाए। अब वह चौबीस घंटे ताबीज से घिर गया, बीमार वहीं का वहीं है--कल भूत सता रहे थे, अब ताबीज सता रहा है। अब उसको ताबीज से छुटकारा करवाना। हम छुटकारा करवा सकते हैं दूसरी चीज पकड़ा कर, मूल आधार वही रहे।

मेरी प्रक्रिया सारी इतनी है कि आपको कोई ताबीज न देना पड़े। आपकी बीमारी है, तो चाहे थोड़ी देर लगे, मुश्किल पड़े--कोई फिकर नहीं, उससे भी प्रौढ़ता आएगी--लेकिन बीमारी जाए, नई बीमारी बिना पकड़े। इसको ही मैं कहूंगा कि असली चमत्कार है, बाकी सब धोखाधड़ी है। और मन इतनी कुशलता से खड़ा करता है कि हमें खयाल नहीं है।

खोज कहती है कि सौ में से केवल तीन सांप में जहर होता है, सत्तानबे सांपों में जहर होता ही नहीं। लेकिन आदमी तीन परसेंट से ज्यादा मरते हैं। और कोई भी सांप काटे और मरने का डर पैदा हो जाता है। और जहर है नहीं उसमें, आप मरते कैसे हैं? सांप में जहर है ही नहीं, और आदमी को काटा और आदमी मर गया। आदमी सांप से कम मरता है, सांप ने काटा इससे मरता है। असली जहर सांप में नहीं है, आदमी के मन में है कि सांप ने काट खाया! फिर चाहे चूहे ने ही काटा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, आदमी मर जाएगा। इसलिए सांप झाड़ा जा सकता है, क्योंकि कोई जहर तो होता नहीं। सत्तानबे मौके पर सांप का झाड़ने वाला सफल होगा। क्योंकि जहर तो होता ही नहीं, आदमी का कोई वास्तविक कारण नहीं है मरने का, सिर्फ यह खयाल।

तो मेरे एक मित्र जो सांप झाड़ने का काम करते हैं, उन्होंने सांप पाल रखे हैं। यह जरूरी है। जब उनके लड़के को सांप ने काट खाया, तो वे भागे मेरे पास आए कि आप कुछ करो। मैंने कहा कि तुम तो न मालूम कितनों के झाड़ चुके। उन्होंने कहा, वह काम इस पर नहीं करेगा। लड़का जानता है! वह जो तरकीब है वह लड़का जानता है। यह ज्ञान के साथ यह खराबी है। उस लड़के से भी मैंने पूछा कि तू क्यों घबड़ा रहा है? तेरे बाप को... । उसने कहा, उनका मुझे पता है। मुझ पर न चलेगा उनका काम! क्योंकि मैं खुद ही उनका सांप छोड़ता हूं।

वह जब सांप कोई काटता है, तो सांप उन्होंने पाल रखे हैं, तो वे भारी मंत्र पढ़ेंगे और मुंह से फसूकर गिरेगा, फिर वे चिल्लाएंगे-चीखेंगे, फिर वे सांप को आवाज देंगे। फिर जिस सांप ने काटा है वह सांप आएगा, बाहर दरवाजे से चलता हुआ अंदर आएगा। जब वह मरीज देखता है काटा हुआ कि सांप आ गया, तो वह भी चमत्कृत हो जाता है--कि जिस सांप ने काटा था! कभी-कभी छह-छह घंटे लग जाते, क्योंकि सांप बहुत दूर है, वह आए तब! फिर सांप आता है, वह सांप आकर बिल्कुल कंपने लगता है और सिर पटकने लगता है झाड़ने वाले के सामने। तो मरीज आधा तो ठीक हो ही गया, उसने कहा, गजब का चमत्कार है! फिर वे सांप को कहते हैं कि वापस जहां उसको काटा है, उसको वापस उसका खून पीओ। तो वे सांप मुंह लगा कर वहां से--वे सब ट्रेंड सांप हैं--दो-चार बूंद खून की टपक आती हैं! वे कहते हैं, बस। जहर उसने वापस ले लिया।

उनके लड़के को काट लिया। अब वह लड़का कहे कि हम खुद ही छोड़ते हैं, इसलिए बड़ी मुसीबत है। और बाप भी कहे कि मेरा काम नहीं चलेगा इसमें, आप कुछ करो।

तो इस सारे चमत्कार की दुनिया में आपकी वे बीमारियां दूर हो रही हैं जो कभी थी ही नहीं। इसका यह मतलब नहीं है कि आप तकलीफ नहीं पा रहे थे। आप तकलीफ पा रहे थे, आप मर भी जाते, यह भी हो सकता है। और लाभ आपको पहुंचाया जा रहा है, इसलिए लाभ पहुंचाने वाले को दोष देने का भी कोई कारण नहीं है। जब तक आप हो, तब तक किसी को झूठा सांप झाड़ना पड़ेगा। यह आपकी वजह से उपद्रव है।

आप जान कर हैरान होंगे कि ऐसी घटनाएं घटी हैं... बहुत प्रसिद्ध घटना है सूफी जुन्नैद के बाबत; वह निरंतर कहा करता था कि उसने एक आदमी को मरते देखा। वह एक कॉफी हाउस में बैठा हुआ था और गपशप कर रहा था, कुछ लोग और बैठे हुए थे। और एक आदमी आया। उस कॉफी हाउस के मालिक ने कहा, अरे, तुम अभी जिंदा हो?

उस आदमी ने कहा, क्या बात करते हो! तुमको किसी ने कहा कि मैं मर गया?

उसने कहा, नहीं, किसी ने कहा नहीं; हमने सोचा हुआ था; भूल हुई। साल भर पहले जब तुम यहां रुके थे, तो तुम्हारे साथ तीन आदमी और रुके थे उस रात यहां, चारों ने रात जो खाना खाया था यहां वह विषाक्त हो गया था। तुम तो आधी रात उठ कर चले गए, तुम्हें कहीं जाना था यात्रा पर, बाकी तीन मर गए। तो हम यही सोचते थे कि तुम मर गए होओगे।

वह साल भर बाद वापस लौटा था। यह सुनते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ा। वह जो आदमी था, साल भर पहले... ।

जुन्नैद ने लिखा है, जब मैंने उसको बेहोश होकर गिरते देखा, तो मुझे दुनिया के सब चमत्कार समझ में आ गए। अब यह जो आदमी है यह गिर पड़ा--तीन मर गए, विषाक्त भोजन--साल भर का फासला ही मिट गया, उसको खयाल ही न रहा कि यह साल भर पहले की बात है। उसको होश में लाने के लिए पड़ोस से झाड़ने-फूंकने वाले बुलाने पड़े, बामुश्किल वह होश में आया।

आदमी का मन है और उसके नियम हैं, उनसे सारा खेल है।

दूसरा प्रवचन

युवक और यौन

एक कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहूंगा।

एक बहुत अदभुत व्यक्ति हुआ है। उस व्यक्ति का नाम था, नसरुद्दीन। एक मुसलमान फकीर था। एक दिन सांझ अपने घर से बाहर निकला था किन्हीं मित्रों से मिलने के लिए, द्वार पर ही बचपन का बिछुड़ा हुआ एक साथी घोड़े पर से उतरा। बीस वर्षों बाद वह मित्र उसे मिला था। गले वे दोनों मिल गए। लेकिन नसरुद्दीन ने कहा कि तुम ठहरो घड़ी भर, मैं किन्हीं को वचन दिया हूं, उनसे मिल कर अभी लौट आता हूं। दुर्भाग्य कि वर्षों बाद तुम मिले हो और मुझे अभी घर से जाना पड़ेगा, लेकिन मैं जल्दी ही लौट आऊंगा।

उस मित्र ने कहा, तुम्हें छोड़ने का मेरा मन नहीं, वर्षों बाद हम मिले हैं। उचित होगा कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूं। रास्ते में तुम्हें देखूंगा भी, तुम से बात भी कर लूंगा। लेकिन मेरे कपड़े सब धूल से भरे हैं। अच्छा होगा, अगर तुम्हारे पास दूसरे कपड़े हों तो मुझे दे दो।

फकीर ने एक कपड़े की जोड़ी, बादशाह ने उसे भेंट की थी। सुंदर कोट था, पगड़ी थी, जूते थे। वह अपने मित्र के लिए निकाल लाया। उसने उसे कभी पहना नहीं था। सोचा था, कभी जरूरत पड़ेगी तो पहनूंगा। फिर फकीर था, वे कपड़े बादशाही थे, हिम्मत भी उसकी पहनने की पड़ी नहीं थी।

मित्र ने जल्दी वे कपड़े पहन लिए। जब मित्र कपड़े पहन रहा था, तब नसरुद्दीन को लगा कि यह तो भूल हो गई। इतने सुंदर कपड़े पहन कर वह मित्र तो एक सम्राट मालूम पड़ने लगा और नसरुद्दीन उसके सामने एक फकीर, एक भिखारी मालूम पड़ने लगा। रास्ते पर लोग मित्र की तरफ ही देखेंगे, जिसके कपड़े अच्छे थे। लोग तो सिर्फ कपड़ों की तरफ ही देखते हैं और तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। जिनके घर ले जाऊंगा, वे भी मित्र को ही देखेंगे। क्योंकि हमारी आंखें इतनी अंधी हैं कि सिवाय कपड़ों के और कुछ भी नहीं देखतीं। उसके मन में बहुत पीड़ा होने लगी कि ये कपड़े पहना कर मैंने भूल कर ली है।

लेकिन फिर उसे खयाल आया कि मेरा प्यारा मित्र है, वर्षों के बाद मिला है, क्या अपने कपड़े भी मैं उसको नहीं दे सकता हूं? इतना नीच, इतनी क्षुद्र मेरी वृत्ति है! क्या रखा है कपड़ों में? समझाता हुआ वह अपने को चला, लेकिन रास्ते पर सारी नजरें उसके मित्र के कपड़ों पर अटक गई थीं। रास्ते पर जिसने भी देखा वही गौर से देखने लगा। वह मित्र बड़ा सुंदर मालूम पड़ रहा था। जब भी कोई उसके मित्र को देखता, उसके मन में चोट लगती कि कपड़े मेरे हैं और देखा मित्र जा रहा है! फिर अपने को समझाता कि कपड़े क्या किसी के होते हैं? मैं तो शरीर को तक अपना नहीं मानता तो कपड़ों को अपना क्या मानना? इसमें क्या हर्जा हो गया?

समझाता-बुझाता अपने को उस घर पहुंचा। भीतर जाकर--जैसे ही अंदर गया, परिवार के लोगों की नजरें उसके मित्र के कपड़ों पर अटक गईं--फिर उसे चोट लगी, ईर्ष्या मालूम हुई, मेरे ही कपड़े हैं और मैं ही अपने कपड़ों के कारण दीन-हीन हो गया हूं! बड़ी भूल हो गई। फिर अपने को समझाया, फिर अपने मन को दबाया। फिर मित्र का परिचय दिया। घर के लोग पूछने लगे, कौन हैं ये? कहा, मेरे मित्र हैं बचपन के, बहुत अदभुत व्यक्ति हैं। जमाल इनका नाम है। रह गए कपड़े, सो कपड़े मेरे हैं।

घर के लोग बहुत हैरान हुए। मित्र भी हैरान हुआ। नसरुद्दीन भी कह कर हैरान हुआ। सोचा भी नहीं था कि ये शब्द मुंह से निकल जाएंगे। लेकिन जो दबाया था, वह निकल जाता है। जो दबाओ, वह निकलता है; जो

सप्रेस करो, वह प्रकट होगा। इसलिए भूल कर गलत चीज मत दबाना, अन्यथा जीवन सारी गलत चीज की अभिव्यक्ति बन जाता है।

घबरा गया बहुत। सोचा भी नहीं था कि निकल जाएगा। मित्र भी बहुत हतप्रभ हो गया। घर के लोग भी सोचने लगे, यह क्या बात कही! बाहर निकल कर मित्र ने कहा कि क्षमा करो, अब मैं तुम्हारे साथ दूसरे घर में नहीं जाऊंगा। यह तुमने क्या बात कही? नसरुद्दीन की आंखों में आंसू आ गए। क्षमा मांगने लगा। कहने लगा, भूल हो गई। जबान पलट गई।

जबान कभी भी नहीं पलटती है, ध्यान रखना! जो भीतर दबा हो, वह कभी-कभी जबान से निकल जाता है। जबान पलटती कभी भी नहीं।

क्षमा कर दो, अब ऐसी भूल नहीं होगी। कपड़ों में क्या रखा है! लेकिन कैसे निकल गई यह बात? मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि कपड़े किसके हैं!

सोचा यही था। आदमी वही नहीं कहता है जो भीतर सोचता रहता है। कहता कुछ और है, सोचता कुछ और है। कहने लगा, मैंने तो सोचा भी नहीं, कपड़े का तो मुझे खयाल भी नहीं आया था। यह बात कैसे निकल गई! और घर से चलने और इस घर तक आने में सिवाय कपड़े के उसे और कुछ भी खयाल नहीं आया था। आदमी बहुत बेईमान है। जो उसके भीतर खयाल आता है, कभी कहता भी नहीं बाहर कि ये खयाल आते हैं। और जो बाहर बताता है, वह भीतर बिल्कुल नहीं होता है। आदमी सरासर एक झूठ है।

मित्र ने कहा, मैं चलता हूं तुम्हारे साथ, लेकिन अब यह कपड़ों की बात... ।

नसरुद्दीन ने कहा, कपड़े तुम्हारे ही हो गए तुमने पहने। अब मैं इन्हें लूंगा भी नहीं। कपड़ों में क्या रखा है?

कह तो वह रहा था कि कपड़ों में क्या रखा है, लेकिन दिखाई पड़ रहा था कि कपड़ों में ही सब कुछ रखा है। वे कपड़े बहुत सुंदर थे। वह मित्र बहुत अदभुत मालूम पड़ रहा है। चले रास्ते पर। नसरुद्दीन फिर अपने को समझाने लगा कि ये कपड़े दे ही दूंगा मित्र को। लेकिन जितना सोचता था, उतना ही मन होता था--एक बार भी पहने नहीं, एक बार भी आंखें इन कपड़ों पर लोगों की रुकी नहीं, कैसे दे दूंगा? लेकिन अपने को समझाया कि भूल हो गई। क्षमा में दे देना चाहिए। और अब! अब कभी यह खयाल भी नहीं लाऊंगा अपने मन में कि ये कपड़े मेरे हैं।

दूसरे घर में पहुंचा--सम्हल कर, संयम से।

संयमी आदमी हमेशा खतरनाक होता है। क्योंकि संयम का मतलब होता है कि उसने कुछ भीतर दबा रखा है। सच्चा आदमी संयमी नहीं होता। सच्चा आदमी सिर्फ सच्चा होता है। उसके भीतर कुछ भी दबा नहीं होता है। संयमी आदमी हमेशा झूठा होता है। जो वह ऊपर से दिखाई पड़ता है, उससे ठीक उलटा उसके भीतर दबा होता है। उसी को दबाने की कोशिश में वह संयमी हो गया होता है। संयमी के भीतर हमेशा बारूद है, जिसमें कभी भी आग लग जाए तो बहुत खतरनाक है। और चौबीस घंटे दबाना पड़ता है जो दबाया है उसे। एक क्षण को भी फुरसत दी, छुट्टी दी, कि वह निकल कर बाहर आ जाएगा। इसलिए संयमी आदमी को हॉली-डे कभी भी नहीं होता--चौबीस घंटे, जब तक जागता है। हां, नींद में बड़ी गड़बड़ हो जाती है, सपने में सब बदल जाता है। वह जिसको दबाया है, वह नींद में प्रकट होने लगता है। क्योंकि नींद में संयम नहीं चलता।

इसलिए संयमी आदमी नींद से डरते हैं, इसका पता है? संयमी आदमी कहते हैं, कम सोना चाहिए! उसका और कोई कारण नहीं है। नींद तो परमात्मा का अदभुत आशीर्वाद है। लेकिन संयमी डरता है। क्योंकि जो दबाया है, वह नींद में धक्के मारता है, सपने बन कर आता है।

किसी तरह संयम-साधना करके वह बेचारा नसरुद्दीन उस घर में घुसा। दबाए हुए है मन में वे कपड़े ही कपड़े, कपड़े ही कपड़े। कह रहा है कि मेरे नहीं हैं, अब तो मित्र के ही हैं। लेकिन जितना यह कह रहा है कि मेरे नहीं हैं, मित्र के ही हैं, उतने ही वे कपड़े और भी मेरे मालूम पड़ रहे हैं।

मन को जिस बात के लिए इनकार करो, मन उसी की तरफ दौड़ने लगता है। इनकार करो, और मन दौड़ता है। इनकार बुलावा है। मन में "न" का मतलब "हां" होता है। मन में भीतर "न" का मतलब "हां" होता है। जिस बात को तुमने कहा "नहीं", मन कहेगा "हां यही"।

कपड़े मेरे हैं, मन कहने लगा, कौन कहता है कपड़े मेरे नहीं हैं? और नसरुद्दीन की ऊपर की बुद्धि समझाने लगी कि नहीं, कपड़े तो मैंने दे दिए मित्र को। जब वे भीतर गए, तब नसरुद्दीन कोई समझ भी नहीं सकता था कि भीतर कपड़ों में लड़ रहा है। घर में जिसके पास ले गए थे, पति मौजूद न था, सुंदर पत्नी मौजूद थी। उसकी आंखें एकदम कपड़ों पर अटक गईं मित्र के। नसरुद्दीन को धक्का लगा। इस सुंदर स्त्री ने उसे भी कभी इतने प्रेम से नहीं देखा। पूछने लगी, कौन हैं ये? कौन व्यक्ति हैं ये, कभी देखा नहीं!

नसरुद्दीन ने कहा, मेरे मित्र हैं। हालांकि कह रहा था, मालूम पड़ रहा था कि मेरे शत्रु हैं। कह रहा था कि मेरे मित्र हैं, लेकिन लग रहा था कि मेरे शत्रु हैं। इस दुष्ट को कहां साथ ले आए! जो देखो वही इसको देख रहा है! और पुरुषों के देखने तक गनीमत थी, सुंदर स्त्रियां भी उसी को देख रही हैं, तो फिर बहुत मुसीबत हो गई। मेरे मित्र हैं, बचपन के साथी हैं, बहुत अच्छे आदमी हैं। रह गए कपड़े, कपड़े उन्हीं के हैं, मेरे नहीं हैं।

लेकिन कपड़े अगर उन्हीं के हैं तो कहने की जरूरत क्या है? कह गया तब पता चला कि फिर भूल हो गई।

भूल का नियम है, भूल अतियों पर होती है, एक्सट्रीम पर होती है। एक एक्सट्रीम से बचो, दूसरी एक्सट्रीम पर हो जाती है। भूल का नियम है, घड़ी के पेंडुलम की तरह चलती है भूल। इस कोने से फिर ठीक दूसरे कोने पर जाती है, बीच में नहीं रुकती भूल। भोग से जाएगी तो एकदम त्याग पर चली जाएगी। एक बेवकूफी छूटी, दूसरी बेवकूफी पर पहुंच जाएगी। ज्यादा भोजन से बचेगी, उपवास! वह ज्यादा भोजन से भी बदतर है। क्योंकि ज्यादा भोजन भी आदमी दिन में दो-एक बार कर सकता है, लेकिन उपवास करने वाला आदमी दिन भर मन ही मन में भोजन करता है। करना पड़ता है! चौबीस घंटे भोजन करना पड़ता है! एक भूल से आदमी का मन बचता है और दूसरी भूल पर, मन जो है वह एक्सट्रीम्स में, अतियों में डोलता है। एक भूल की थी कि कपड़े मेरे हैं, अब दूसरी भूल हो गई कि कपड़े उसी के हैं। लेकिन एम्फेटिकली जब इतने जोर से कोई कहे कि कपड़े उसी के हैं, तो साफ हो जाता है कि कपड़े उसके नहीं हैं।

यह बड़े मजे की बात है! जोर से हमें वही बात कहनी पड़ती है जो सच्ची नहीं होती। अगर तुम कहो कि मैं बहुत बहादुर आदमी हूं! तो समझ लेना कि तुम पक्के नंबर एक के कायर हो।

अभी हिंदुस्तान पर चीन का हमला हुआ। सारे हिंदुस्तान में कवि पैदा हो गए, जैसे बरसात में मेंढक पैदा होते हैं। और वे सब कहने लगे कि हम सोए हुए शेर हैं, हमको मत छेड़ो!

कभी सोए शेर ने कविता की है कि हमको मत छेड़ो? सुना है कभी यह? सोए शेर को छेड़ दो, फिर वह कविता करेगा? फिर पता चल जाएगा कि छेड़ने का क्या मतलब होता है। लेकिन हमारा पूरा मुल्क कहने लगा,

हम सोए शेर हैं। हम ऐसा कर देंगे, हम वैसा कर देंगे। और चीन लाखों मील जमीन दबा कर बैठ गया, सोए शेर सो गए फिर से कविता वगैरह बंद करके। यह शेर-वेर होने का खयाल शेरों को पैदा नहीं होता, यह कायरों को पैदा होता है। शेर शेर होता है, चिल्ला-विल्ला कर कहने की जरूरत नहीं होती।

वह जितने जोर से हम कहते हैं, उससे उलटा हमारे भीतर होता है। इसलिए जोर से कुछ कहते वक्त जरा सम्हल कर कहना। अगर किसी से कहो कि मैं तुम्हें बहुत प्रेम करता हूं, तो संदिग्ध है वह प्रेम। प्रेम कहीं बहुत किया जाता है! बस किया जाता है या नहीं किया जाता। लेकिन आदमी का मन पूरे वक्त नासमझियों के चक्कर में घूमता है।

कह दिया नसरुद्दीन ने कि कपड़े--कपड़े इन्हीं के हैं। वह स्त्री भी हैरान हुई। मित्र भी हैरान हुआ कि फिर वही बात! बाहर निकल कर उस मित्र ने कहा, क्षमा करो, अब मैं लौट जाता हूं। गलती हो गई तुम्हारे साथ आया। क्या तुम्हें कपड़े ही कपड़े दिखाई पड़ रहे हैं?

नसरुद्दीन ने कहा, मैं भी नहीं समझता। आज तक जिंदगी में कपड़े मुझे दिखाई नहीं पड़े। यह पहला ही मौका है! क्या हो गया है मुझे? मेरे दिमाग में क्या गड़बड़ हो गई है? लेकिन पहली भूल हो गई थी, उससे उलटी भूल हो गई। अब कपड़ों की बात ही नहीं करूंगा। बस एक मित्र के घर और मिलने चलना है। फिर हम वापस लौट चलेंगे। और एक मौका मुझे और दो, नहीं तो जिंदगी भर के लिए अपराध मन में रहेगा कि मैंने मित्र के साथ कैसा व्यवहार किया!

मित्र साथ जाने को राजी हो गया। सोचा अब और क्या करेगा भूल! बात खत्म हो गई है। दो बातें हो सकती थीं, दोनों हो गई हैं। लेकिन भूल करने वाले बड़े इनवेंटिव होते हैं, पता है? नई भूलें ईजाद कर लेते हैं, जिनका आपको पता भी न हो।

तीसरे मित्र के घर गए। अब की बार तो नसरुद्दीन अपनी छाती को दबाए-पकड़े बैठा है कि कुछ भी हो जाए! लेकिन जितने जोर से किसी चीज को दबाओ, वह उतने जोर से पैदा होनी शुरू होती है। किसी चीज को दबाना, उसे शक्ति देने का दूसरा नाम है। दबाओ, और शक्ति मिलती है उसे। जितने जोर से आप दबाते हो, जोर में जो ताकत आपकी लगती है, वह उसी में चली जाती है जिसको आप दबाते हो। तो ताकत मिल गई उसे। अब वह दबा रहा है और पूरे वक्त पा रहा है कि मैं कमजोर पड़ता जा रहा हूं और वे कपड़े मजबूत होते जा रहे हैं।

कपड़े जैसी चीज, फिजूल, इतनी मजबूत हो सकती है कि नसरुद्दीन जैसा ताकतवर आदमी हारा जा रहा है उसके सामने! जो किसी चीज से नहीं हारा था, आज साधारण से कपड़े उसे हराए डालते हैं! वह अपनी पूरी ताकत लगा रहा है। लेकिन उसे पता नहीं है कि पूरी ताकत हम लगाते उसके खिलाफ हैं जिससे हम भयभीत हो जाते हैं। और जिससे हम भयभीत हो जाते हैं उससे हम हार जाते हैं, उससे हम कभी नहीं जीत सकते। आदमी ताकत से नहीं जीतता, अभय से जीतता है, फियरलेसनेस से जीतता है। ताकत से कोई आदमी नहीं जीतता, बड़े से बड़ा ताकतवर हार जाएगा अगर भीतर फियर है। हम दूसरे से कभी नहीं हारते, अपने ही भय से हारते हैं--यह ध्यान रहे! कम से कम मानसिक जगत में तो यह पक्का है कि दूसरा हमें कभी नहीं हराता, हमारा भय ही हमें हरा देता है।

वह जितना भयभीत हो रहा है, उतनी ताकत लगा रहा है। वह जितनी ताकत लगा रहा है, उतना भयभीत हुआ जा रहा है। क्योंकि कपड़े छूटते नहीं, पीछे वे चक्कर काट रहे हैं। तीसरे मकान के भीतर घुसा है, वह आदमी होश में नहीं है, वह बेहोश है। उसे न दीवालें दिख रही हैं, न घर के लोग दिखाई पड़ रहे हैं। उसे वह

कोट-पगड़ी, वही दिखाई पड़ रहा है। मित्र भी खो गया है, बस कपड़े हैं और वह है। और वह लड़ रहा है, ऊपर से किसी को पता नहीं। जिस घर में गया, फिर आंखें टिक गईं वहीं, उसके मित्र के कपड़ों पर। पूछा, कौन हैं ये?

अब वह बुखार में है, अब वह नसरुद्दीन होश में नहीं है, अब वह फीवर में है।

दमन करने वाले लोग हमेशा बुखार में जीते हैं, कभी शांत नहीं होते। सप्रेशन जो है, वह मेंटल फीवर है। वह मानसिक बुखार है। दबा लिया है, अब बुखार पकड़ा हुआ है। हाथ-पैर कंप रहे हैं उसके। वह अपने हाथ-पैर रोकने की कोशिश कर रहा है। लेकिन जितना रोकने की कोशिश कर रहा है, वे उतने कंप रहे हैं।

उसने कहा, कौन हैं ये! अब उसे खुद भी याद नहीं आ रहा है कि कौन हैं ये? सिर्फ कपड़े हैं, सिर्फ कपड़े हैं, सिर्फ कपड़े हैं--यही मालूम पड़ रहा है। लेकिन कहता है कि नहीं। जैसे बहुत मुश्किल पड़ रहा है उसे याद करना। कहा, मेरे मित्र हैं, नाम है फलां-फलां। रह गए कपड़े, सो कपड़े की बात ही नहीं करनी है, किसी के भी हों! कपड़े की बात ही नहीं उठानी है!

लेकिन बात उठ गई। जिसकी बात न उठानी हो, उसी की बात ज्यादा उठती है। जिसकी बात न उठानी हो, उसी की बात ज्यादा उठती है।

यह छोटी सी कहानी क्यों मैंने कही? सेक्स की बात नहीं उठानी है और उसकी ही बात चौबीस घंटे उठती है। नहीं किसी से बात करनी है, लेकिन अपने से ही बात चलती है। मत करो दूसरे से, तो खुद ही से करनी पड़ेगी बात। और दूसरे से बात करने में राहत भी मिल सकती है, खुद से बात करने में कोई रास्ता ही नहीं है, कोल्हू के बैल की तरह अपने भीतर ही घूमते रहो। सेक्स की बात नहीं करनी है! टैबू है! उसकी बात नहीं करनी है। उसकी बात ही नहीं उठानी है। मां अपने बेटे के सामने नहीं उठाती। बेटा अपने बाप के सामने नहीं उठाता। मित्र मित्र के सामने नहीं उठाते। उठानी नहीं है बात। जो उठाते हैं वे अशिष्ट हैं। और चौबीस घंटे वही बात चलती है। सबके मन में वही चलता है।

यह सेक्स इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि बात न उठाने से महत्वपूर्ण हो गया है। यह सेक्स बिल्कुल महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि हम समझ रहे हैं इसे।

लेकिन किसी भी व्यर्थ की बात को उठाना बंद कर दो, वह सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाएगी। इस दरवाजे पर एक तख्ती लगा दो कि यहां झांकना मना है! और यहां झांकना बड़ा महत्वपूर्ण हो जाएगा। फिर चाहे आपकी यूनिवर्सिटी में कुछ भी हो रहा हो--आइंस्टीन आकर गणित पर भाषण दे रहे हों--बेकार है वह, यह तख्ती महत्वपूर्ण है, यहीं झांकने की जरूरत हो जाएगी। हर विद्यार्थी यहीं चक्कर लगाने लगेगा। लड़के जरा जोर से लगाएंगे, लड़कियां जरा धीरे। बस बाकी कोई बुनियादी फर्क नहीं है आदमी-आदमी में। उनके मन में भी होगा कि क्या है इस तख्ती के भीतर? यह तख्ती एकदम अर्थ ले लेगी।

हां, कुछ जो अच्छे लड़के-लड़कियां नहीं हैं, वे आकर सीधा देख कर झांकने लगेंगे। वे बदनामी उठाएंगे कि ये अच्छे लोग नहीं हैं। तख्ती जहां लगी थी कि नहीं झांकना है, ये वहीं झांक रहे थे। जो भद्र हैं, सज्जन हैं, अच्छे घर के हैं--इस तरह के वहम जिनके दिमाग में हैं--वे इधर से तिरछी आंखें किए हुए निकल जाएंगे। आंखें तिरछी रहेंगी, दिखाई तख्ती ही पड़ेगी महाशय। और तिरछी आंखों से जो चीज दिखाई पड़ती है, वह बहुत खतरनाक होती है। दिखाई भी नहीं पड़ती और दिखाई भी पड़ती है। देख भी नहीं पाते, मन में भाव भी रह जाता है देखना था।

फिर वे जो पीड़ित जन यहां से तिरछे-तिरछे निकल जाएंगे, वे इसका बदला लेंगे। किससे? जो झांक रहे थे उनसे। गालियां देंगे उनको कि बुरे लोग हैं, अशिष्ट हैं, सज्जन नहीं हैं, असाधु हैं।

ये किससे बदला ले रहे हैं वे? इस तरह मन को सांत्वना, कंसोलेशन जुटा रहे हैं कि हम अच्छे आदमी हैं, इसलिए हमने झांक कर नहीं देखा। लेकिन झांक कर देखना तो जरूर था, वह मन कहे चला जाएगा। सांझ होते-होते, अंधेरा घिरते-घिरते वे आएंगे। क्लास में बैठ कर पढ़ेंगे, तब भी तख्ती दिखाई पड़ेगी, किताब नहीं। लेबोरेट्री में एक्सपेरिमेंट करते होंगे और तख्ती बीच-बीच में आ जाएगी। सांझ तक वे आ जाएंगे। आना पड़ेगा। आदमी के मन के नियम हैं। इन नियमों का उलटा नहीं हो सकता। हां, कुछ बहुत ही कमजोर होंगे, वे शायद नहीं आ पाएं। तो रात सपने में उनको आना पड़ेगा। आना पड़ेगा! मन के नियम अपवाद नहीं मानते। वहां एक्सेप्शन नहीं होता। जगत के किसी नियम में कोई अपवाद नहीं होता। जगत के नियम अत्यंत वैज्ञानिक हैं। मन के नियम भी उतने ही वैज्ञानिक हैं।

यह जो सेक्स इतना महत्वपूर्ण हो गया है, यह वर्जना के कारण। वर्जना की तख्ती लगी है। उस वर्जना के कारण इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि सारे मन को घेर लिया है। सारे मन को! सारा मन सेक्स के इर्द-गिर्द घूमने लगा है।

वह फ्रायड ठीक कहता है कि मनुष्य का मन सेक्स के आस-पास ही घूमता है। लेकिन वह यह गलत कहता है कि सेक्स बहुत महत्वपूर्ण है, इसलिए घूमता है। नहीं, घूमने का कारण है--वर्जना, इनकार, विरोध, निषेध। घूमने का कारण है--हजारों साल की परंपरा; सेक्स को टैबू, वर्जित, निंदित, गर्हित सिद्ध करने वाली परंपरा। सेक्स को इतना महत्वपूर्ण बनाने वालों में साधु-संतों, महात्माओं का हाथ है, उन्होंने तख्तियां लटकाई हैं वर्जना की।

यह बड़ा उलटा मालूम पड़ेगा, लेकिन यही सत्य है और कहना जरूरी है! मनुष्य-जाति को सेक्सुअलिटी की, कामुकता की तरफ ले जाने का काम महात्माओं ने ही किया है। जितने जोर से वर्जना लगाई है उन्होंने, आदमी उतने जोर से आतुर होकर भागने लगा है। इधर वर्जना लगा दी है, उसका परिणाम यह हुआ है कि सेक्स रग-रग से फूट कर निकल पड़ा है। कविता--थोड़ा खोजबीन करो, ऊपर की राख हटाओ--भीतर सेक्स मिलेगा। उपन्यास, कहानी--महान से महान साहित्यकार की--जरा राख झाड़ो, भीतर सेक्स मिलेगा। चित्र देखो, मूर्ति देखो, सिनेमा देखो... और साधु-संत इस वक्त सिनेमा के बहुत खिलाफ हैं। और उन्हें पता नहीं कि सिनेमा नहीं था तो भी आदमी यही करता था। कालिदास के ग्रंथ पढ़ो! कोई फिल्म इतनी अश्लील नहीं बन सकती जितने कालिदास के वचन हैं। उठा कर देखो पुराना साहित्य, पुरानी मूर्तियां देखो, पुराने मंदिर देखो। जो फिल्म में है, वह पत्थरों में खुदा मिलेगा। लेकिन आंख नहीं खुलती हमारी। अंधे की तरह पीटे चले जाते हैं लकीरों को।

सेक्स जब तक दमन किया जाएगा और जब तक स्वस्थ खुले आकाश में उसकी बात न होगी और जब तक एक-एक बच्चे के मन से वर्जना की तख्ती नहीं हटेगी, तब तक दुनिया सेक्स के आब्सेशन से मुक्त नहीं हो सकती है, तब तक सेक्स एक रोग की तरह आदमी को पकड़े रहेगा। वह कपड़े पहनेगा तो नजर सेक्स पर होगी। खाना खाएगा तो नजर सेक्स पर होगी। किताब पढ़ेगा तो नजर सेक्स पर होगी। गीत गाएगा तो नजर सेक्स पर होगी। संगीत सुनेगा तो नजर सेक्स पर होगी। नाचेगा तो नजर सेक्स पर होगी। सारी जिंदगी!

अनातोले फ्रांक मर रहा था। मरते वक्त एक मित्र उसके पास गया और अनातोले जैसे अदभुत साहित्यकार से उसने पूछा कि तुमसे मरते वक्त मैं यह पूछता हूं अनातोले, जिंदगी में सबसे महत्वपूर्ण क्या है? अनातोले ने कहा, जरा पास आ जाओ, कान में ही बता सकता हूं, क्योंकि आस-पास और लोग भी बैठे हैं। मित्र पास आ गया। उसने सोचा कि अनातोले जैसा आदमी, जो मकानों की चोटियों पर चढ़ कर चिल्लाने का आदी है, जो उसे ठीक लगे कहता है, वह भी आज मरते वक्त इतना कमजोर हो गया कि जीवन की सबसे महत्वपूर्ण

बात बताने को कहता है पास आ जाओ, कान में कहूंगा! सुनो धीरे से कान में! मित्र पास सरक आया। अनातोले कान के पास ओंठ ले आया, लेकिन कुछ बोला नहीं। मित्र ने कहा, बोलते नहीं! अनातोले ने कहा, तुम समझ गए होओगे, अब बोलने की क्या जरूरत है।

ऐसा मजा है। और मित्र समझ गए। और तुम भी समझ गए, नहीं तो हंसते नहीं। समझ गए न? बोलने की कोई जरूरत नहीं है। क्या पागलपन है यह? यह कैसे मनुष्य को पागलपन की तरफ ले जाने का, मैड हाउस बनाने की दुनिया को कोशिश चल रही है?

इसका बुनियादी कारण यह है कि सेक्स को आज तक स्वीकार नहीं किया गया। जिससे जीवन का जन्म होता है, जिससे जीवन के बीज फूटते हैं, जिससे जीवन के फूल आते हैं, जिससे जीवन की सारी सुगंध, सारा रंग, जिससे जीवन का सारा नृत्य है, जिसके आधार पर जीवन का पहिया घूमता है, उसको ही स्वीकार नहीं किया। जीवन के मौलिक आधार को अस्वीकार किया गया। जीवन में जो केंद्रीय था, परमात्मा जिसको सृष्टि का आधार बनाए हुए है--चाहे फूल हों, चाहे पक्षी हों, चाहे बीज हों, चाहे पौधे हों, चाहे मनुष्य हों--सेक्स जो है वह जीवन के जन्म का मार्ग है, उसको ही अस्वीकार कर दिया!

उसकी अस्वीकृति के दो परिणाम हुए। अस्वीकार करते ही वह सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया। अस्वीकार करते ही वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया और मनुष्य के चित्त को उसने सब तरफ से पकड़ लिया। अस्वीकार करते ही उसे सीधा जानने का उपाय नहीं रहा। इसलिए तिरछे जानने के उपाय खोजने पड़े, जिनसे मनुष्य का चित्त विकृत, बीमार होने लगा। जिस चीज को सीधे जानने के उपाय न रह जाएं और मन जानना चाहता हो, फिर गलत उपाय खोजने पड़ते हैं।

मनुष्य को अनैतिक बनाने में तथाकथित नैतिक लोगों की वर्जनाओं का हाथ है। जिन लोगों ने आदमी को नैतिक बनाने की चेष्टा की है दमन के द्वारा, वर्जना के द्वारा, उन लोगों ने सारी मनुष्य-जाति को इम्मॉरल, अनैतिक बना कर छोड़ दिया। और जितना आदमी अनैतिक होता चला जाता है, उतनी उनकी वर्जना सख्त होती चली जाती है। वे कहते हैं कि फिल्मों में नंगी तस्वीर नहीं होनी चाहिए। वे कहते हैं, पोस्टरों पर नंगी तस्वीर नहीं होनी चाहिए। वे कहते हैं, किताब ऐसी होनी चाहिए। वे कहते हैं, फिल्म में चुंबन लेते वक्त कितने इंच का फासला हो--यह भी गवर्नमेंट तय करेगी! वे यह सब कहते हैं। बड़े अच्छे लोग हैं वे, इसलिए कहते हैं कि आदमी अनैतिक न हो जाए।

और उनकी ये सब चेष्टाएं फिल्मों को और गंदा करती चली जाती हैं। पोस्टर और अश्लील होते चले जाते हैं। किताबें और गंदी होती चली जाती हैं। हां, एक फर्क रहता है। किताब के भीतर कुछ रहता है, ऊपर कवर कुछ और रहता है। और अगर ऐसा नहीं रहता, तो लड़का गीता खोल लेता है, गीता के अंदर दूसरी किताब रख लेता है, उसको पढ़ता है। बाइबिल का कवर चढ़ा लेता है ऊपर। कोई लड़का बाइबिल पढ़ता है? अगर बाइबिल पढ़ता हो तो समझना भीतर कोई दूसरी किताब है। यह सब धोखा, यह डिसेप्शन पैदा होता है।

विनोबा कहते हैं, तुलसी कहते हैं--अश्लील पोस्टर नहीं चाहिए! गांधी जी तो यह कहते थे कि खजुराहो और कोणार्क के मंदिरों पर मिट्टी पोत कर उनकी प्रतिमाओं को ढांक देना चाहिए। आदमी इनको देख कर गंदा न हो जाए।

और बड़े मजे की बात यह है कि तुम ढांकते चले जाओ उनको, हजारों साल से ढांक रहे हो, इससे आदमी गंदगी से मुक्त नहीं होता, गंदगी बढ़ती चली जाती है।

मैं यह पूछना चाहता हूं--तस्वीर लगी है नंगी दीवार पर, अश्लील पोस्टर लगा है, अश्लील किताब छपती है--अश्लील किताब, अश्लील सिनेमा के कारण आदमी कामुक होता है कि आदमी कामुक है इसलिए अश्लील तस्वीर बनती है और पोस्टर चिपकाए जाते हैं? कौन है बुनियादी?

आदमी की मांग है अश्लील पोस्टर के लिए, इसलिए अश्लील पोस्टर लगता है और देखा जाता है। साधु-संन्यासी भी देखते हैं उसको, लेकिन एक फर्क रहता है। आप उसको देखते हैं, आप अगर पकड़ लिए जाएंगे तो आप समझे जाएंगे यह आदमी गंदा है। अगर कोई साधु-संन्यासी मिल जाए, और आप उससे कहें, आप क्यों देख रहे हैं? वह कहेगा कि हम निरीक्षण कर रहे हैं, स्टडी कर रहे हैं कि लोग किस तरह... अनैतिकता से कैसे बचाए जाएं, इसलिए अध्ययन कर रहे हैं। इतना फर्क पड़ेगा। बाकी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। बल्कि आप बिना देखे भी निकल जाएं, साधु-संन्यासी बिना देखे कभी नहीं निकल सकता। उसकी वर्जना और भी ज्यादा है, उसका चित्त और भी वर्जित है।

एक संन्यासी मेरे पास आए। वे नौ वर्ष के थे, तब दुष्टों ने उनको दीक्षा दे दी। नौ वर्ष के आदमी को दीक्षा देना कोई भले आदमी का काम हो सकता है? नौ वर्ष के बच्चे को! बाप मर गए थे उनके, तो साधु-संन्यासियों को मौका मिल गया, उनको दीक्षा दे दी। अनाथ बच्चे, उनके साथ कोई भी दुर्व्यवहार किया जा सकता है। उनको दीक्षा दे दी। वह आदमी नौ वर्ष की उम्र से बेचारा संन्यासी है। अब उनकी उम्र कोई पचास साल है। वे मेरे पास रुके थे। मेरी बातें सुन कर उनकी हिम्मत बढ़ी कि मुझसे सच्ची बातें कही जा सकती हैं। इस मुल्क में सच्ची बातें किसी से नहीं कही जा सकतीं। सच्ची बातें कहना ही मत, नहीं तो फंस जाओगे। उन्होंने एक रात मुझसे कहा कि मैं बहुत परेशान हूं, सिनेमा और टाकीज के पास से निकलता हूं तो मुझे लगता है, अंदर पता नहीं क्या होता होगा? इतने लोग अंदर जाते हैं, इतना क्यू लगाए खड़े रहते हैं, जरूर कुछ न कुछ बात होगी! हालांकि मंदिर में जब मैं बोलता हूं तो मैं कहता हूं कि सिनेमा जाने वाले नरक जाएंगे। लेकिन जिनको मैं कहता हूं नरक जाएंगे, वे नरक की धमकी से भी नहीं डरते और सिनेमा जाते हैं, तो जरूर कुछ बात होगी!

नौ साल का बच्चा था, तब वह साधु हो गया। नौ ही साल के पास उसकी बुद्धि अटकी रह गई, उससे आगे विकसित नहीं हुई, क्योंकि जीवन के अनुभव से तोड़ दिया गया। नौ साल के बच्चे के मन में जैसे भाव उठे कि सिनेमा के भीतर क्या हो रहा है, ऐसे ही उसके मन में उठता है। लेकिन किससे कहे?

तो मैंने उनसे कहा, सिनेमा दिखला दें आपको? वे बोले कि अगर दिखला दें तो बड़ी कृपा हो, झंझट छूट जाए; क्या है वहां? एक मित्र को मैंने बुलाया कि इनको ले जाओ। वे मित्र बोले कि मैं झंझट में नहीं पड़ता। कोई देख ले कि मैं साधु को लाया तो मैं भी झंझट में पड़ जाऊंगा। अंग्रेजी फिल्म दिखाने ले जा सकता हूं इनको, क्योंकि वह मिलिट्री एरिया में है, और उधर ये साधु-वाधु मानने वाले इनके भक्त भी वहां नहीं होंगे, वहां मैं इनको ले जा सकता हूं। पर वे साधु अंग्रेजी नहीं जानते। कहने लगे, कोई हर्जा नहीं, लेकिन देख तो लेंगे कि क्या मामला है, अंग्रेजी में ही सही।

यह चित्त है। और यह चित्त वहां गाली देगा मंदिर में बैठ कर कि नरक जाओगे अगर अश्लील पोस्टर देखोगे, फिल्म देखोगे। यह बदला ले रहा है। वह तिरछा देख कर निकल गया आदमी है, वह बदला ले रहा है, जिन्होंने सीधा देखा उनसे।

लेकिन सीधे देखने वाले मुक्त भी हो सकते हैं, तिरछे देखने वाले मुक्त नहीं हो सकते।

अश्लील पोस्टर इसलिए लग रहे हैं, अश्लील किताबें इसलिए पढ़ी जा रही हैं, लड़के अश्लील गालियां इसलिए बक रहे हैं, अश्लील कपड़े इसलिए पहने जा रहे हैं, कि तुमने जो मौलिक था उसको अस्वीकार किया है। उसकी अस्वीकृति के परिणामस्वरूप ये सब गलत रास्ते खोजे जा रहे हैं।

जिस दिन दुनिया में सेक्स स्वीकृत होगा, जैसे कि भोजन स्वीकृत है, स्नान स्वीकृत है, उस दिन दुनिया में अश्लील पोस्टर नहीं लगेंगे, अश्लील कविताएं नहीं होंगी, अश्लील मंदिर नहीं बनेंगे। क्योंकि जैसे ही वह स्वीकृत हो जाएगा, अश्लील पोस्टरों को बनाने की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी।

अगर किसी समाज में भोजन वर्जित कर दिया जाए कि भोजन छिप कर खाना, कोई देख न ले! अगर किसी समाज में यह हो कि भोजन करना पाप है! तो भोजन के पोस्टर सड़कों पर लगने लगेंगे फौरन। क्योंकि आदमी तब पोस्टरों से भी तृप्ति पाने की कोशिश करेगा। पोस्टरों से तृप्ति तभी पाई जाती है, जब जिंदगी तृप्ति देना बंद कर देती है और जिंदगी के द्वार बंद होते हैं।

यह जो जितनी अश्लीलता और कामुकता और जितनी सेक्सुअलिटी है, यह सारी की सारी वर्जना का अंतिम परिणाम है। और यह मैं आने वाले युवकों से कहना चाहता हूं कि तुम जिस दुनिया को बनाने में संलग्न होओगे, उसमें सेक्स को वर्जित मत करना, अन्यथा आदमी और भी कामुक से कामुक होता चला जाएगा। यह बात मेरी बड़ी उलटी लगेगी। मुझे तो लोग, अखबारवाले और नेतागण चिल्ला-चिल्ला कर घोषणा करते हैं कि मैं लोगों में काम का प्रचार कर रहा हूं।

मैं लोगों को काम से मुक्त करना चाहता हूं; प्रचार वे कर रहे हैं! लेकिन उनका प्रचार दिखाई नहीं पड़ता। उनका प्रचार दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि हजारों साल की परंपरा से उनकी बातें सुन-सुन कर हम अंधे और बहरे हो गए हैं। हमें खयाल भी नहीं रहा कि वे क्या कह रहे हैं। मन के सूत्रों का, मन के विज्ञान का कोई बोध भी नहीं रहा कि वे क्या कर रहे हैं और क्या करवा रहे हैं। इसीलिए आज पृथ्वी पर जितना कामुक आदमी भारत में है, उतना कामुक आदमी पृथ्वी के किसी कोने में नहीं है।

मेरे एक डाक्टर मित्र इंग्लैंड एक मेडिकल कांफ्रेंस में भाग लेने गए थे। हाइड पार्क में उनकी सभा होती थी। कोई पांच सौ डाक्टर इकट्ठे थे, बातचीत चलती थी, खाना-पीना चलता था। लेकिन पास की एक बेंच पर एक युवक और एक युवती गले में हाथ डाले अत्यंत प्रेम में लीन आंख बंद किए बैठे थे। मित्र के प्राणों में बेचैनी हो गई। भारतीय प्राण! चारों तरफ झांक-झांक कर--अब खाने में उनका मन न रहा, अब चर्चा में उनका रस न रहा, वे बार-बार लौट-लौट कर उस बेंच की तरफ देखने लगे। और मन में सोचने लगे--पुलिस क्या कर रही है? इनको बंद क्यों नहीं करती? यह कैसा अश्लील देश है! ये लड़के और लड़की आंख बंद किए चुपचाप, पांच सौ लोगों की भीड़ के पास ही, बेंच पर बैठे हुए प्रेम प्रकट कर रहे हैं! यह क्या हो रहा है? यह बरदाश्त के बाहर है। पुलिस क्या कर रही है? बार-बार वहां देखने का मन।

पड़ोस के डाक्टर ने, एक आस्ट्रेलियन डाक्टर ने, उनको हाथ से इशारा किया और कहा, वहां बार-बार मत देखिए, नहीं पुलिसवाला आपको आकर उठा कर ले जाएगा। यह अनैतिकता का सबूत है। यह उन दो व्यक्तियों की अपनी जिंदगी की बात है। और वे दोनों व्यक्ति इसलिए पांच सौ लोगों की भीड़ के पास भी शांति से बैठे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि यहां सज्जन लोग इकट्ठे हैं, कोई देखेगा नहीं। किसी को क्या प्रयोजन है? आपका यह देखना बहुत गर्हित है, बहुत अशोभन है, अशिष्ट है। जेंटलमैनली नहीं है; अच्छे आदमी का सबूत नहीं है। आप वहां बार-बार... आप पांच सौ लोगों को नहीं देख रहे, कोई फिक्र नहीं कर रहा है! क्या प्रयोजन है किसी को? यह उनकी अपनी बात है। और दो व्यक्ति इस उम्र में प्रेम करें तो पाप क्या है? और प्रेम में वे आंख

बंद करके पास-पास बैठे हों तो हर्ज क्या है? आप क्यों परेशान हो रहे हैं? न तो वे आपके गले में हाथ डाले हुए हैं!

वे मित्र मुझसे लौट कर कहने लगे कि मैं इतना घबड़ा गया कि ये कैसे लोग हैं। लेकिन धीरे-धीरे उनकी समझ में यह बात पड़ी कि गलत वे ही थे।

हमारा पूरा मुल्क, पूरा मुल्क, एक-दूसरे के दरवाजे में की-होल रहता है न, उसमें से झांक रहा है--कहां क्या हो रहा है? कौन क्या कर रहा है? कौन कहां जा रहा है? कौन किसके साथ है? कौन किसके गले में हाथ डाले है? कौन किसका हाथ हाथ में लिए है?

क्या बदतमीजी है! कैसी संस्कारहीनता है! यह सब क्या है? यह क्यों हो रहा है? यह हो रहा है--भीतर वह जिसको दबाया है, वह सब तरफ दिखाई पड़ रहा है, वही-वही दिखाई पड़ रहा है।

विद्यार्थियों से मैं कहना चाहता हूंः तुम्हारे मां-बाप, तुम्हारे पुरखे, तुम्हारी हजारों साल की पीढ़ियां सेक्स से भयभीत रही हैं। तुम भयभीत मत रहना। तुम समझने की कोशिश करना उसे। तुम पहचानने की कोशिश करना। तुम बात करना। तुम सेक्स के संबंध में जो आधुनिकतम नई से नई खोज हुई है उसको पढ़ना, चर्चा करना और समझने की कोशिश करना--क्या है सेक्स? क्या है सेक्स का मेकेनिज्म? उसका यंत्र क्या है? क्या है उसकी आकांक्षा? क्या है प्यास? क्या है प्राणों के भीतर छिपा हुआ राज? इसको समझना। इसकी सारी की सारी वैज्ञानिकता को पहचानना। इससे भागना मत, एस्केप मत करना, आंख बंद मत करना। और तुम हैरान हो जाओगे--तुम जितना समझोगे, तुम उतने ही मुक्त हो जाओगे। तुम जितना समझोगे, तुम उतने ही स्वस्थ हो जाओगे। तुम जितना सेक्स के फैक्ट को समझ लोगे, उतना ही सेक्स के फिक्शन से तुम्हारा छुटकारा हो जाएगा। तथ्य को समझते ही आदमी कहानियों से मुक्त हो जाता है। और जो तथ्य से बचता है, वह कहानियों में भटक जाता है।

कितनी सेक्स की कहानियां चलती हैं! कोई मजाक ही नहीं है और! बस एक ही मजाक है हमारे पास कि हम सेक्स की तरफ इशारा करें और हंसें। जो आदमी सेक्स की तरफ इशारा करके हंसता है, वह आदमी बहुत ही क्षुद्र है। सेक्स की तरफ इशारा करके हंसने का क्या मतलब है? उसका मतलब हैः आप समझते नहीं हैं।

बच्चे तो बहुत तकलीफ में हैं--कौन उन्हें समझाए? किससे वे बातें करें? कौन सारे तथ्यों को सामने रखे? उनके प्राणों में जिज्ञासा है, खोज है। लेकिन उसको दबाए चले जाते हैं, रोके चले जाते हैं। उसके दुष्परिणाम होते हैं। जितना रोकते हैं, उतना मन वहां दौड़ने लगता है। और इस रोकने और दौड़ने में सारी शक्ति और ऊर्जा नष्ट हो जाती है।

यह मैं आपसे कहना चाहता हूं--जिस देश में भी सेक्स की स्वस्थ रूप से स्वीकृति नहीं होती, उस देश की प्रतिभा का जन्म ही नहीं होता है। पश्चिम में तीन सौ वर्षों में जो जीनियस पैदा हुआ है, जो प्रतिभा पैदा हुई है, वह सेक्स के तथ्य की स्वीकृति से पैदा हुई है। जैसे ही सेक्स स्वीकृत हो जाता है, तो जो शक्ति हमारी लड़ने में नष्ट होती है, वह शक्ति मुक्त हो जाती है, वह रिलीज हो जाती है। उस शक्ति को हम रूपांतरित करते हैं--पढ़ने में, खोज में, आविष्कार में, कला में, संगीत में, साहित्य में। और अगर वह शक्ति इसी में उलझी रह जाए... ।

अब सोच लो कि वह आदमी जो कपड़ों में उलझ गया था, नसरुद्दीन, वह कोई विज्ञान के प्रयोग कर सकता था बेचारा? कि वह कोई साहित्य का सृजन कर सकता था? कि कोई मूर्ति का निर्माण कर सकता था? वह कुछ भी करता, कपड़े ही कपड़े चारों तरफ घूमते रहते।

भारत के युवक के चारों तरफ सेक्स घूमता रहता है पूरे वक्त। और इस घूमने के कारण उसकी सारी शक्ति इसी में लीन और नष्ट हो जाती है। जब तक भारत के युवक की सेक्स के इस रोग से मुक्ति नहीं होती, तब तक भारत के युवक की प्रतिभा का जन्म नहीं हो सकता है। जिस दिन इस देश में सेक्स की सहज स्वीकृति हो जाएगी, हम उसे जीवन के एक तथ्य की तरह अंगीकार कर लेंगे--प्रेम से, आनंद से--निंदा से नहीं, घृणा से नहीं। और निंदा, घृणा का कोई कारण नहीं है। वह जीवन का अदभुत रहस्य है। वह जीवन की अदभुत मिस्ट्री है। उससे कोई घबराने की, भागने की जरूरत नहीं है। जिस दिन हम इसे स्वीकार कर लेंगे, उस दिन इतनी बड़ी ऊर्जा मुक्त होगी भारत में कि हम आइंस्टीन पैदा कर सकते हैं, हम न्यूटन भी पैदा करेंगे। हम भी चांद-तारों की यात्रा करेंगे।

लेकिन अभी हम कैसे करें! लड़के लड़कियों के स्कर्ट के आस-पास परिभ्रमण करें कि चांद-तारों पर जाएं? लड़कियां चौबीस घंटे अपने कपड़ों को चुस्त से चुस्त करने की कोशिश करें कि चांद-तारों का विचार करें? यह नहीं हो सकता। ये सब सेक्सुअलिटी के रूप हैं। लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ते।

कपड़ों का चुस्त से चुस्त होते चले जाना सेक्सुअलिटी का रूप है। हम शरीर को नंगा देखना और दिखाना चाहते हैं, इसलिए कपड़े चुस्त से चुस्त होते चले जाते हैं।

सौंदर्य की बात नहीं है यह। क्योंकि कई बार चुस्त कपड़े शरीर को बहुत बेहूदा और भोंडा बना देते हैं। हां, किसी शरीर पर चुस्त कपड़े सुंदर भी हो सकते हैं। किसी शरीर पर ढीले कपड़े सुंदर हो सकते हैं। और ढीले कपड़ों की शान ही और है। ढीले कपड़ों की गरिमा और है। ढीले कपड़ों की पवित्रता और है। लेकिन वह हमारे खयाल में नहीं आएगा। हम समझेंगे, यह फैशन है। हम समझेंगे कि यह कला है, अभिरुचि है, टेस्ट है।

टेस्ट-वेस्ट नहीं है, अभिरुचि भी नहीं है। वह जो हम जिसको छिपा रहे हैं भीतर, वह दूसरे रास्तों से प्रकट होने की कोशिश कर रहा है।

लड़के लड़कियों का चक्कर काट रहे हैं, लड़कियां लड़कों के चक्कर काट रही हैं। तो चांद-तारों का चक्कर कौन काटेगा? कौन जाएगा वहां? और प्रोफेसर्स? वे बेचारे, दोनों एक-दूसरे का चक्कर न काटें, सो बीच में पहरेदार बने हुए खड़े हैं। वह कुछ और उनके पास काम नहीं है। जीवन के और किन्हीं सत्यों की खोज में उन्हें इन बच्चों को नहीं लगाना है। बस ये सेक्स से बच जाएं, इतना ही काम कर दें तो कृतार्थता हो जाती है, परिणाम पूरा हो जाता है।

यह सब कैसा रोग! यह कैसा डिजीज्ड माइंड है हमारा! नहीं, यह हम सेक्स के तथ्य की सीधी स्वीकृति के बिना इस रोग से मुक्त नहीं हो सकते हैं। यह महारोग है।

इस पूरी चर्चा में मैंने यह कहने की कोशिश की है कि मनुष्य को क्षुद्रताओं से ऊपर उठना है, जीवन के साधारण तथ्यों से जीवन के बहुत ऊंचे तथ्यों की खोज करनी है। सेक्स ही सब कुछ नहीं है, परमात्मा भी है इस दुनिया में। लेकिन उसकी खोज कौन करेगा? सेक्स ही सब कुछ नहीं है इस दुनिया में, सत्य भी है। उसकी कौन खोज करेगा? यहीं जमीन से अटके हम रह जाएंगे तो आकाश की खोज कौन करेगा? पृथ्वी के कंकड़-पत्थरों को हम खोजते रहेंगे तो चांद-तारों की तरफ आंखें कौन उठाएगा?

पता भी नहीं होगा उनको! जिन्होंने पृथ्वी की ही तरफ आंख लगा कर जिंदगी गुजार दी, उन्हें पता भी नहीं चलेगा कि आकाश में तारे भी हैं, आकाशगंगा भी है। रात के सन्नाटे में मौन सन्नाटा भी है आकाश का। वे बेचारे कंकड़-पत्थर बीनने वाले लोग, उन्हें कैसे पता चलेगा कि और आकाश भी है। और अगर कभी कोई उनसे

कहेगा कि आकाश भी है जहां चमकते हुए तारे हैं, वे कहेंगे--सब झूठी बातचीत है, सब कल्पना है। पत्थर ही पत्थर हैं। कभी रंगीन पत्थर भी होते हैं, कभी गैर-रंगीन पत्थर भी होते हैं। बस इतनी ही जिंदगी है।

नहीं, पृथ्वी से मुक्त होना है कि आकाश दिखाई पड़ सके। शरीर से मुक्त होना है कि आत्मा दिखाई पड़ सके। और सेक्स से मुक्त होना है, ताकि समाधि तक मनुष्य पहुंच सके।

लेकिन उस तक हम नहीं पहुंच सकेंगे, अगर हम सेक्स से बंधे रह जाते हैं। और सेक्स से हम बंध गए हैं, क्योंकि हम सेक्स से लड़ रहे हैं। लड़ाई बांध देती है, समझ मुक्त करती है। अंडरस्टैंडिंग चाहिए। समझो! सेक्स के पूरे रहस्य को समझो! बात करो, विचार करो, मुल्क में हवा पैदा करो कि हम इसे छिपाएंगे नहीं, समझेंगे। अपने पिता से बात करो, अपनी मां से बात करो। वे बहुत घबड़ाएंगे। अपने प्रोफेसर्स से बात करो, अपने कुलपति को पकड़ो और कहो कि हमें समझाओ। जिंदगी के सवाल हैं ये। वे भागेंगे, क्योंकि वे डरे हुए लोग हैं, डरी हुई पीढ़ी से आए हैं। उनको पता भी नहीं है कि जिंदगी बदल गई है। अब डर से काम नहीं चलेगा। जिंदगी का एनकाउंटर चाहिए, मुकाबला चाहिए। जिंदगी को लड़ने और समझने की तैयारी करो। मित्रों का सहयोग लो, शिक्षकों का सहयोग लो, मां-बाप का सहयोग लो।

वह मां गलत है, जो अपनी बेटी को और अपने बेटे को वे सारे राज नहीं बता जाती जो उसने जाने हैं। क्योंकि उसके बताने से बेटे और उसकी बेटियां भूलों से बच सकेंगे; उसके न बताने से उनसे भी उन्हीं भूलों के दोहराने की संभावना है, जो उसने खुद की होंगी। वह बाप गलत है, जो अपने बेटे को अपनी प्रेम की और अपनी सेक्स की जिंदगी की सारी बातें नहीं बता देता। क्योंकि बता देने से बेटा उन भूलों से बच जाएगा जो उसने की हैं। शायद बेटा ज्यादा स्वस्थ हो सकेगा।

लेकिन बाप! बाप इस तरह जीएगा कि बेटे को पता चले कि इसने कभी प्रेम ही नहीं किया। वह इस तरह खड़ा रहेगा आंखें पत्थर की बना कर कि इसकी जिंदगी में कभी कोई औरत इसे अच्छी ही नहीं लगी।

यह सब झूठ है। यह सरासर झूठ है। तुम्हारे बाप ने भी प्रेम किया है। उनके बाप ने भी प्रेम किया था। सब बाप प्रेम करते रहे हैं, लेकिन सब बाप धोखा देते रहे हैं। तुम भी प्रेम करोगे और बाप बन कर धोखा दोगे। यह धोखे की दुनिया अच्छी नहीं है। चीजें साफ और सीधी होनी चाहिए। जो बाप ने अनुभव किया है, वह बेटे को दे जाए। जो मां ने अनुभव किया है, वह बेटे को दे जाए। जो ईर्ष्याएं उसने अनुभव की हैं, जो प्रेम अनुभव किए हैं, जो गलतियां उसने की हैं, जिन गलत रास्तों पर वह भटकी है और भरमी है, उन सारी कथा को अपने बच्चों को जो नहीं दे जाते हैं, वे बच्चों का हित नहीं करते हैं। तो शायद दुनिया ज्यादा साफ होगी।

हम दूसरी चीजों के संबंध में साफ हो गए हैं। अगर केमिस्ट्री के संबंध में कोई बात जाननी हो, तो सब साफ है। फिजिक्स के संबंध में कोई बात जाननी हो, सब साफ है। भूगोल के बाबत जाननी हो कि टिम्बकटू कहां है? कुस्तुनतुनिया कहां है? सब साफ है, नक्शा बना हुआ है। आदमी के बाबत कुछ भी साफ नहीं है, कहीं कोई नक्शा नहीं है। आदमी के बाबत सब झूठ है! इसलिए दुनिया सब तरह से विकसित हो रही है, सिर्फ आदमी विकसित नहीं हो रहा है। आदमी के संबंध में भी जिस दिन साइंटिफिक एटिट्यूड, चीजें साफ-साफ देखने की हिम्मत हम जुटा लेंगे, उस दिन आदमी का भी विकास निश्चित है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। मेरी बातों को सोचना। मान लेने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि हो सकता है, जो मैं कहूं, बिल्कुल गलत हो। सोचना, समझना, कोशिश करना। हो सकता है कोई सत्य तुम्हें दिखाई पड़े। जो सत्य तुम्हें दिखाई पड़ जाएगा, वह तुम्हारे जीवन में प्रकाश का दीया बन जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में तुम सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

प्रेम और विवाह

मनुष्य की आत्मा, मनुष्य के प्राण निरंतर ही परमात्मा को पाने के लिए आतुर हैं। लेकिन किस परमात्मा को? कैसे परमात्मा को? उसका कोई अनुभव, उसका कोई आकार, उसकी कोई दिशा मनुष्य को ज्ञात नहीं है। सिर्फ एक छोटा सा अनुभव है, जो मनुष्य को ज्ञात है और जो परमात्मा की झलक दे सकता है। वह अनुभव प्रेम का अनुभव है। जिसके जीवन में प्रेम की भी कोई झलक नहीं है, उसके जीवन में परमात्मा के आने की कोई संभावना नहीं है।

न तो प्रार्थनाएं परमात्मा तक पहुंचा सकती हैं, न धर्मशास्त्र पहुंचा सकते हैं, न मंदिर-मस्जिद पहुंचा सकते हैं, न कोई संगठन हिंदू और मुसलमानों के और ईसाइयों और पारसियों के पहुंचा सकते हैं। एक ही बात परमात्मा तक पहुंचा सकती है और वह यह है कि प्राणों में प्रेम की ज्योति का जन्म हो जाए।

मंदिर और मस्जिद तो प्रेम की ज्योति को बुझाने का काम करते रहे हैं। जिन्हें हम धर्मगुरु कहें, वे मनुष्य को मनुष्य से तोड़ने के लिए जहर फैलाते रहे हैं। जिन्हें हम धर्मशास्त्र कहें, वे घृणा और हिंसा के आधार और माध्यम बन गए हैं।

और जो परमात्मा तक पहुंचा सकता था, वह प्रेम अत्यंत उपेक्षित, अत्यंत निग्लेक्टेड, जीवन के रास्ते के किनारे कहीं अंधेरे में पड़ा रह गया है। इसलिए पांच हजार वर्षों से आदमी प्रार्थनाएं कर रहा है, पांच हजार वर्षों से आदमी भजन-पूजन कर रहा है, पांच हजार वर्षों से मंदिरों और मस्जिदों की मूर्तियों के सामने सिर टेक रहा है, लेकिन परमात्मा की कोई झलक मनुष्यता को उपलब्ध नहीं हो सकी। परमात्मा की कोई किरण मनुष्य के भीतर अवतरित नहीं हो सकी। कोरी प्रार्थनाएं हाथ में रह गई हैं, और आदमी रोज-रोज नीचे गिरता गया है, रोज-रोज अंधेरे में भटकता गया है। आनंद के केवल सपने हाथ में रह गए हैं, सच्चाइयां अत्यंत दुखपूर्ण होती चली गई हैं। और आज तो आदमी करीब-करीब ऐसी जगह खड़ा हो गया है, जहां उसे यह खयाल भी लाना असंभव होता जा रहा है कि परमात्मा भी हो सकता है।

क्या आपने कभी सोचा कि यह घटना कैसे घट गई है? क्या नास्तिक इसके लिए जिम्मेवार हैं कि लोगों की आकांक्षा और अभीप्सा ने परमात्मा की दिशा की तरफ जाना बंद कर दिया है? क्या वे लोग इसके लिए जिम्मेवार हैं--वैज्ञानिक और भौतिकवादी और मैटीरियलिस्ट--उन्होंने परमात्मा के द्वार बंद कर दिए हैं?

नहीं, परमात्मा के द्वार इसलिए बंद हो गए हैं कि परमात्मा का एक ही द्वार था--प्रेम, और वह प्रेम की तरफ हमारा कोई ध्यान ही नहीं रहा है! और भी अजीब और कठिन और आश्चर्य की बात यह हो गई है कि तथाकथित धार्मिक लोगों ने ही मिल-जुल कर प्रेम की हत्या कर दी है। और मनुष्य के जीवन को इस भांति सुव्यवस्थित करने की कोशिश की गई है कि उसमें प्रेम की किरण की संभावना ही न रह जाए।

नारी समाज की इस बैठक में मैं इस प्रेम के संबंध में थोड़ी सी बात कहना चाहता हूं, क्योंकि इसके अतिरिक्त मुझे कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता है कि कोई प्रभु तक कैसे पहुंच सकता है। और इतने लोग जो वंचित हो गए हैं प्रभु तक पहुंचने से, वह इसीलिए कि वे प्रेम तक पहुंचने से ही वंचित हो गए हैं।

समाज की पूरी की पूरी व्यवस्था अप्रेम की व्यवस्था है। परिवार का पूरा का पूरा केंद्र अप्रेम का केंद्र है। बच्चे के कंसेप्शन से लेकर, उसके गर्भाधारण से लेकर उसकी मृत्यु तक की सारी यात्रा अप्रेम की यात्रा है। और

हम इसी समाज को, इसी परिवार को, इसी गृहस्थी को सम्मान किए जाते हैं, आदर दिए जाते हैं, शोरगुल मचाए चले जाते हैं कि यह बड़ा पवित्र परिवार है, बड़ी पवित्र समाज है, बड़ा पवित्र जीवन है। और यही परिवार और यही समाज और यही सभ्यता, जिसके गुणगान करते हम थकते नहीं, यही सभ्यता और यही समाज और यही परिवार मनुष्य को परमात्मा से रोकने का कारण बन रहा है।

इस बात को थोड़ा समझ लेना जरूरी होगा।

मनुष्यता के विकास में कहीं कोई बुनियादी भूल हो गई है। यह सवाल नहीं है कि एकाध आदमी ईश्वर को पा ले। कोई कृष्ण, कोई राम, कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट ईश्वर को उपलब्ध हो जाए, यह कोई सवाल नहीं है। अरबों-खरबों लोगों में अगर एक आदमी के जीवन में ज्योति उतर आती हो, तो यह कोई विचार करने की बात भी नहीं है, इस पर कोई हिसाब रखने की भी जरूरत नहीं है।

एक माली एक बगीचा लगाए, उसमें दस करोड़ पौधे लगाए और एक पौधे में एक छोटा सा फूल आ जाए, तो उस माली की प्रशंसा करने कौन जाएगा? कौन कहेगा कि माली, तू बहुत कुशल है! तूने जो बगीचा लगाया है, वह बहुत अदभुत है! देख, दस करोड़ वृक्षों में एक फूल खिल गया है!

हम कहेंगे कि यह माली की कुशलता का सबूत नहीं है--यह फूल खिल जाना। माली की भूल-चूक से खिल गया होगा। क्योंकि बाकी सारे पेड़ खबर दे रहे हैं कि माली कितना कुशल है। यह इंस्पाइट, यह माली के बावजूद खिल गया होगा फूल। माली ने कोशिश की होगी कि न खिल पाए, क्योंकि सारे पौधे तो खबर दे रहे हैं कि माली के फूल कैसे खिले हुए हैं!

अरबों लोगों के बीच कभी एकाध आदमी के जीवन में ज्योति जल जाती है और हम उसी का शोरगुल मचाते रहते हैं हजारों साल तक, उसी की पूजा करते रहते हैं, उसी के मंदिर बनाते रहते हैं, उसी का गुणगान करते रहते हैं। अब तक हम रामलीला कर रहे हैं। अब तक बुद्ध की जयंती मना रहे हैं। अब तक महावीर की पूजा कर रहे हैं। अब तक क्राइस्ट के सामने घुटने टेके बैठे हुए हैं।

यह किस बात का सबूत है? यह इस बात का सबूत है कि पांच हजार साल में पांच-छह आदमियों के अतिरिक्त आदमियत के जीवन में परमात्मा का कोई संपर्क नहीं हो सका है। नहीं तो कभी का हम भूल गए होते राम को, कभी का हम भूल गए होते बुद्ध को, कभी का हम भूल गए होते महावीर को। महावीर को हुए ढाई हजार साल हो गए। ढाई हजार साल में कोई आदमी नहीं हुआ कि महावीर को हम भूल सकते। महावीर को याद रखना पड़ा है। वह एक फूल खिला था, वह अब तक हमें याद रखना पड़ा है।

यह कोई गौरव की बात नहीं है कि हमको अब तक स्मृति है बुद्ध की, महावीर की, कृष्ण की, राम की, मोहम्मद की, क्राइस्ट की या जरथुस्त्र की। यह इस बात का सबूत है कि आदमी होते ही नहीं कि उनको हम भुला सकें। बस दो-चार इने-गिने नाम अटके रह गए हैं मनुष्य-जाति की स्मृति में।

और उन नामों के पास भी हमने क्या किया है सिवाय उपद्रव के, हिंसा के? और उनकी पूजा करने वाले लोगों ने क्या किया है--सिवाय आदमी के जीवन को नरक बनाने के और क्या किया है? मस्जिदों और मंदिरों के पुजारियों ने और पूजकों ने जमीन पर जितनी हत्या की है और जितना खून बहाया है और जीवन का जितना अहित किया है, उतना किसी ने भी नहीं किया है।

जरूर कहीं कोई बुनियादी भूल हो गई है। नहीं तो इतने पौधे लगें और फूल न आएं, यह बड़े आश्चर्य की बात है! कहां भूल हो गई है?

मेरी दृष्टि में, मनुष्य के जीवन का केंद्र ही अब तक प्रेम नहीं बनाया जा सका, इसलिए भूल हो गई है। और वह प्रेम केंद्र बनेगा भी नहीं, क्योंकि जिन चीजों के कारण वह प्रेम जीवन का केंद्र नहीं बन रहा है, हम उन्हीं चीजों का शोरगुल मचा रहे हैं, आदर कर रहे हैं, सम्मान कर रहे हैं--तो कैसे होगा?

मनुष्य की जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा ही गलत हो गई है। इस पर पुनर्विचार करना जरूरी है। अन्यथा सिर्फ हम कामनाएं कर सकते हैं और कुछ भी उपलब्ध नहीं हो सकता है।

क्या गलत हो गया है? क्या आपको कभी यह बात खयाल में आई कि आपका परिवार प्रेम का शत्रु है? क्या आपको कभी यह बात खयाल में आई कि आपका समाज प्रेम का शत्रु है? क्या आपको यह बात कभी खयाल में आई कि मनु से लेकर आज तक के सभी नीतिकार प्रेम के विरोधी हैं?

जीवन का केंद्र है परिवार। और परिवार विवाह पर खड़ा किया गया है; जब कि परिवार प्रेम पर खड़ा होना चाहिए था। भूल हो गई, आदमी के सारे पारिवारिक विकास की बुनियादी भूल हो गई। परिवार निर्मित होना चाहिए प्रेम के केंद्र पर, और परिवार निर्मित किया जाता है विवाह के केंद्र पर! इससे ज्यादा झूठी और मिथ्या बात नहीं हो सकती।

प्रेम और विवाह का क्या संबंध है?

प्रेम से तो विवाह निकल सकता है, लेकिन विवाह से प्रेम नहीं निकलता और नहीं निकल सकता है। इस बात को थोड़ा समझ लें तो हम आगे बढ़ सकें।

प्रेम परमात्मा की व्यवस्था है और विवाह आदमी की व्यवस्था है।

विवाह सामाजिक संस्था है, प्रेम प्रकृति का दान है।

प्रेम तो प्राणों के किसी कोने में अनजाने, अपरिचित पैदा होता है।

और विवाह? विवाह समाज, कानून नियमित करता है, स्थिर करता है, बनाता है।

विवाह आदमी की ईजाद है।

और प्रेम? प्रेम परमात्मा का दान है।

हमने सारे परिवार को विवाह के केंद्र पर खड़ा कर दिया है, प्रेम के केंद्र पर नहीं। हमने यह मान रखा है कि विवाह कर देने से दो व्यक्ति प्रेम की दुनिया में उतर जाएंगे। अदभुत झूठी बात है! और पांच हजार वर्षों में भी हमको इसका खयाल नहीं आ सका, हम अदभुत अंधे हैं! दो आदमियों को साथ बांध देने से प्रेम के पैदा हो जाने की कोई जरूरत नहीं है, कोई अनिवार्यता नहीं है। बल्कि सच्चाई यह है कि जो लोग बंधा हुआ अनुभव करते हैं, वे आपस में प्रेम कभी भी नहीं कर सकते।

प्रेम का जन्म होता है स्वतंत्रता में। प्रेम का जन्म होता है स्वतंत्रता की भूमि में--जहां कोई बंधन नहीं है, जहां कोई जबरदस्ती नहीं है, जहां कोई कानून नहीं है। प्रेम तो व्यक्ति का अपना आत्मदान है--बंधन नहीं, जबरदस्ती नहीं। उसके पीछे कोई कानून नहीं, कोई नियम नहीं।

लेकिन हमने आज तक की मनुष्यता की सभ्यता को--सारी दुनिया में--प्रेम से वंचित कर दिया। शुरू किरण जो प्रेम की पैदा होती है स्त्री या पुरुष के मन में, युवक और युवती के मन में, उस पहली किरण की ही हम गला घोंट कर हत्या कर देते हैं। हम कहते हैं, विवाह, प्रेम नहीं। और फिर हम कहते हैं, विवाह से प्रेम पैदा होना चाहिए।

फिर जो प्रेम पैदा होता है, वह बिल्कुल पैदा किया होता है, कल्टीवेटेड होता है, कोशिश से लाया गया होता है। वह प्रेम वास्तविक नहीं होता। वह प्रेम स्पांटेनिअस नहीं होता। वह प्रेम प्राणों से सहज उठता नहीं,

फैलता नहीं। और जिसे हम विवाह से उत्पन्न प्रेम कहते हैं, वह प्रेम केवल सहवास के कारण पैदा हुआ मोह होता है। प्राणों की ललक और प्राणों का आकर्षण और प्राणों की विद्युत वहां अनुपस्थित होती है।

फिर यह परिवार बनता है--यह विवाह से पैदा हुआ परिवार। और परिवार की पवित्रताओं की कथाओं का हिसाब नहीं है! और परिवार की प्रशंसाओं की, स्तुतियों की भी कोई गणना नहीं है! और परिवार सबसे कुरूप संस्था साबित हुई है पूरे मनुष्य को विकृत करने में, परवर्टेड करने में। प्रेम से शून्य परिवार मनुष्य को विकृत करने में, अधार्मिक करने में, हिंसक बनाने में सबसे बड़ी संस्था साबित हुई है। प्रेम से शून्य परिवार से ज्यादा अग्ली और कुरूप कुछ भी नहीं है, और वही अधर्म का अड्डा बना हुआ है।

क्यों? जब एक बार एक युवक और युवती को हम विवाह में बांध देते हैं--बिना प्रेम के, बिना आंतरिक परिचय के, बिना एक-दूसरे के प्राणों के संगीत के--जब हम केवल धागों में और पंडित के मंत्रों में और वेदी की पूजा में और थोथे उपक्रम में उनको विवाह में बांध देते हैं, और फिर आशा करते हैं उनको साथ छोड़ कर कि उनके जीवन में प्रेम पैदा हो जाएगा! प्रेम पैदा नहीं होता, सिर्फ उनके संबंध कामुक होते हैं, सेक्सुअल होते हैं, और कोई संबंध नहीं होते। और जब उनका प्रेम पैदा नहीं हो पाता है... क्योंकि प्रेम पैदा किया नहीं जा सकता। प्रेम पैदा हो जाए तो दो व्यक्ति साथ जुड़ कर परिवार का निर्माण कर सकते हैं। लेकिन दो व्यक्तियों को परिवार के निर्माण के लिए जोड़ दिया जाए और फिर आशा की जाए कि प्रेम पैदा हो जाए, यह नहीं हो सकता। और जब प्रेम पैदा नहीं होता है तो क्या परिणाम घटित होते हैं, आपको पता है?

एक-एक परिवार कलह है। जिसको गृहस्थी हम कहते हैं, वह संघर्ष, कलह, द्वेष, ईर्ष्या और चौबीस घंटे के उपद्रव का अड्डा बना हुआ है। लेकिन न मालूम हम कैसे अंधे हैं कि इसे हम देखते भी नहीं! बाहर जब हम निकलते हैं तो हम मुस्कुराते हुए निकलते हैं। सब घर के आंसू पोंछ कर बाहर आ जाते हैं। पत्नी भी हंसती हुई मालूम पड़ती है, पति भी हंसता हुआ मालूम पड़ता है।

ये चेहरे झूठे हैं। ये दूसरों को दिखाई पड़ने वाले चेहरे हैं। घरों के भीतर के चेहरे बहुत आंसुओं से भरे हुए हैं। चौबीस घंटे कलह और संघर्ष में जीवन बीत रहा है। फिर इस कलह और संघर्ष के परिणाम होंगे। दो परिणाम होंगे। एक तो परिणाम यह होगा कि प्रेम के अतिरिक्त किसी व्यक्ति के जीवन में फुलफिलमेंट, आत्मतृप्ति नहीं उपलब्ध होती। प्रेम जो है, वह व्यक्तित्व की तृप्ति का चरम बिंदु है। और जब प्रेम नहीं मिलता तो व्यक्तित्व हमेशा अनफुलफिल्ड, हमेशा अधूरा, बेचैन, तड़फता हुआ, मांग करता हुआ कि मुझे पूर्ति चाहिए, हमेशा बेचैन, तड़फता हुआ रह जाता है। यह तड़फता हुआ व्यक्तित्व समाज में अनाचार पैदा करता है। क्योंकि यह तड़फता हुआ व्यक्तित्व प्रेम को खोजने निकलता है। विवाह में प्रेम नहीं मिलता। वह विवाह के अतिरिक्त प्रेम को खोजने की कोशिश करता है।

वेश्याएं पैदा होती हैं विवाह के कारण। विवाह है रूट, विवाह है जड़ वेश्याओं के पैदा होने की। और अब तक तो स्त्री वेश्याएं थीं, अब तो सभ्य मुल्कों में पुरुष वेश्याएं, मेल प्रास्टीट्यूट्स भी उपलब्ध हैं। वेश्या पैदा होगी। क्योंकि परिवार में जो प्रेम उपलब्ध होना चाहिए था वह नहीं उपलब्ध हुआ है, आदमी दूसरे घरों में झांक रहा है उस प्रेम के लिए। वेश्याएं होंगी। और अगर वेश्याएं रोक दी जाएंगी तो दूसरे परिवारों में पीछे के द्वारों से प्रेम के रास्ते निर्मित होंगे। इसीलिए तो सारे समाज ने यह तय कर लिया है कि कुछ वेश्याएं निश्चित कर दो, ताकि परिवारों का आचरण सुरक्षित रहे। कुछ स्त्रियों को पीड़ा में डाल दो, ताकि बाकी स्त्रियां पतिव्रता बनी रहें और सती-सावित्री बनी रहें।

लेकिन जो समाज ऐसे अनैतिक उपाय खोजता है... वेश्या जैसा अनैतिक उपाय और क्या हो सकता है? इससे ज्यादा और इम्मॉरल क्या हो सकता है? जिस समाज को वेश्याओं जैसी अनैतिक संस्थाएं ईजाद करनी पड़ती हैं, जान लेना चाहिए कि वह पूरा समाज बुनियादी रूप से अनैतिक होगा। अन्यथा यह अनैतिक ईजादों की आवश्यकता नहीं थी।

वेश्या पैदा होती है, अनाचार पैदा होता है, व्यभिचार पैदा होता है, तलाक पैदा होते हैं। नहीं तलाक होता, नहीं अनाचार होता, नहीं व्यभिचार होता, तो घर एक चौबीस घंटे का मानसिक तनाव और एंग्जाइटी बन जाता है।

सारी दुनिया में पागलों की संख्या बढ़ती गई है। ये पागल परिवार के भीतर पैदा होते हैं।

सारी दुनिया में स्त्रियां हिस्टेरिक होती चली जा रही हैं, न्यूरोटिक होती चली जा रही हैं, विक्षिप्त, उन्माद से भरती चली जा रही हैं। बेहोश होती हैं, गिरती हैं, चिल्लाती हैं, रोती हैं। पुरुष पागल होते चले जा रहे हैं। एक घंटे में जमीन पर एक हजार आत्महत्याएं हो जाती हैं! और हम चिल्लाए जा रहे हैं कि यह समाज हमारा बहुत महान है, ऋषि-मुनियों ने इसे निर्मित किया है। और हम चिल्लाए जा रहे हैं कि बहुत सोच-समझ कर इस समाज के आधार रखे गए हैं। कैसे ऋषि-मुनि और कैसे ये आधार? अभी एक घंटा मैं बोलूंगा, तो इस बीच एक हजार आदमी कहीं छुरा मार लेंगे, कोई ट्रेन के नीचे लेट जाएंगे, कोई जहर पी लेंगे! उन एक हजार लोगों की जिंदगी कैसी होगी जो हर घंटे मरने को तैयार हो जाते हैं?

और आप यह मत सोचना कि जो नहीं मरते हैं वे बहुत सुखमय हैं। कुल जमा कारण यह है कि वे मरने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। सुख-वुख का कोई भी सवाल नहीं है। कावर्ड्स हैं, कायर हैं, मरने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं, तो जीए चले जाते हैं, धक्के खाए चले जाते हैं और जीए चले जाते हैं। सोचते हैं, आज गलत है, तो कल सब ठीक हो जाएगा, परसों सब ठीक हो जाएगा। लेकिन मस्तिष्क उनके रुग्ण होते चले जाते हैं।

प्रेम के अतिरिक्त कोई आदमी कभी स्वस्थ नहीं हो सकता। प्रेम जीवन में न हो तो मस्तिष्क होगा रुग्ण, चिंता से भरेगा, तनाव से भरेगा। आदमी शराब पीएगा, नशे करेगा, कहीं जाकर अपने को भूल जाना चाहेगा कि यह सब मैं भूल जाऊं। दुनिया में बढ़ती हुई शराब शराबियों के कारण नहीं है। परिवार उस हालत में ला दिया है लोगों को कि बिना बेहोश हुए थोड़ी देर के लिए भी राहत मिलना मुश्किल हो गई है। तो लोग शराब पीते चले जाएंगे, लोग बेहोश पड़े रहेंगे, लोग हत्या करेंगे, लोग पागल हो जाएंगे।

अमेरिका में प्रतिदिन तीस लाख आदमी अपना मानसिक इलाज करवा रहे हैं। और ये सरकारी आंकड़े हैं! और आप भलीभांति जानते हैं, सरकारी आंकड़े कभी भी सही नहीं होते। तीस लाख सरकार कहती है, तो कितने लोग इलाज करा रहे होंगे, यह कहना मुश्किल है। और जो अमेरिका की हालत है, वह सारी दुनिया की हालत है। आधुनिक युग के मनसविद यह कहते हैं कि करीब-करीब चार आदमियों में तीन आदमी एबनार्मल हो गए हैं। चार आदमियों में तीन आदमी रुग्ण हो गए हैं, स्वस्थ नहीं हैं।

तो जिस समाज में चार आदमियों में तीन आदमी मानसिक रूप से रुग्ण हो जाते हों, उस समाज की फाउंडेशंस को, उसकी बुनियादों को फिर से सोच लेना जरूरी है। नहीं तो कल चार आदमी ही रुग्ण हो जाएंगे और फिर सोचने वाले भी शेष नहीं रह जाएंगे। फिर बहुत मुश्किल हो जाएगी।

लेकिन होता ऐसा है कि जब एक ही बीमारी से सारे लोग ग्रसित होते हैं, तो उस बीमारी का पता नहीं चलता है। हम सब एक से रुग्ण, बीमार, परेशान, झूठी मुस्कुराहट से भरे हुए, तो हमें बिल्कुल पता नहीं चलता। सभी ऐसे हैं, इसलिए एट ईज मालूम पड़ते हैं। जब सभी ऐसे हैं, तो ठीक है, ऐसे ही दुनिया चलती है, यही

जीवन है। और जब इतनी पीड़ा दिखाई पड़ती है तो हम ऋषि-मुनियों के वचन दोहराते हैं कि वह तो ऋषि-मुनियों ने पहले ही कह दिया है कि जीवन दुख है।

यह जीवन दुख नहीं है, यह दुख हम बनाए हुए हैं।

वह तो पहले ही ऋषि-मुनियों ने कह दिया है कि जीवन तो असार है, इससे छुटकारा पाना चाहिए।

जीवन असार नहीं है, यह असार हमने बनाया हुआ है। और जीवन से छुटकारा पाने की बातें सब दो कौड़ी की हैं। क्योंकि जो आदमी जीवन से छुटकारा पाने की कोशिश करता है, वह प्रभु को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि जीवन प्रभु है, जीवन परमात्मा है। जीवन में परमात्मा ही तो प्रकट हो रहा है। उससे जो भागेगा दूर, वह परमात्मा से ही दूर चला जाएगा।

लेकिन जब एक ही बीमारी पकड़ती है, पता नहीं चलता।

एक गांव में ऐसा हुआ, एक जादूगर आया और उसने एक कुएं में एक पुड़िया डाल दी। और कहा कि इस कुएं का जो भी पानी पीएगा वह पागल हो जाएगा। उस गांव में दो ही कुएं थे। एक गांव का कुआं था और एक राजा के महल का कुआं था। शाम तक गांव के लोगों को पानी पीना पड़ा, वे सब पागल हो गए। सिर्फ राजा, उसकी रानी, उसके वजीर पागल नहीं हुए, क्योंकि उनका अपना अलग कुआं था। वजीर बहुत खुश थे, रानी बहुत नाचती थी, राजा बहुत प्रसन्न था कि हम बच गए, हमारा अलग कुआं है।

लेकिन सांझ होते-होते उन्हें पता चला कि बच कर बड़ी भूल हो गई। सारी राजधानी के लोगों ने महल घेर लिया। और वे चिल्लाने लगे कि राजा पागल हो गया! राजा को निकाल बाहर करो! गांव भर पागल हो गया था, उसको राजा पागल मालूम पड़ने लगा।

राजा बहुत घबड़ाया, उसने अपने वजीर को कहा, अब क्या होगा? उसके सिपाही भी पागल हो गए, उसके सैनिक भी पागल हो गए। उसके पहरेदार भी चिल्ला रहे हैं कि राजा पागल हो गया, इसको निकाल बाहर करो! हमको स्वस्थ राजा चाहिए।

वजीर ने कहा, अब एक ही रास्ता है कि हम जल्दी से भागें और पीछे के रास्ते से जाकर उस कुएं का पानी पी लें जिसका इन सब लोगों ने पानी पीया है।

राजा भागा और जाकर उस कुएं का पानी पी लिया।

उस रात उस गांव में बड़ा जलसा मनाया गया, एक शोभायात्रा निकली। सारे गांव के लोग आनंद से नाचने लगे कि राजा का दिमाग ठीक हो गया। वह राजा भी पागल हो गया था तो उनको पता चला कि इसका दिमाग ठीक हो गया।

जब एक सी बीमारी पकड़ती है तो किसी को पता नहीं चलता।

पूरी आदमियत जड़ से रुग्ण है, इसलिए पता नहीं चलता। फिर हम दूसरी तरकीबें खोजते हैं इलाज की। कॉजेलिटी जो है, बुनियादी कारण जो है, उसको सोचते नहीं; ऊपरी इलाज सोचते हैं। ऊपरी इलाज हम क्या सोचते हैं? एक आदमी शराब पीने लगता है जीवन से घबरा कर। एक आदमी जाकर नृत्य देखने लगता है, वेश्या के घर बैठ जाता है जीवन से घबरा कर। दूसरा आदमी सिनेमा में बैठ जाता है। तीसरा आदमी इलेक्शन लड़ने लगता है, ताकि भूल जाए सब। इस उपद्रव में लग जाए तो भूल जाए सब। चौथा आदमी जाकर मंदिर में बैठ कर भजन-कीर्तन करने लगता है। यह भजन-कीर्तन करने वाला भी खुद के जीवन को भूलने की कोशिश कर रहा है। यह कोई परमात्मा को पाने का रास्ता नहीं है।

परमात्मा तो जीवन में प्रवेश से उपलब्ध होता है, जीवन से भागने से नहीं। ये सब एस्केप हैं--कि एक आदमी मंदिर में भजन-कीर्तन कर रहा है, हिल-डुल रहा है। हम कह रहे हैं, भक्त जी बहुत आनंदित हो रहे हैं। भक्त जी आनंदित नहीं हो रहे हैं, भक्त जी किसी दुख से भागे हुए हैं, उसको भुलाने की कोशिश कर रहे हैं। शराब का ही यह दूसरा रूप है। यह स्प्रिचुअल इंटाक्सिकेशन है, यह अध्यात्म के नाम से नई शराबें हैं, जो सारी दुनिया में चलती हैं। इन लोगों ने जीवन से भाग-भाग कर जिंदगी को बदला नहीं है आज तक; जिंदगी वैसी की वैसी दुख से भरी हुई है। और जब भी कोई दुखी हो जाता है, वह भी इनके पीछे चला जाता है कि हमको भी गुरुमंत्र दे दें, हमारा कान भी फूंक दें कि हम भी इसी तरह सुखी हो जाएं जैसे आप हो गए हो! लेकिन यह जिंदगी क्यों दुख पैदा कर रही है, इसको देखने के लिए, इसके विज्ञान को खोजने के लिए कोई भी जाता नहीं है।

मेरी दृष्टि में, जहां से शुरुआत होती है जीवन की, वहीं कुछ गड़बड़ हो गई है। और वह गड़बड़ यह हो गई है कि हमने मनुष्य-जाति को प्रेम की जगह विवाह से थोप दिया है। फिर विवाह होगा और ये सारे रूप पैदा होंगे। और जब दो व्यक्ति एक-दूसरे से बंध जाते हैं और उनके जीवन में कोई शांति और तृप्ति नहीं मिलती, तो वे दोनों एक-दूसरे पर क्रुद्ध हो जाते हैं--कि तेरे कारण मुझे शांति नहीं मिल पा रही है! और वह कहता है, तेरे कारण मुझे शांति नहीं मिल पा रही है! वे एक-दूसरे को सताना शुरू करते हैं, परेशान करना शुरू करते हैं, हैरान करना शुरू करते हैं। और इसी हैरानी, इसी परेशानी, इसी कलह, इसी एंग्जाइटी के बीच बच्चों का जन्म होता है। ये बच्चे पैदाइश से ही परवर्टेड हो जाते हैं, विकृत हो जाते हैं।

मेरी समझ में, मेरी दृष्टि में, किसी दिन जब मनुष्य-जाति आदमी के पूरे विज्ञान पर... आदमी की तो पूरी साइंस भी खड़ी नहीं हो सकी है कि आदमी कैसा स्वस्थ और शांत हो! भजन-कीर्तन के विज्ञान विज्ञान नहीं हैं। जिस दिन आदमी पूरी तरह आदमी के विज्ञान को विकसित करेगा, तो शायद आपको पता लगे कि दुनिया में बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट जैसे लोग शायद इसीलिए पैदा हो सके कि उनके मां-बाप ने जिस क्षण में संभोग किया था, उनके मां-बाप अपूर्व प्रेम से संयुक्त हुए थे। वह प्रेम के क्षण में कंसेप्शन हुआ था। यह किसी दिन, जिस दिन जनन-विज्ञान पूरा विकसित होगा, उस दिन शायद यह हमको पता चलेगा कि जो दुनिया में थोड़े से अदभुत लोग हुए हैं--शांत, आनंदित, प्रभु को उपलब्ध--वे वे ही लोग हैं, जिनका पहला अणु प्रेम की दीक्षा से उत्पन्न हुआ था, जिनका पहला जीवन-अणु प्रेम में सराबोर पैदा हुआ था।

पति और पत्नी कलह से भरे हुए हैं--क्रोध से, ईर्ष्या से, एक-दूसरे के प्रति संघर्ष से, अहंकार से। एक-दूसरे की छाती पर चढ़े हुए प.जेस कर रहे हैं, एक-दूसरे के मालिक बनना चाह रहे हैं, एक-दूसरे को डॉमिनेट करना चाह रहे हैं। इसी बीच उनके बच्चे पैदा हो रहे हैं। ये बच्चे किसी आध्यात्मिक जन्म में कैसे प्रवेश कर पाएंगे?

मैंने सुना है, एक घर में एक मां अपने छोटे बेटे और अपनी छोटी बेटी को--वे दोनों बेटे और बेटी बाहर मैदान में लड़ रहे थे, एक-दूसरे पर घूंसेबाजी कर रहे थे--उस मां ने उनसे कहा कि अरे, यह क्या करते हो? कितनी बार मैंने समझाया कि लड़ा मत करो, आपस में लड़ो मत!

उस लड़की ने कहा, मम्मी, वी आर नाट फाइटिंग, वी आर प्लेइंग मम्मी एंड डैडी। हम लड़ नहीं रहे हैं, हम तो मम्मी-डैडी का खेल कर रहे हैं। हम लड़ नहीं रहे हैं, हम तो मम्मी-डैडी का खेल दोहरा रहे हैं। जो घर में रोज हो रहा है, वह हम दोहरा रहे हैं।

यह खेल जन्म के क्षण से शुरू हो जाता है। इस संबंध में दो-चार बातें समझ लेनी बहुत जरूरी हैं।

पहली बातः मेरी दृष्टि में, जब एक स्त्री और पुरुष परिपूर्ण प्रेम के आधार पर मिलते हैं--उनका संभोग होता, उनका मिलन होता--तो उस परिपूर्ण प्रेम के तल पर उनके शरीर ही नहीं मिलते हैं, उनका मनस भी मिलता है, उनकी आत्मा भी मिलती है। वे एक लयपूर्ण संगीत में डूब जाते हैं, वे दोनों विलीन हो जाते हैं और शायद परमात्मा ही शेष रह जाता है उस क्षण में। और उस क्षण जिस बच्चे का गर्भाधान होता है, वह बच्चा परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है, क्योंकि प्रेम के क्षण का पहला कदम उसके जीवन में उठा लिया गया।

लेकिन जो मां-बाप, जो पति और पत्नी आपस में द्वेष से भरे हैं, घृणा से भरे हैं, क्रोध से भरे हैं, कलह से भरे हैं, वे भी मिलते हैं, लेकिन उनके शरीर ही मिलते हैं, उनकी आत्मा और प्राण नहीं मिलते। और उनके शरीर के ऊपरी मिलन से जो बच्चे पैदा होते हैं, वे अगर मैटीरियलिस्ट पैदा होते हों, शरीरवादी पैदा होते हों, सेक्सुअल पैदा होते हों, बीमार और रुग्ण पैदा होते हों, उनके जीवन में अगर कोई आत्मा की प्यास पैदा न होती हो, तो दोष मत देना उन बच्चों पर। बहुत दिया जा चुका यह दोष। दोष देना उन मां-बाप पर, जिनकी छवि लेकर वे जन्मते हैं, और जिनके सब अपराध और जिनकी सब बीमारियां लेकर जन्मते हैं, और जिनका सब क्रोध और घृणा लेकर जन्मते हैं। जन्म के साथ ही उनका पौधा विकृत हो जाता है, परवर्शन शुरू हो जाता है। फिर इनको पिलाओ गीता, इनको समझाओ कुरान, इनसे कहो कि प्रार्थना करो, सब झूठी हो जाती हैं! क्योंकि प्रेम का बीज ही शुरू नहीं हो सका तो प्रार्थना कैसे शुरू हो सकती है?

जब एक स्त्री और पुरुष परिपूर्ण प्रेम और आनंद में मिलते हैं, तो वह मिलन एक स्प्रिचुअल एक्ट हो जाता है, एक आध्यात्मिक कृत्य हो जाता है। फिर उसका सेक्स से कोई संबंध नहीं है। वह मिलन फिर कामुक नहीं है, वह मिलन शारीरिक नहीं है। वह मिलन इतना अनूठा है, वह उतना ही महत्वपूर्ण है, जितनी किसी योगी की समाधि। उतना ही महत्वपूर्ण है वह मिलन, जब दो आत्माएं परिपूर्ण प्रेम से संयुक्त होती हैं। और उतना ही पवित्र है वह कृत्य, क्योंकि परमात्मा उसी कृत्य से जीवन को जन्म देता है और जीवन को गति देता है।

लेकिन तथाकथित धार्मिक लोगों ने, तथाकथित झूठे समाज ने, तथाकथित झूठे परिवार ने अब तक यही समझाने की कोशिश की है कि सेक्स, काम, यौन अपवित्र है, घृणित है।

हद्द पागलपन की बातें हैं! अगर यौन घृणित है और अपवित्र है, तो सारा जीवन अपवित्र हो गया और घृणित हो गया। अगर सेक्स पाप है, तो सारा जीवन पाप हो गया, पूरा जीवन कंडेम्ड हो गया। और अगर जीवन ही पूरा कंडेम्ड हो जाएगा, तो कैसे प्रसन्न लोग उपलब्ध होंगे? कैसे प्रेम करने वाले लोग उपलब्ध होंगे? कैसे सच्चे लोग उपलब्ध होंगे? जब जीवन ही पूरा का पूरा पाप है, तो सारी रात अंधेरी हो गई। अब इसमें प्रकाश की किरण कहां से लानी पड़ेगी?

तो मैं आपको कहना चाहता हूं, एक नये मनुष्यता के जन्म के लिए सेक्स की पवित्रता, सेक्स की धार्मिकता स्वीकार करनी अत्यंत आवश्यक है; क्योंकि जीवन उससे जन्मता है, परमात्मा उसी कृत्य से जीवन को जन्माता है। और परमात्मा ने जिसको जीवन की शुरुआत बनाया है, वह पाप नहीं हो सकता!

लेकिन आदमी ने उसे पाप कर दिया है। जो चीज प्रेम से रहित है वह पाप हो जाती है; जो चीज प्रेम से शून्य है वह पाप हो जाती है। आदमी की जिंदगी में प्रेम नहीं रहा, इसलिए सिर्फ सेक्सुअलिटी रह गई, सिर्फ यौन रह गया। वह यौन पाप हो गया है। वह यौन का पाप नहीं है, वह हमारे प्रेम के अभाव का पाप है। और उस पाप से सारा जीवन शुरू होता है। फिर ये बच्चे पैदा होते हैं, फिर ये बच्चे जन्मते हैं।

और स्मरण रहे, जो पत्नी अपने पति को प्रेम की है, उसके लिए पति परमात्मा हो जाता है। शास्त्रों के समझाने से नहीं होती यह बात। जो पति अपनी पत्नी को प्रेम किया है, उसके लिए पत्नी भी परमात्मा हो जाती

है। क्योंकि प्रेम किसी को भी परमात्मा बना देता है। जिसकी तरफ मेरी आंखें प्रेम से उठती हैं, वही परमात्मा हो जाता है। परमात्मा का कोई और अर्थ नहीं है।

प्रेम की आंख सारे जगत में धीरे-धीरे परमात्मा को देखने लगती है।

लेकिन जो एक में ही नहीं देख पाता वह सारे जगत में देखने की बातें करता हो, तो वे बातें झूठी हैं, उन बातों का कोई आधार और अर्थ नहीं है।

रामानुज एक गांव में गए थे। और उस गांव में एक युवक उनके पास आया और कहने लगा, मुझे परमात्मा को पाना है।

रामानुज ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और कहा, तूने कभी प्रेम किया है?

वह युवक कहने लगा, प्रेम! ऐसी सांसारिक बातों से मैं हमेशा दूर रहा हूं। मैंने कभी कोई प्रेम नहीं किया। मुझे तो परमात्मा को पाना है।

रामानुज ने कहा, थोड़ा सोच कर देख! कभी किसी को प्रेम किया हो। किसी को भी!

उसने कहा, आप क्यों प्रेम की बातें कर रहे हैं? मैंने कभी किसी को प्रेम नहीं किया। मुझे तो परमात्मा को पाने का रास्ता बताइए।

रामानुज की आंखों में आंसू आ गए और उन्होंने कहा, मेरे बेटे, तू किसी और के पास जा, मैं तुझे परमात्मा का रास्ता न बता सकूंगा। क्योंकि जिसने कभी एक को भी प्रेम नहीं किया, उसके जीवन में परमात्मा की कोई शुरुआत ही नहीं हो सकती। क्योंकि प्रेम के ही क्षण में पहली दफा कोई व्यक्ति परमात्मा हो जाता है; वह पहली झलक है प्रभु की। फिर उसी झलक को आदमी बढ़ाता है, बढ़ाता है, बढ़ाता है। एक दिन वह झलक पूरी हो जाती है, सारा जगत उसी रूप में रूपांतरित हो जाता है। लेकिन जिसने पानी की बूंद नहीं देखी, वह कहता है, मुझे सागर चाहिए! वह कहता है, पानी की बूंद से मुझको कोई मतलब नहीं। पानी की बूंद का मैं क्या करूंगा? मुझे तो सागर चाहिए! उससे हम कहेंगे कि तूने पानी की बूंद भी नहीं देखी, पानी की बूंद भी नहीं पा सका और सागर पाने चल पड़ा है, तो तू पागल है। क्योंकि सागर क्या है? पानी की अनंत बूंदों का जोड़ है। परमात्मा क्या है? प्रेम की अनंत बूंदों का जोड़ है। तो प्रेम की एक बूंद अगर निंदित है तो हो गया पूरा परमात्मा निंदित। फिर हमारे झूठे परमात्मा खड़े होंगे, मूर्तियां खड़ी होंगी, पूजा-पाठ होगा, सब बकवास होगी; लेकिन हमारे प्राणों का कोई अंतर्संबंध उससे नहीं हो सकता है।

और यह भी ध्यान में रख लेना जरूरी है कि जब कोई स्त्री अपने पति को प्रेम करती है, अपने प्रेमी को प्रेम करती है, और प्रेम के कारण उससे बंधती है, समाज के कारण नहीं; उनका विवाह, उनका सहवास प्रेम से निकलता है, तो ही वह मां बन पाती है ठीक अर्थों में।

बच्चे पैदा कर लेने से कोई मां नहीं बनता। मां बनने का अर्थ बच्चे पैदा करना नहीं है। बच्चे पैदा कर लेने से कोई मां नहीं बन जाता। मां तो कोई तभी बनती है स्त्री और पिता तभी कोई पुरुष बनता है, जब उन्होंने एक-दूसरे को प्रेम किया हो। जब पत्नी अपने पति को प्रेम करती है, अपने प्रेमी को, तो बच्चे उसे अपने पति का पुनर्जन्म मालूम पड़ते हैं। वे रि-बर्थ हैं उसके प्रेमी की, वे फिर वही शक्लें हैं, फिर वही रूप है, फिर वही निर्दोष आंखें हैं; जो उसके पति में छिपा था, वह फिर प्रकट हुआ है। उसने अगर अपने पति को प्रेम किया है तो ही वह अपने बच्चों को प्रेम करती है।

बच्चों को किया गया प्रेम, पति को किए गए प्रेम की प्रतिध्वनि है। नहीं तो कोई बच्चों को प्रेम नहीं कर सकता। मां बच्चों को प्रेम नहीं कर सकती, जब तक उसने अपने पति को न चाहा हो पूरे प्राणों से। क्योंकि वे बच्चे

उसके पति की प्रतिकृतियां हैं, वे उसकी प्रतिध्वनियां हैं, वे उसकी ईकोज हैं। यह पति ही फिर वापस लौट आया है, फिर वापस लौट आया है। यह नया जन्म है उसके पति का। यह पति फिर पवित्र और नया होकर वापस लौट आया है। लेकिन पति के प्रति अगर प्रेम ही नहीं है तो ये बच्चों के प्रति प्रेम कैसे होगा? ये बच्चे उपेक्षित होंगे।

बाप भी तभी कोई बनता है, जब वह अपनी पत्नी को इतना प्रेम करता है कि पत्नी में उसे परमात्मा दिखाई पड़ने लगता है। तब बच्चे फिर उसकी पत्नी का ही लौटता हुआ रूप हैं। पत्नी को जब उसने पहली दफे देखा था, तब वह जैसी निर्दोष थी, तब जैसी शांत थी, तब जैसी सुंदर थी, तब जैसी उसकी आंखें झील की तरह थीं, इन बच्चों में फिर वे आंखें वापस लौट आई हैं। इन बच्चों में फिर वही चेहरा वापस लौट आया है। ये बच्चे फिर उसी छवि को नया करके आ गए हैं। जैसे पिछले बसंत में फूल खिले थे, पिछले बसंत में पत्ते आए थे पौधों पर। फिर साल बीत गया। पुराने पत्ते गिर गए हैं। फिर नई कोंपलें निकल आई हैं। फिर नये पत्तों से वृक्ष भर गए हैं। फिर लौट आया बसंत। फिर सब नया हो गया है। लेकिन जिसने पिछले बसंत को ही प्रेम नहीं किया था, वह इस बसंत को कैसे प्रेम कर सकेगा?

जीवन निरंतर लौट रहा है। निरंतर जीवन का पुनर्जन्म चल रहा है। रोज नया होता चला जाता है, पुराने पत्ते गिर जाते हैं, नये आ जाते हैं। जीवन की यह सतत सृजनात्मकता, यह क्रिएटिविटी ही तो परमात्मा है, यही तो प्रभु है। जो इसको पहचानेगा, वही तो उसे पहचानेगा।

लेकिन न मां बच्चों को प्रेम कर पाती है, न पिता बच्चों को प्रेम कर पाता है। और जब मां और बाप बच्चों को प्रेम नहीं कर पाते, तो बच्चे जन्म से ही पागल होने के रास्ते पर संलग्न हो जाते हैं। उनको दूध मिलता है, कपड़े मिलते हैं, मकान मिलते हैं, लेकिन प्रेम नहीं मिलता। और प्रेम के बिना उनको परमात्मा नहीं मिल सकता, और सब मिल सकता है।

अभी रूस का एक वैज्ञानिक बंदरों के ऊपर कुछ प्रयोग करता था। उसने कुछ नकली बंदरियां बनाईं, झूठी मदर्स बनाईं--नकली, बिजली के यंत्र, हाथ-पैर उनके बिजली के, तारों का उनका ढांचा। जो बंदर पैदा हुए, उनको नकली माताओं के पास... तो वे नकली माताओं से चिपक गए। वे पहले दिन के बच्चे, उनको कुछ पता नहीं कि कौन असली है, कौन नकली है। वे नकली मां के पास ले गए उनको पैदा होते से ही। वे जाकर उसकी छाती से चिपक गए। नकली दूध है, वह दूध उनके मुंह में जा रहा है। वे पी लेते हैं दूध, वे चिपके रहते हैं। वह बंदरिया नकली है, वह हिलती रहती है। बच्चे समझते हैं कि मां हिल-हिल कर उनको झुला रही है। ऐसे बीस बंदर के बच्चों को नकली मां के पास पाला गया। उनको अच्छा दूध दिया गया। मां ने उनको पूरी तरह हिलाया-डुलाया। मां कूदती है, फांदती है, सब करती है। वे बच्चे स्वस्थ दिखाई पड़ते थे। फिर वे बड़े भी हो गए। लेकिन वे सब बंदर पागल निकले। वे सब पागल हो गए, वे सब एबनार्मल साबित हुए! उनको दूध मिला, उनका शरीर ठीक हो गया, सब ठीक था; लेकिन उनका विक्षिप्त व्यवहार हो गया!

वैज्ञानिक बड़े हैरान हुए कि इनको क्या हुआ? इनको सब तो मिला, फिर ये विक्षिप्त कैसे हो गए?

एक चीज जो वैज्ञानिक की लेबोरेटरी में नहीं पकड़ी जा सकती, वह उनको नहीं मिली--प्रेम उनको नहीं मिला।

और जो उन बीस बंदरों की हालत हुई, वह साढ़े तीन करोड़ मनुष्यों की हो रही है। झूठी मां मिलती है, झूठा बाप मिलता है। नकली मां हिलाती रहती है, नकली बाप हिलाता रहता है। और ये बच्चे विक्षिप्त हो जाते हैं। फिर इनको हम कहते हैं कि ये शांत नहीं होते, ये अशांत होते चले जा रहे हैं। ये छुरेबाजी करते हैं, ये लड़कियों पर एसिड फेंकते हैं, ये कालेज में आग लगाते हैं, ये बस पर पत्थर फेंकते हैं, ये मास्टर को मारते हैं।

मारेंगे! मारे बिना इनका कोई रास्ता नहीं। अभी थोड़ा-थोड़ा मारते हैं, कल और ज्यादा मारेंगे। और तुम्हारे कोई शिक्षक, और तुम्हारे कोई नेता, और तुम्हारे कोई धर्मगुरु इनको नहीं समझा सकेंगे। क्योंकि यह सवाल समझाने का नहीं है, यह आत्मा रुग्ण पैदा हो रही है। यह रुग्ण आत्मा केऑस पैदा करेगी, यह चीजों को तोड़ेगी, फोड़ेगी, मिटाएगी। तीन हजार साल से जो चलती थी बात, वह अब क्लाइमेक्स पर पहुंच रही है।

सौ डिग्री तक हम पानी को गरम करते हैं, पानी भाप बन कर उड़ जाता है। निन्यानबे डिग्री तक नहीं उड़ता। निन्यानबे डिग्री तक पानी बना रहता है, फिर सौ डिग्री पर भाप बनने लगता है। सौ डिग्री पर पहुंच गया है आदमियत का पागलपन। अब वह भाप बन कर उड़ना शुरू हो रहा है। मत चिल्लाइए, मत परेशान होइए। बनने दीजिए भाप! और आप उपदेश देते रहिए और आपके साधु-संत समझाते रहें अच्छी-अच्छी बातें और गीता की टीकाएं करते रहें और कुरान पर प्रवचन करते रहें। करते रहो प्रवचन और टीकाएं गीता पर, और दोहराते रहो पुराने शब्दों को। यह भाप बननी बंद नहीं होगी। यह भाप बननी तब बंद होगी, जब जीवन की पूरी प्रक्रिया को हम समझेंगे कि कहीं कोई भूल हो रही है, कहीं कोई बुनियादी भूल हो रही है। और वह कोई आज की भूल नहीं है। चार हजार, पांच हजार साल की भूल है; क्लाइमेक्स पर पहुंच गई है, इसलिए मुश्किल खड़ी हुई जा रही है आज।

ये प्रेम से रिक्त बच्चे जन्मते हैं और प्रेम से रिक्त हवा में पाले जाते हैं। फिर यही नाटक ये दोहराएंगे--दे विल प्ले मम्मी एंड डैडी। वे फिर बड़े हो जाएंगे, फिर वे यही नाटक दोहराएंगे। वे भी विवाह में बांधे जाएंगे; क्योंकि समाज प्रेम को आज्ञा नहीं देता। न मां पसंद करती है कि उसकी लड़की किसी को प्रेम करे। न बाप पसंद करता है कि उसका बेटा किसी को प्रेम करे। न समाज पसंद करता है कि कोई किसी को प्रेम करे। प्रेम तो होना ही नहीं चाहिए। प्रेम तो पाप है। प्रेम तो होना ही नहीं चाहिए। वह तो बिल्कुल ही बात योग्य नहीं है। विवाह होना चाहिए। फिर प्रेम नहीं होगा; फिर विवाह होगा। फिर वही पहिया पूरा का पूरा घूम जाएगा।

आप कहेंगे कि जहां प्रेम होता है, वहां भी कोई बहुत अच्छी हालत तो नहीं मालूम होती।

नहीं मालूम होगी! क्योंकि प्रेम, जिस भांति आप देते हैं मौका, प्रेम एक चोरी की तरह होता है, प्रेम एक सीक्रेसी की तरह होता है, प्रेम एक अपराध की तरह होता है। प्रेम करने वाले डरते हुए प्रेम करते हैं, घबराए हुए प्रेम करते हैं, चोर की तरह प्रेम करते हैं, अपराधी की तरह प्रेम करते हैं। और सारा समाज उनके विरोध में है, सारे समाज की आंख उन पर लगी हुई है। सारे समाज के विद्रोह में वे प्रेम करते हैं। यह प्रेम भी स्वस्थ नहीं है। प्रेम के लिए स्वस्थ हवा नहीं है। इसके परिणाम भी अच्छे नहीं हो सकते।

प्रेम के लिए समाज को हवा पैदा करनी चाहिए, मौका पैदा करना चाहिए, अवसर पैदा करना चाहिए। प्रेम की शिक्षा दी जानी चाहिए, प्रेम की दीक्षा दी जानी चाहिए। प्रेम की तरफ बच्चों को विकसित किया जाना चाहिए। क्योंकि वही उनके जीवन का आधार बनेगा, वही उनके पूरे जीवन का केंद्र बनेगा, उसी केंद्र से उनका जीवन विकसित होगा। उसकी कोई बात नहीं, उससे हम दूर खड़े रहते हैं, आंख बंद किए खड़े रहते हैं। न मां बच्चों से प्रेम की बात करती है, न बाप। न कोई उन्हें सिखाता है कि प्रेम जीवन का आधार है। न उन्हें कोई निर्भय बनाता है कि तुम प्रेम के जगत में निर्भय होना। न कोई उनसे कहता है कि जब तक तुम्हारा किसी से प्रेम न हो, तब तक तुम विवाह मत करना। क्योंकि वह विवाह गलत होगा, झूठा होगा, पाप होगा। वह सारी कुरूपता की जड़ होगा और सारी मनुष्यता को पागल करने का कारण होगा।

तो एक बात आपसे कहना चाहता हूंः अगर मनुष्य-जाति को परमात्मा के निकट लाना है तो पहला काम--परमात्मा की बात मत करिए, मनुष्य-जाति को प्रेम के निकट ले आइए।

जरूर जोखिम के काम हैं। न मालूम कितने खतरे हो सकते हैं। समाज की बनी-बनाई व्यवस्था में न मालूम कितने परिवर्तन करने पड़ सकते हैं। लेकिन मत करिए परिवर्तन, तो यह समाज अपने ही हाथ मौत के किनारे पहुंच गया है, यह मर जाएगा। यह बच नहीं सकता। प्रेम से रिक्त लोग ही युद्धों को पैदा करते हैं। प्रेम से रिक्त लोग ही अपराधी बनते हैं। प्रेम से रिक्तता ही क्रिमिनलिटी की जड़ है और सारी दुनिया में अपराधी फैलते चले जाते हैं।

जैसा मैंने आपसे कहा, जैसे मैंने यह कहा कि अगर किसी दिन जनन-विज्ञान पूरा विकसित होगा, तो हम शायद पता लगा पाएं कि कृष्ण का जन्म किन स्थितियों में हुआ। किस हार्मनी में कृष्ण के मां-बाप ने, किस प्रेम के क्षण में कंसेप्शन लिया इस बच्चे को। किस प्रेम के क्षण में यह बच्चा अवतरित हुआ। तो शायद हमें दूसरी तरफ यह भी पता चल जाए कि हिटलर किस अप्रेम के क्षण में पैदा हुआ होगा। मुसोलिनी किस क्षण में पैदा हुआ होगा। तैमूरलंग, चंगीज खां किस अवसर पर पैदा हुए होंगे।

हो सकता है यह पता चले कि चंगीज खां दो संघर्ष, घृणा और क्रोध से भरे मां-बाप से पैदा हुआ हो। जिंदगी भर फिर वह क्रोध से भरा हुआ है। वह जो ओरिजिनल मोमेंटम है क्रोध का, वह उसको जिंदगी भर दौड़ाए चला जा रहा है। चंगीज खां जिस गांव में गया, लाखों लोगों को कटवा दिया।

तैमूरलंग जिस राजधानी में गया, दस-दस हजार बच्चों की गर्दनें कटवा देता, भालों में छिदवा देता। जुलूस निकलता तो दस हजार बच्चों की गर्दनें लटकी हुई हैं भालों के ऊपर, पीछे तैमूरलंग जा रहा है। लोग पूछते, यह तुम क्या करते हो? तो तैमूरलंग कहता, ताकि लोग याद रखें कि तैमूर कभी इस नगरी में आया था। इस पागल को याद रखवाने की और कोई बात समझ नहीं पड़ती थी!

हिटलर ने जर्मनी में साठ लाख यहूदियों की हत्या की! पांच सौ यहूदी रोज मारता रहा, रोज मारता रहा! स्टैलिन ने रूस में साठ लाख लोगों की हत्या की!

जरूर इनके जन्म के साथ कोई गड़बड़ हो गई। जरूर ये जन्म के साथ ही पागल पैदा हुए। न्यूरोसिस इनके जन्म के साथ इनके खून में आई और फिर वह इनको फैलाती चली गई। और पागलों में बड़ी ताकत होती है! और पागल कब्जा कर लेते हैं, और पागल दौड़ कर हावी हो जाते हैं--धन पर, पद पर, यश पर, और सारी दुनिया को विकृत करते हैं। पागल ताकतवर होता है।

यह जो पागलों ने दुनिया बनाई है, यह दुनिया तीसरे महायुद्ध के करीब आ गई है। सारी दुनिया मरेगी। पहले महायुद्ध में साढ़े तीन करा.ेड लोगों की हत्या की गई, दूसरे महायुद्ध में साढ़े सात करोड़ लोगों की हत्या की गई, अब तीसरे में कितनी की जाएगी?

मैंने सुना है, आइंस्टीन जब मर कर भगवान के घर पहुंच गया तो भगवान ने आइंस्टीन से पूछा कि मैं बहुत घबराया हुआ हूं, तीसरे महायुद्ध के संबंध में कुछ बताओ? क्या होगा? आइंस्टीन ने कहा, तीसरे के बाबत कहना मुश्किल है, मैं चौथे के संबंध में कुछ जरूर बता सकता हूं। भगवान ने कहा, तीसरे के बाबत नहीं बता सकते तो चौथे के बाबत कैसे बताओगे? आइंस्टीन ने कहा, एक बात बता सकता हूं चौथे के बाबत, कि चौथा महायुद्ध कभी नहीं होगा; क्योंकि तीसरे में सब आदमी समाप्त हो जाएंगे। चौथे के होने की कोई संभावना नहीं है। और तीसरे के बाबत कुछ भी कहना मुश्किल है। साढ़े तीन अरब पागल आदमी क्या करेंगे तीसरे महायुद्ध में, कुछ नहीं कहा जा सकता कि क्या स्थिति होगी!

प्रेम से वियुक्त मनुष्य एकमात्र दुर्घटना है। तो मैं अंत में यह बात निवेदन करना चाहता हूं। मेरी बातें बड़ी अजीब लगी होंगी; क्योंकि ऋषि-मुनि इस तरह की बातें करते ही नहीं। मेरी बात बहुत अजीब लगी होगी।

क्योंकि आपने सोचा होगा कि मैं भजन-कीर्तन का कोई नुस्खा बताऊंगा। आपने सोचा होगा कि मैं कोई माला फेरने की तरकीब बताऊंगा। आपने सोचा होगा कि मैं कोई आपको ताबीज दे दूंगा, जिसको बांध कर आप परमात्मा से मिल जाएं। ऐसी कोई बात मैं आपको नहीं बता सकता हूं। ऐसे बताने वाले सब बेईमान, धोखेबाज हैं। समाज को उन्हीं ने बर्बाद किया है।

समाज की जिंदगी को समझने के लिए उसके मनुष्य के पूरे विज्ञान को समझना जरूरी है। परिवार को, दंपति को, समाज को, उसकी पूरी व्यवस्था को समझना जरूरी है कि कहां क्या गड़बड़ हो रहा है। वह गड़बड़ के बाबत एक ही बात मैंने आपसे कही, जान कर मैंने कही, क्योंकि यह स्त्रियों की सभा थी; जान कर मैंने यह कही, क्योंकि स्त्रियां परिवार का, समाज का केंद्र हैं। उनके हाथ में बड़ी ताकत है। उनके हाथ में पूरी जिंदगी है। वे पत्नियां भी हैं, वे मां भी हैं, वे बहन भी हैं। एक बहुत बड़े घेरे पर उनके प्रेम का प्रभाव पड़ेगा। अगर सारी दुनिया की स्त्रियां यह तय कर लें कि हम पृथ्वी को एक प्रेम का घर बनाएंगे, झूठे विवाह का नहीं--हां, प्रेम से विवाह निकले, वह सच्चा विवाह होगा--हम सारी दुनिया को प्रेम का एक घर बनाएंगे। कितनी ही कठिनाई होगी, मुश्किलें होंगी, अव्यवस्था होगी, उसको सम्हालने का हम कोई उपाय खोजेंगे, विचार करेंगे। लेकिन दुनिया से हम, यह अप्रेम का जो जाल है, इसको तोड़ देंगे और प्रेम की एक दुनिया बनाएंगे, तो शायद पूरी मनुष्य-जाति बच सकती है और स्वस्थ हो सकती है।

और मैं आपको यह कहता हूं कि अगर सारे जगत में प्रेम के केंद्र पर परिवार बन जाए, तो सुपरमैन की जो कल्पना हजारों वर्षों से रही है आदमी को, महामानव की--वह नीत्शे कल्पना करता है और अरविंद कल्पना करते हैं--वह कल्पना पूरी हो सकती है। लेकिन न तो अरविंद की प्रार्थनाओं से और न नीत्शे के द्वारा पैदा किए गए फासिज्म से। वह सपना पूरा हो सकता है, अगर पृथ्वी पर हम प्रेम की प्रतिष्ठा को वापस लौटा लाएं, अगर प्रेम जीवन में वापस लौट आए, सम्मानित हो जाए, आदर से भर जाए। अगर प्रेम एक आध्यात्मिक मूल्य ले ले, तो नये मनुष्य का निर्माण हो सकता है--नई संतति का, नई पीढ़ियों का, नये आदमी का। और वह आदमी, वह बच्चा, वह भ्रूण, जिसका पहला अणु प्रेम से जन्मेगा, विश्वास किया जा सकता है, आश्वासन किया जा सकता है कि उसकी अंतिम श्वास परमात्मा में निकलेगी। प्रेम है प्रारंभ। परमात्मा है अंत। वह अंतिम सीढ़ी है।

जो प्रेम को ही नहीं पाता है, वह परमात्मा को तो पा ही नहीं सकता। यह इंपासिबिलिटी है, यह असंभावना है। लेकिन जो प्रेम में दीक्षित हो जाता है और प्रेम में विकसित होता है और प्रेम की श्वासों में पलता है और प्रेम के फूल जिसकी श्वास-श्वास बन जाते हैं और प्रेम जिसका अणु-अणु बन जाता है और जो प्रेम में बढ़ता जाता है, बढ़ता जाता है, एक दिन वह पाता है कि प्रेम की जिस गंगा में चला था, वह गंगा अब किनारे छोड़ रही है और सागर बन रही है। एक दिन वह पाता है कि गंगा के किनारे मिटते जाते हैं और अनंत सागर आ गया सामने। छोटी सी गंगा की धार थी गंगोत्री में--बड़ी छोटी सी प्रेम की धार होती है शुरू में--फिर वह बढ़ती है, फिर वह बड़ी होती है, फिर वह पहाड़ों और मैदानों को पार करती है, फिर एक वक्त आता है कि किनारे छूटने लगते हैं। जिस दिन प्रेम के किनारे छूट जाते हैं, उसी दिन प्रेम परमात्मा बन जाता है। जब तक प्रेम के किनारे होते हैं, तब तक वह परमात्मा नहीं होता। गंगा नदी होती है, जब तक कि वह इस जमीन के किनारों से बंधी होती है। फिर किनारे छूटते हैं और सागर से मिल जाती है। फिर वह परमात्मा से मिल जाती है। प्रेम की सरिता और परमात्मा का सागर है।

लेकिन हम प्रेम की सरिता ही नहीं हैं, हम प्रेम की नदियां ही नहीं हैं। और हम बैठे हैं हाथ-पैर जोड़े और प्रार्थना कर रहे हैं कि हमको भगवान चाहिए। जो सरिता नहीं है, वह सागर को कैसे पाएगा?

सारी मनुष्य-जाति के लिए एक पूरा आंदोलन चाहिए। पूरी मनुष्य-जाति के आमूल परिवर्तन की जरूरत है। पूरा परिवार बदलने की जरूरत है। बहुत कुरूप है हमारा परिवार। वह बहुत सुंदर हो सकता है, लेकिन प्रेम के केंद्र पर। पूरे समाज को बदलने की जरूरत है। और तब एक धार्मिक मनुष्यता जरूर पैदा हो सकती है। प्रेम प्रथम, परमात्मा अंतिम।

और क्यों प्रेम परमात्मा पर पहुंच जाता है? क्योंकि प्रेम है बीज और परमात्मा है वृक्ष। प्रेम का बीज ही फिर फूटता है और वृक्ष बन जाता है।

सारी दुनिया की स्त्रियों से मेरा कहने का यह मन होता है--और खासकर स्त्रियों से--क्योंकि पुरुष के लिए प्रेम और बहुत सी जीवन की दिशाओं में एक दिशा है। स्त्री के लिए प्रेम अकेली दिशा है। पुरुष के लिए प्रेम और बहुत से जीवन आयामों में एक आयाम है, एक डायमेंशन है। उसके और डायमेंशन भी हैं व्यक्तित्व के। लेकिन स्त्री का एक ही डायमेंशन है, एक ही दिशा है--वह प्रेम है। स्त्री पूरी प्रेम है। पुरुष प्रेम भी है, और दूसरी चीजें भी है।

तो अगर स्त्री का प्रेम विकसित हो और वह समझे प्रेम की कीमिया, प्रेम की केमिस्ट्री, और बच्चों को दीक्षा दे प्रेम की शिक्षा में और प्रेम के आकाश में उठने के लिए उनके पंखों को मजबूत करे... । अभी तो हम काट देते हैं पंख--जमीन पर सरको विवाह की, प्रेम के आकाश में मत उड़ना!

जरूर आकाश में उड़ना जोखिम का होता है, जमीन पर चलना जोखिम का नहीं होता। लेकिन जो जोखिम नहीं उठाते हैं, वे जमीन पर रेंगने वाले कीड़े हो जाते हैं। और जो जोखिम उठाते हैं, वे दूर अनंत आकाश में उड़ने वाले बाज पक्षी सिद्ध होते हैं। आदमी रेंगता हुआ कीड़ा हो गया है। कोई भी जोखिम मत उठाना, कोई रिस्क नहीं, कोई डेंजर नहीं, कोई खतरा मत उठाना। अपने घर का दरवाजा बंद करो और जमीन पर सरको। आकाश में मत उड़ना।

प्रेम की जोखिम सिखाएं, प्रेम का खतरा सिखाएं, प्रेम का अभय सिखाएं और प्रेम के आकाश में उड़ने के लिए उनके पंखों को मजबूत करें छोटे बच्चों के। और चारों तरफ जहां भी प्रेम पर हमला होता हो, उसके खिलाफ खड़े हो जाएं। प्रेम को मजबूत करें, ताकत दें।

प्रेम के जितने दुश्मन खड़े हैं दुनिया में--नीतिशास्त्री खड़े हुए हैं। थोथे हैं वे नीतिशास्त्री, क्योंकि प्रेम के विरोध में जो हो वह क्या नीतिशास्त्री होगा? साधु-संन्यासी खड़े हैं। क्योंकि वे कहते हैं, यह सब पाप है, यह सब बंधन है। इसको छोड़ो, परमात्मा की तरफ चलो।

जो आदमी कहता है कि प्रेम को छोड़ कर परमात्मा की तरफ चलो, वह परमात्मा का शत्रु है, क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त परमात्मा तक जाने का कोई रास्ता ही नहीं है।

बड़े-बूढ़े खड़े हैं, उनका अनुभव कहता है कि प्रेम खतरा है।

अनुभवी लोगों से जरा सावधान रहना, क्योंकि जिंदगी में कभी कोई नया रास्ता वे नहीं बनने देते हैं। वे कहते हैं, पुराने रास्ते का हमें अनुभव है, हम पुराने रास्ते पर चले हैं, उसी पर सबको चलना चाहिए।

लेकिन जिंदगी को रोज नया रास्ता चाहिए। जिंदगी कोई रेल की पटरियों पर दौड़ती हुई रेलगाड़ी नहीं है कि पटरियों पर, बंधी पटरियों पर दौड़ती रहे। और दौड़ेगी तो एक मशीन हो जाएगी। जिंदगी तो एक सरिता है, जो रोज नया रास्ता बना लेती है--पहाड़ों में, मैदानों में, जंगलों में। अनूठे रास्तों से निकलती है, अनजान जगत में प्रवेश करती है और सागर तक पहुंच जाती है।

तो नारियों के सामने एक ही काम है। वह काम यह नहीं है कि अनाथ बच्चों को पढ़ा रहे हैं बैठ कर। तुम्हारे बच्चे भी सब अनाथ हैं। नाम के लिए वे बच्चे हैं तुम्हारे। न उनकी मां है, न उनका बाप है।

समाजसेवक स्त्रियां सोचती हैं कि अनाथ बच्चों का अनाथालय खोल दिया, बहुत बड़ा काम कर दिया। उनको पता नहीं कि तुम्हारे बच्चे भी अनाथ हैं। तुम दूसरों के अनाथ बच्चों को शिक्षा देने जा रही हो, तुम पागल हो। तुम्हारे बच्चे खुद अनाथ हैं, आरफंस हैं, कोई नहीं है उनका--न तुम हो, न तुम्हारे पति हैं। न उनकी मां है, न उनका बाप है, कोई भी नहीं है उनका। क्योंकि वह प्रेम ही नहीं है जो उनको सनाथ बनाता।

सोचते हैं हम कि आदिवासी बच्चों को जाकर शिक्षा दे रहे हैं।

तुम आदिवासी बच्चों को शिक्षा दो, तुम्हारे बच्चे धीरे-धीरे आदिवासी हुए चले जा रहे हैं। बीटल हैं, बीटनिक हैं; फलां हैं, ढिकां हैं; ये फिर से आदमी के आदिवासी होने की शक्लें हैं।

तुम सोचती होओ, स्त्रियां सोचती हों कि जाएं और सेवा करें, और फलां करें, ढिकां करें।

जिस समाज में प्रेम नहीं है, उस समाज में सेवा कैसे हो सकती है? सेवा तो प्रेम की सुगंध है।

इसलिए मैं तो एक ही बात आज कहना चाहता हूं। और इस संबंध में बहुत से प्रश्न आपके मन में जरूर उठे होंगे, उठने चाहिए, तो अगर आपने चाहा तो मैं दुबारा आपके सारे प्रश्नों के उत्तर देना चाहूंगा। आज तो सिर्फ एक धक्का आपको दे देना चाहता हूं, कि आपके भीतर चिंतन शुरू हो जाए।

हो सकता है मेरी बातें आपको बुरी लगें। लगें तो बहुत अच्छा है। हो सकता है मेरी बातों से आपको चोट लगे, तिलमिलाहट पैदा हो। भगवान करे जितनी ज्यादा हो जाए, उतना अच्छा है, क्योंकि कुछ सोच-विचार पैदा होगा। हो सकता है मेरी सब बातें गलत हों, इसलिए मेरी बात मान लेने की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन मैंने जो कहा है, उस पर आप सोचना। मैं फिर दोहरा देता हूं दो-चार सूत्रों में मैंने क्या कहा और अपनी बात पूरी किए देता हूं।

आज तक का मनुष्य का समाज प्रेम के केंद्र पर निर्मित नहीं है, इसीलिए विक्षिप्तता है, इसीलिए पागलपन है, इसीलिए युद्ध हैं, इसीलिए आत्महत्याएं हैं, इसीलिए अपराध हैं। प्रेम की जगह आदमी ने एक झूठा सब्स्टीट्यूट विवाह का ईजाद कर लिया है। विवाह के कारण वेश्याएं हैं, गुंडे हैं। विवाह के कारण शराब है; विवाह के कारण बेहोशियां हैं; विवाह के कारण भागे हुए संन्यासी हैं; विवाह के कारण मंदिरों में भजन करने वाले झूठे लोग हैं। और जब तक विवाह है, तब तक यह रहेगा।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विवाह मिट जाए, मैं यह कह रहा हूं कि विवाह प्रेम से निकले। विवाह से प्रेम नहीं निकलता है। प्रेम से विवाह निकले तो शुभ है। और विवाह से प्रेम को निकालने की कोशिश की जाए तो यह प्रेम झूठा होगा, क्योंकि जबरदस्ती कभी भी कोई प्रेम नहीं निकाला जा सकता है। प्रेम या तो निकलता है या नहीं निकलता, जबरदस्ती नहीं निकाला जा सकता है।

तीसरी बात मैंने यह कही कि जो मां-बाप प्रेम से भरे हुए नहीं हैं, उनके बच्चे जन्म से ही विकृत, परवर्टेड, एबनार्मल, रुग्ण और बीमार पैदा होंगे। मैंने यह कहा कि जो मां-बाप, जो पति-पत्नी, जो प्रेमी युगल प्रेम के संभोग में लीन नहीं होते हैं, वे केवल उन बच्चों को पैदा करेंगे जो शरीरवादी होंगे, भौतिकवादी होंगे; जिनके जीवन की आंख पदार्थ के ऊपर कभी नहीं उठेगी, जो परमात्मा को देखने के लिए अंधे पैदा होंगे। आध्यात्मिक रूप से अंधे बच्चे हम पैदा कर रहे हैं।

मैंने आपसे यह कहा चौथी बात कि मां-बाप अगर एक-दूसरे को प्रेम करते हैं, तो ही वे बच्चों के मां बनेंगे, बाप बनेंगे; क्योंकि बच्चे उनकी ही प्रतिध्वनियां हैं। वे आया हुआ नया बसंत हैं। वे फिर से जीवन के दरख्त पर लगी हुई कोंपलें हैं। लेकिन जिसने पुराने बसंत को प्रेम नहीं किया, वह नये बसंत को कैसे प्रेम करेगा?

और मैंने अंतिम बात आपसे यह कही कि प्रेम शुरुआत है और परमात्मा अंतिम विकास है। प्रेम में जीवन शुरू हो तो परमात्मा पर पूर्ण होता है। प्रेम बीज बने तो परमात्मा अंतिम वृक्ष की छाया बनता है। प्रेम गंगोत्री हो तो परमात्मा का सागर उपलब्ध होता है।

इसलिए जिसके मन की भी कामना हो कि परमात्मा तक जाए, वह अपने जीवन को प्रेम के गीत से भर ले। और जिसकी भी आकांक्षा हो कि पूरी मनुष्यता परमात्मा के जीवन से भर जाए, वह सारी मनुष्यता को प्रेम की तरफ ले जाने के मार्ग पर जितनी बाधाएं हों, उनको तोड़े, मिटाए और प्रेम को उन्मुक्त आकाश दे, ताकि एक दिन एक नये मनुष्य का जन्म हो सके।

पुराना मनुष्य रुग्ण था, कुरूप था, अशुभ था। पुराने मनुष्य ने अपनी स्युसाइड का इंतजाम कर लिया है। वह विश्वघात कर रहा है। सारे जगत में एक साथ आत्मघात कर लेगा। यूनिवर्सल स्युसाइड का इंतजाम कर लिया है। अगर इसे बचाना है, तो प्रेम की वर्षा और प्रेम की भूमि और प्रेम के आकाश को निर्मित कर लेना जरूरी है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे मैं बहुत-बहुत आनंदित हूं। अगर मेरी बात से किसी के मन को जरा भी चोट और ठेस पहुंची हो, तो वह मुझे क्षमा कर दे। उसे चोट और ठेस पहुंचाने की मेरी कोई इच्छा नहीं। लेकिन मेरे हृदय में बड़ी पीड़ा जरूर है, क्योंकि आदमी के साथ जो हुआ है वह बहुत पीड़ादायी है। और मेरी पीड़ा के कारण ही मुझे लगता है कि यह सब कुछ तोड़ दिया जाए एकबारगी, तो शायद सब कुछ नया हो, जीवन ठीक दिशा में गतिमान हो सके।

अंत में सबको फिर से धन्यवाद देता हूं मेरी बातें सुनने के लिए। और मेरी बातें सोचेंगे, इसका आग्रह करता हूं।

और सबसे अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

चौथा प्रवचन

जनसंख्या विस्फोट

पृथ्वी के नीचे दबे हुए, पहाड़ों की कंदराओं में छिपे हुए, समुद्र की तलहटी में खोजे गए ऐसे बहुत से पशुओं के अस्थिपंजर मिले हैं जिनका अब कोई भी निशान शेष नहीं रह गया। वे कभी थे। आज से दस लाख साल पहले पृथ्वी बहुत से सरीसृपों से भरी थी, सरकने वाले जानवरों से भरी थी। लेकिन आज हमारे घर में छिपकली के अतिरिक्त उनका कोई प्रतिनिधि नहीं रह गया है। छिपकली भी बहुत छोटा प्रतिनिधि है। दस लाख साल पहले उसके पूर्वज हाथियों से भी पांच गुने और दस गुने बड़े थे। वे सब कहां खो गए? इतने शक्तिशाली पशु पृथ्वी से कैसे विनष्ट हो गए? किसी ने उन पर हमला किया? किसी ने एटम बम, हाइड्रोजन बम गिराया?

नहीं; उनके खत्म हो जाने की बड़ी अदभुत कथा है। उन्होंने कभी सोचा भी न होगा कि वे समाप्त हो जाएंगे। वे समाप्त हो गए अपनी संतति के बढ़ जाने के कारण! वे इतने ज्यादा हो गए कि पृथ्वी पर जीना उनके लिए असंभव हो गया। भोजन कम हुआ; पानी कम हुआ; लिविंग स्पेस कम हुई; जीने के लिए जितनी जगह चाहिए, वह कम हो गई। उन पशुओं को बिल्कुल आमूल मिट जाना पड़ा!

ऐसी दुर्घटना आज तक मनुष्य-जाति के जीवन में नहीं आई है, लेकिन भविष्य में आ सकती है।

आज तक न आई उसका कारण यह था कि प्रकृति ने निरंतर मृत्यु को और जन्म को संतुलित रखा है। दस आदमी पैदा होते थे बुद्ध के जमाने में, तो सात या आठ व्यक्ति उसमें जन्म के बाद मर जाते थे। दुनिया की आबादी कभी इतनी नहीं बढ़ी थी कि भोजन की कमी पड़ जाए, स्थान की कमी पड़ जाए।

फिर विज्ञान और आदमी की निरंतर खोज ने, और मृत्यु से लड़ाई लेने ने, वह स्थिति पैदा कर दी कि आज दस बच्चे पैदा होते हैं सुसंस्कृत, सभ्य मुल्क में, तो मुश्किल से एक बच्चा मर पाता है। स्थिति बिल्कुल उलटी हो गई है। उम्र भी लंबी हुई। आज रूस में डेढ़ सौ वर्ष की उम्र के भी हजारों लोग हैं। औसत उम्र अस्सी और बयासी वर्ष तक कुछ मुल्कों में पहुंच गई है। स्वाभाविक परिणाम जो होना था वह यह हुआ कि जन्म की दर तो पुरानी रही, मृत्यु की दर हमने कम कर दी। अकाल होते थे, अकाल बंद कर दिए। महामारियां आती थीं, प्लेग होता था, मलेरिया होता था, हैजा होता था, वे हमने कम कर दिए। हमने मृत्यु के बहुत से द्वार रोक दिए और जन्म के सब द्वार खुले छोड़ दिए। मृत्यु और जन्म के बीच जो संतुलन था वह विनष्ट हो गया।

उन्नीस सौ पैंतालीस में हिरोशिमा में एटम बम गिरा, एक लाख आदमी एटम बम से मरे। उस समय लोगों को लगा कि बहुत बड़ा खतरा है, अगर एटम बनता चला गया तो सारी दुनिया नष्ट हो सकती है। लेकिन आज जो लोग समझते हैं, वे यह कहते हैं कि दुनिया के नष्ट होने की संभावना एटम से बहुत कम है, दुनिया के नष्ट होने की संभावना, लोगों के मरने की, नष्ट होने की जो नई संभावना है वह है लोगों के पैदा होने से!

एक एटम बम गिरा कर हिरोशिमा में एक लाख आदमी हमने मारे। लेकिन हम प्रतिदिन डेढ़ लाख आदमी सारी दुनिया में बढ़ा लेते हैं। एक हिरोशिमा, डेढ़ हिरोशिमा हम रोज पैदा कर लेते हैं। डेढ़ लाख आदमी प्रतिदिन बढ़ जाता है। इसका डर है कि अगर इसी तरह संख्या बढ़ती चली गई तो इस सदी के पूरे होते-होते कोहनी हिलाने के लिए भी जगह पृथ्वी पर शेष नहीं रह जाएगी। और तब सभाएं करने की जरूरत न होगी, क्योंकि हम चौबीस घंटे सभाओं में ही होंगे।

आज भी न्यूयार्क या बंबई में चौबीस घंटे कोहनी हिलाने की फुर्सत नहीं है, सुविधा नहीं है, अवकाश नहीं है। ऐसी स्थिति सारी पृथ्वी की हो जानी सुनिश्चित है। इसलिए इस समय सबसे बड़ी चिंता, जो मनुष्य-जाति के हित के संबंध में सोचते हैं, उन लोगों के समक्ष एक्सप्लोजन ऑफ पापुलेशन है। यह जो जनसंख्या का विस्फोट है, यह है। हमने मृत्यु को रोक दिया और जन्म को अगर हमने पुराने रास्ते पर चलने दिया, तो बहुत डर है कि पृथ्वी हमारी संख्या से ही डूब जाए और नष्ट हो जाए। हम इतने ज्यादा हो जाएं कि जीना असंभव हो जाए।

इसलिए जो भी विचारशील हैं वे कहेंगे, जिस भांति हमने मृत्यु को रोका उस भांति हम जन्म को भी रोकें। और जन्म को रोकना बहुत हितकर हो सकता है, बहुत महत्वपूर्ण हो सकता है।। बहुत दिशाओं से।

पहली बात तो यह ध्यान में रख लेनी है कि जीवन एक अवकाश चाहता है।

जंगल में एक जानवर है, मुक्त, मीलों के घेरे में घूमता है, दौड़ता है। उसे कठघरे में बंद कर दें। और उसका विक्षिप्त होना शुरू हो जाता है। बंदर हैं, मीलों की यात्रा करते रहते हैं। पचास बंदरों को एक मकान में बंद कर दें। और उनका पागल होना शुरू हो जाता है। प्रत्येक बंदर को एक लिविंग स्पेस चाहिए, एक जगह चाहिए खुली, जहां वह जी सके।

अब बंबई में या न्यूयार्क में या वाशिंगटन में या मास्को में वह लिविंग स्पेस खो गई है। छोटे-छोटे कठघरों में आदमी बंद है। एक-एक घर में, एक-एक कमरे में दस-दस, बारह-बारह लोग बंद हैं। वहीं वे पैदा होते हैं, वहीं वे मरते हैं, वहीं वे जीते हैं, वहीं वे भोजन करते हैं, वहीं वे बीमार होते हैं। एक-एक छोटे कमरे में दस-दस, बारह-बारह, पंद्रह-पंद्रह लोग बंद हैं। अगर वे विक्षिप्त न हो जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं है। अगर वे पागल न हो जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं है। वे पागल होंगे ही; वे नहीं हो पा रहे हैं, यही आश्चर्य है! इतने कम हो पा रहे हैं, यही आश्चर्य है!

मनुष्य को एक खुला स्थान चाहिए जीने के लिए। लेकिन संख्या अगर ज्यादा हो जाए तो खुला स्थान समाप्त हो जाएगा। हमें खयाल नहीं है, जब आप अकेले एक कमरे में होते हैं, तब आप एक मुक्ति अनुभव करते हैं। दस लोग आकर कमरे में सिर्फ बैठ जाएं।। कुछ करें न, आपसे बोलें भी न, आपको छुएं भी न, सिर्फ दस लोग कमरे में बैठ जाएं।। और आपके मस्तिष्क पर एक अनजाना भार पड़ना शुरू हो जाता है।

अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि चारों तरफ बढ़ती हुई भीड़, प्रत्येक व्यक्ति के मन पर एक अनजाना भार है। आप एक रास्ते पर चल रहे हैं अकेले में, कोई भी रास्ते पर नहीं है, तब आप दूसरे ढंग के आदमी होते हैं। और अगर उस रास्ते पर दो आदमी एक बगल की गली से निकल कर आ गए हैं, आप फौरन दूसरे आदमी हो जाते हैं, उनकी मौजूदगी आपके भीतर कोई तनाव पैदा कर देती है। आप अपने बाथरूम में स्नान करते हैं, तब आपने खयाल किया, आप वही आदमी नहीं होते जो आप अपने बैठकघर में होते हैं। बाथरूम में आप बिल्कुल दूसरे आदमी होते हैं। बूढ़ा भी बाथरूम में बच्चे जैसा उन्मुक्त हो जाता है। बूढ़े भी बाथरूम के आईने में बच्चों जैसी जीभें दिखाते हैं, मुंह चिढ़ाते हैं, नाच भी लेते हैं। लेकिन अगर पता चल जाए कि की-होल से, कुंजी के छेद से कोई झांक रहा है, तो वे फिर एकदम बूढ़े हो जाएंगे। उनका बचपन खो जाएगा। फिर वे सख्त और मजबूत और बदल जाएंगे।

कुछ क्षण चाहिए जब हम बिल्कुल अकेले हो सकें। मनुष्य की आत्मा के जो भी श्रेष्ठतम फूल हैं, वे एकांत में और अकेले में ही खिलते हैं। काव्य हो, संगीत हो, परमात्मा की प्रतिध्वनि मिले, वह सब एकांत और अकेले में ही मिलती है। आज तक जगत में भीड़-भाड़ में कोई श्रेष्ठ काम नहीं हो सका। भीड़ ने अब तक कोई श्रेष्ठ काम किया ही नहीं। जो भी जगत में श्रेष्ठ जन्मा है।। कविता, चित्र, संगीत, परमात्मा, प्रार्थना, प्रेम।। वे सब एकांत में

और अकेले के फूल हैं। लेकिन वे सब फूल मुरझा जाएंगे, मुरझा गए हैं, मुरझा रहे हैं, मिट जाएंगे; आदमी श्रेष्ठ से रिक्त हो जाएगा; क्योंकि भीड़ चारों तरफ से अनजाना दबाव डाले चली जाती है। सब तरफ आदमी हैं, सब तरफ आदमी हैं।

और एक बहुत बड़ी मजे की बात है, आदमी जितने बढ़ते हैं उतना व्यक्तित्व कम हो जाता है। भीड़ में कोई आदमी इंडिविजुअल नहीं होता, व्यक्ति नहीं होता। भीड़ में नाम मिट जाता है, आइडेंटिटी मिट जाती है, तादात्म्य मिट जाता है। आप कोई नहीं होते, भीड़ के एक अंग होते हैं। इसीलिए भीड़ बुरे काम कर सकती है। अकेला आदमी उतने बुरे काम नहीं कर पाता।

अगर किसी मस्जिद को जलाना हो, तो अकेला आदमी नहीं जला सकता, कितना ही पक्का हिंदू क्यों न हो। और अगर किसी मंदिर में राम की मूर्ति तोड़नी है, तो अकेला मुसलमान नहीं तोड़ सकता, कितना ही पक्का मुसलमान क्यों न हो। भीड़ चाहिए। अगर बच्चों की हत्या करनी हो और स्त्रियों के साथ बलात्कार करना हो और आग लगानी हो जिंदा आदमियों में, तो अकेला आदमी आग लगाने में बहुत कठिनाई अनुभव करता है। लेकिन भीड़ एकदम सरलता से कर पाती है।

क्यों? क्योंकि भीड़ में कोई व्यक्ति नहीं रह जाता। और जब व्यक्ति नहीं रह जाता तो दायित्व, रिस्पांसबिलिटी भी विदा हो जाती है। तब हम कह सकते हैं।। हमने नहीं किया, हम तो सिर्फ भीड़ में सम्मिलित थे। कभी आपने देखा है, अगर भीड़ तेजी से चल रही हो, नारे लगा रही हो, तो आप भी नारे लगाने लगते हैं और आप भी तेजी से चलने लगते हैं। तेजी से चलती भीड़ में आपके पैर भी तेज हो जाते हैं। नारे लगाती भीड़ में आपका नारा भी लगने लगता है।

एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि शुरू-शुरू में मेरे पास बहुत थोड़े लोग थे, दस-पंद्रह लोग ही थे। और दस-पंद्रह लोगों से कैसे एडोल्फ हिटलर हुकूमत तक पहुंचा, वह बड़ी अजीब कथा है। उसने लिखा है कि मैं अपने पंद्रह लोगों को लेकर सभा में पहुंचता था। पंद्रह लोगों को अलग-अलग कोनों पर खड़ा कर देता था। और जब मैं बोलता था, तो उन पंद्रह लोगों को पता था कि कब ताली बजानी है। वे पंद्रह लोग ताली बजाते थे, बाकी भीड़ उनके साथ हो जाती थी, बाकी भीड़ भी ताली बजाती थी।

कभी आपने खयाल किया है कि जब आप ताली बजाते हैं भीड़ में, तो आप नहीं बजाते, भीड़ बजवा लेती है। जब आप हंसते हैं भीड़ में, तो आप नहीं हंसते, भीड़ हंसवा लेती है। भीड़ संक्रामक है, वह कुछ भी करवा लेती है, क्योंकि वह व्यक्ति को मिटा देती है। वह जो व्यक्ति की आत्मा है, वह जो उसका अपना होना है, उसे पोंछ डालती है।

अगर पृथ्वी पर भीड़ बढ़ती चली गई तो व्यक्ति विदा हो जाएंगे, भीड़ रह जाएगी। व्यक्तित्व क्षीण हो जाएगा। क्षीण हुआ है। खत्म हो जाएगा, मिट जाएगा। बुझा जा रहा है। यही सवाल नहीं है कि पृथ्वी आगे इतनी भीड़ को लेकर जीने में असमर्थ होगी। अगर हमने कोई उपाय भी कर लिया।। समुद्र से खाना निकाल लिया। निकाल सकेंगे, क्योंकि मजबूरी होगी तो कोई उपाय खोजना पड़ेगा, समुद्र से खाना निकल सकेगा। हो सकता है हवाओं से भी खाना निकाला जा सके। और यह भी हो सकता है कि सूरज की किरणों से हम सीधा भोजन ग्रहण कर सकें। यह सब हो सकता है। सिंथेटिक फूड भी हो सकते हैं, सिर्फ गोलियां खाकर भी आदमी जिंदा रह सके। आखिर भीड़ बढ़ती जाएगी तो भोजन का तो हम कोई हल कर लेंगे। लेकिन आत्मा का हल नहीं हो सकेगा।

इसलिए मेरे सामने परिवार-नियोजन जैसी चीज केवल आर्थिक मामला नहीं है, बहुत गहरे अर्थों में धार्मिक मामला है। भोजन तो जुटाया जा सकेगा, इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। अगर भोजन की ही कठिनाई अगर लोग समझते हों तो बिल्कुल गलत समझते हैं। अभी समुद्र खाली पड़े हैं, अभी समुद्रों में बहुत भोजन है। और वैज्ञानिक प्रयोग यह कह रहे हैं कि समुद्रों के पानी से बहुत भोजन निकाला जा सकता है। आखिर मछली समुद्र से भोजन ले रही है। लाखों तरह के जानवर समुद्र से भोजन ले रहे हैं, पानी से। तो पानी से हम भी भोजन निकाल सकते हैं। आखिर मछली को हम खा लेते हैं तो हमारा भोजन बन जाता है। और मछली ने जो भोजन लिया वह पानी से लिया। अगर हम एक मशीन बना सकें जो मछली का काम कर सके तो पानी से हम सीधा भोजन पैदा कर लेंगे। आखिर मछली भी एक मशीन का काम करती है।

घास खाती है गाय, फिर गाय का दूध पी लेते हैं हम। हम सीधा घास खाएं तो मुश्किल होती है, बीच में मध्यस्थ गाय चाहिए। गाय घास को इस हालत में बदल देती है कि हमारे भोजन के योग्य हो जाता है। आज नहीं कल हम मशीन की गाय भी बना लेंगे, जो घास को इस हालत में बदल दे कि हम उसको ले लें। सिंथेटिक दूध जल्दी ही बन सकेगा। आखिर वेजिटेबल घी बन सकता है तो वेजिटेबल दूध क्यों नहीं बन सकता है? कोई कठिनाई नहीं है। भोजन का मामला तो हल हो जाएगा।

लेकिन असली सवाल भोजन का नहीं है, असली सवाल ज्यादा गहरे हैं। अगर आदमी की भीड़ बढ़ती जाती है और पृथ्वी कीड़े-मकोड़ों की तरह आदमी से भर जाती है, तो आदमी की आत्मा खो जाएगी। और उस आत्मा को देने का विज्ञान के पास कोई उपाय नहीं है, वह आत्मा खो ही जाएगी। और अगर भीड़ बढ़ती चली जाती है तो एक-एक व्यक्ति पर चारों तरफ से इतना अनजाना दबाव पड़ेगा... ।

हमें अनजाने दबाव दिखाई नहीं पड़ते। आप जमीन पर चलते हैं, आपने कभी सोचा है कि जमीन का ग्रेविटेशन आपको खींच रहा है? नहीं, हम बचपन से उसके आदी हो जाते हैं इसलिए पता नहीं चलता। लेकिन जमीन से बहुत बड़ा वजन हमें पूरे वक्त खींचे हुए है। वह तो अभी चांद पर जो यात्री गए उनको पता चला कि जमीन... अब लौट कर उनको जमीन वैसी कभी न लगेगी, जैसी पहले लगी थी। क्योंकि चांद पर वे सात फिट ऊंची छलांग भी लगा सकते हैं, चांद की पकड़ बहुत कम है, चांद बहुत नहीं खींचता है। जमीन बहुत जोर से खींच रही है। हवाएं चारों तरफ से दबा रही हैं। लेकिन उनका हमें पता नहीं चलता, क्योंकि हम उनके आदी हो गए हैं। और अनजाने दबाव भी हैं मानसिक। ये तो भौतिक दबाव हैं। चारों तरफ लोगों की मौजूदगी भी हमको दबा रही है। वे भी हमें भीतर की तरफ प्रेस कर रहे हैं। सिर्फ उनकी मौजूदगी भी हमें परेशान किए हुए है।

अगर यह भीड़ बढ़ती चली जाती है तो एक सीमा पर पूरी मनुष्यता के न्यूरोटिक, विक्षिप्त हो जाने का डर है। सच तो यह है कि आधुनिक मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण यह कहता है कि जो लोग पागल हुए जा रहे हैं, उन पागल होने वालों में नब्बे प्रतिशत पागल ऐसे हैं, जो भीड़ के दबाव को नहीं सह पा रहे हैं। दबाव चारों तरफ से बढ़ता चला जा रहा है। और भीतर दबाव को सहना मुश्किल हुआ जा रहा है। उनके मस्तिष्क की नसें फटी जा रही हैं।

इसलिए बहुत गहरे में सवाल सिर्फ मनुष्य के फिजिकल सरवाइवल, शारीरिक बचाव का नहीं, उसके आत्मिक बचाव का भी है। इसलिए जो लोग यह कहते हों कि संतति-नियमन जैसी चीजें अधार्मिक हैं, उन्हें धर्म का कोई पता ही नहीं है। क्योंकि धर्म का पहला सूत्र हैः व्यक्ति को व्यक्तित्व मिलना चाहिए और व्यक्ति के पास एक आत्मा होनी चाहिए; व्यक्ति भीड़ का हिस्सा न रह जाए।

लेकिन जितनी भीड़ बढ़ेगी, उतना हम व्यक्तियों की फिकर करने में असमर्थ हो जाएंगे। जितनी भीड़ ज्यादा हो जाएगी, उतनी हमें भीड़ की फिकर करनी पड़ेगी, व्यक्ति की फिकर नहीं करनी पड़ेगी। जितनी भीड़ बढ़ जाएगी, उतना हमें पूरे के पूरे जगत की इकट्ठी फिकर करनी पड़ेगी। फिर यह सवाल नहीं है कि आपको कौन सा भोजन प्रीतिकर है और कौन से कपड़े प्रीतिकर हैं और कैसा मकान प्रीतिकर है। यह सवाल नहीं है। कैसा मकान दिया जा सकता है भीड़ को, कैसे कपड़े दिए जा सकते हैं, कैसा भोजन दिया जा सकता है। व्यक्ति का सवाल विदा हो जाता है। तब भीड़ के एक अंश की तरह आपको कितना भोजन, कितना कपड़ा, कैसा उठना, कैसा बैठना, कैसा सोना दिया जा सकता है।

अब एक मित्र अभी जापान से लौटे। वे कह रहे थे कि जापान में घरों की इतनी तकलीफ है, भीड़ बढ़ती चली जा रही है, तो एक नये तरह के पलंग उन्होंने ईजाद किए हैं। आज नहीं कल हमें भी ईजाद करने पड़ेंगे। मल्टी स्टोरी पलंग! रात सो भी नहीं सकते अकेले, दस खाटें एक साथ जुड़ी हुई हैं एक के ऊपर एक। रात जब आप सोते हैं तो अपने नंबर की खाट पर चढ़ कर सो जाते हैं। बाकी नौ लोग भी अपनी-अपनी खाटों पर चढ़ कर सो जाते हैं। रात सोने में भी हम भीड़ के बाहर नहीं रह सकेंगे बहुत देर तक। क्योंकि भीड़ घुसती चली आ रही है, बढ़ती चली जा रही है। वह आपके सोने के कमरे में भी मौजूद हो जाएगी। अब दस आदमी एक ही खाट पर सो रहे हों, तो वह घर कम रह गया, रेलवे कंपार्टमेंट ज्यादा हो गया। रेलवे कंपार्टमेंट में भी दस, टेन टायर सीटें अभी वहां भी नहीं हैं।

लेकिन दस से ही मामला हल न हो जाएगा। अगर यह भीड़ बढ़ती जाती है तो सब तरह व्यक्ति का एनक्रोचमेंट करेगी। वह जो व्यक्ति है उसको सब तरफ से घेरेगी, सब तरफ से बंद करेगी। और हमें ऐसा कुछ करना पड़ेगा कि जिसमें धीरे-धीरे व्यक्ति खोता ही चला जाए, उसकी चिंता ही बंद कर देनी पड़े।

मेरी दृष्टि में, मनुष्य की संख्या का विस्फोट, जनसंख्या का विस्फोट बहुत गहरे अर्थों में धार्मिक सवाल है, सिर्फ भोजन का आर्थिक सवाल नहीं है।

दूसरी बात ध्यान देने जैसी है, और वह यह सोचने जैसा है कि आदमी ने अब तक जो भी जीवन की व्यवस्था की थी, समाज की जो व्यवस्था की थी, वे सारी परिस्थितियां बदल गई हैं। लेकिन हम पुरानी व्यवस्था से चिपटे चले जाते हैं; जब कि परिस्थितियां सारी बदल गई हैं। अब कोई परिस्थिति वही नहीं रह गई है जो आज से पांच हजार साल पहले मनु के जमाने की थी। जब परिस्थितियां बदल जाती हैं तब भी नियम पुराने ही चलते चले जाते हैं।

आज भी घर में एक बच्चा पैदा होता है, तो हम बैंड-बाजा बजाते हैं, झंडी लगाते हैं, संगीत का इंतजाम करते हैं, शोरगुल करते हैं, प्रसाद बांटते हैं। यह पांच हजार साल पहले बिल्कुल ही ठीक बात थी, क्योंकि पांच हजार साल पहले दस बच्चे पैदा होते थे तो सात और आठ बच्चे तो मर जाते थे। और पांच हजार साल पहले एक बच्चे का पैदा होना बड़ी घटना थी, समाज के लिए उसकी बड़ी जरूरत थी। क्योंकि समाज में बहुत थोड़े लोग थे। लोग ज्यादा होने चाहिए, नहीं तो पड़ोसी के हमले में जीतना मुश्किल हो जाएगा। एक व्यक्ति का बढ़ जाना बड़ी ताकत थी, क्योंकि व्यक्ति की अकेली ताकत थी, व्यक्ति से लड़ना था, पास के कबीले से हारना संभव हो जाता अगर संख्या कम हो जाती। इसलिए प्रत्येक कबीला संख्या को बढ़ाने की कोशिश करता था। संख्या जितनी बढ़ जाए उतना कबीला मजबूत हो जाता था। इसलिए संख्या का बड़ा गौरव था। हम कहते थे।। हम इतने करोड़ हैं! उसमें बड़ी अकड़ थी, उसमें बड़ा अहंकार था।

लेकिन वक्त बदल गया, हालतें बिल्कुल उलटी हो गईं। लेकिन नियम पुराना चल रहा है। हालतें बिल्कुल उलटी हो गई हैं। अब जो जितनी ज्यादा संख्या में है, उतने जल्दी पृथ्वी पर मरने के उसके उपाय हैं। तब जो जितनी ज्यादा संख्या में था, उतना ज्यादा उसके जीतने की संभावना थी, बचने की संभावना थी। आज संख्या जितनी ज्यादा होगी, उतने मरने का हम अपने हाथ से उपाय कर रहे हैं।

आज संख्या का बढ़ना सुसाइडल है, आत्मघाती है। आज कोई समझदार मुल्क अपनी संख्या नहीं बढ़ा रहा है। बल्कि समझदार मुल्कों में संख्या गिरने तक की संभावना पैदा हो गई है, जैसे फ्रांस में। फ्रांस की सरकार थोड़ी चिंतित हो गई है। क्योंकि संख्या कहीं ज्यादा न गिर जाए, यह भी डर पैदा हो गया है। लेकिन कोई समझदार मुल्क अपनी संख्या नहीं बढ़ा रहा है। संख्या न बढ़ाने की समझदारी के पीछे बहुत कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि अगर जीवन में सुख चाहिए, अधिकतम सुख चाहिए, तो न्यूनतम लोग चाहिए। अगर दीनता चाहिए, दुख चाहिए, गरीबी चाहिए, बीमारी चाहिए, पागलपन चाहिए, तो अधिकतम लोग पैदा करना उचित है।

जब एक बाप अपने पांचवें या छठवें बच्चे के बाद भी बच्चा पैदा कर रहा है, तो वह अपने बेटे का बाप नहीं है, दुश्मन है! क्योंकि वह उसे एक ऐसी दुनिया में धक्का दे रहा है जहां सिर्फ गरीबी बांट सकेगा वह; दुख बांट सकेगा; दुख बढ़ा सकेगा; गरीबी बढ़ा सकेगा। वह बेटे के प्रति प्रेम जाहिर नहीं कर रहा है। क्योंकि अगर बेटे के प्रति प्रेम जाहिर हो तो वह यह सोचेगा।। इस बेटे को मिल क्या सकता है? इसको पैदा करना अब प्रेम नहीं है, अब सिर्फ नासमझी है और दुश्मनी है।

आज दुनिया के समझदार मां-बाप तो बच्चे इतने पैदा करेंगे, इस बात को सोच कर कि आने वाली दुनिया में संख्या सुख की दुश्मन हो सकती है। कभी संख्या सुख की मित्र थी। कभी संख्या बढ़ने से सुख बढ़ता था। आज संख्या बढ़ने से दुख बढ़ता है। स्थितियां बिल्कुल बदल गई हैं। आज जिन लोगों को भी इस जगत में सुख की, मंगल की कामना है, उन्हें यह चिंता करनी ही पड़ेगी कि संख्या निरंतर कम होती चली जाए।

लेकिन हमारा एक देश है, हम अपने को अभागा मान सकते हैं। हमें उसका कोई भी बोध नहीं है। हमें उसका कोई भी खयाल नहीं है। उन्नीस सौ सैंतालीस में हिंदुस्तान-पाकिस्तान का बंटवारा हुआ था, तब तो किसी ने सोचा भी न होगा कि बीस साल में हम, पाकिस्तान में जितने लोग गए थे, उनसे ज्यादा लोग पैदा कर लेंगे। हमने एक पाकिस्तान फिर पैदा कर लिया। उन्नीस सौ सैंतालीस में जितनी हमारी संख्या थी पूरे हिंदुस्तान-पाकिस्तान की मिल कर, आज अकेले हिंदुस्तान की उससे ज्यादा है। यह संख्या अगर इसी अनुपात में बढ़ी चली जाती है और फिर दुख बढ़ता है, दारिद्र्य बढ़ता है, दीनता बढ़ती है, बेकारी बढ़ती है, बीमारी बढ़ती है, तो हम परेशान होते हैं, उससे हम लड़ते हैं। और हम कहते हैं कि बेकारी नहीं चाहिए, और हम कहते हैं कि गरीबी नहीं चाहिए, और हम कहते हैं कि हर आदमी को जीवन की सब सुविधाएं मिलनी चाहिए। और हम यह सोचते ही नहीं कि जो हम कर रहे हैं उससे हर आदमी को जीवन की सारी सुविधाएं कभी भी नहीं मिल सकती हैं। और जो हम कर रहे हैं उससे हमारे बेटे बेकार रहेंगे। और जो हम कर रहे हैं उससे भिखमंगी बढ़ेगी, गरीबी बढ़ेगी।

लेकिन धर्मगुरु हैं इस मुल्क में, जो समझाते हैं कि यह ईश्वर के विरोध में है यह बात, संतति-नियमन की बात ईश्वर के विरोध में है।

इसका यह मतलब हुआ कि ईश्वर चाहता है कि लोग दीन रहें, दरिद्र रहें, भीख मांगें, गरीब हों, भूखे मरें सड़कों पर। अगर ईश्वर यही चाहता है तो ऐसे ईश्वर की चाह को भी इनकार करना पड़ेगा।

लेकिन ईश्वर ऐसा कैसे चाह सकता है? लेकिन धर्मगुरु चाह सकते हैं। क्योंकि एक बड़े मजे की बात है, दुनिया में जितना दुख हो, धर्मगुरु की दुकान उतनी ही ठीक से चलती है। दुनिया में सुख हो तो उसकी दुकान चलनी बंद हो जाती है। धर्मगुरु की दुकान दुनिया के दुख पर निर्भर है। सुखी और आनंदित आदमी धर्मगुरु की तरफ नहीं जाता। स्वस्थ और प्रसन्न आदमी धर्मगुरु की तरफ नहीं जाता। दुखी, बीमार, परेशान धर्मगुरु की तलाश करता है।

हां, सुखी और आनंदित आदमी धर्म की खोज कर सकता है, लेकिन धर्मगुरु की नहीं। सुखी और आनंदित व्यक्ति अपनी तरफ से सीधा परमात्मा की खोज पर जा सकता है, लेकिन किसी का सहारा मांगने नहीं जाता। दुखी और परेशान आदमी आत्मविश्वास खो देता है। वह किसी का सहारा चाहता है, किसी गुरु के चरण चाहता है, किसी का हाथ चाहता है, किसी का मार्गदर्शन चाहता है।

दुनिया में जब तक दुख है तभी तक धर्मगुरु टिक सकता है। धर्म तो टिकेगा सुखी हो जाने के बाद भी, लेकिन धर्मगुरु के टिकने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए धर्मगुरु चाहेगा कि दुख खत्म न हो जाए, दुख समाप्त न हो जाए। अजीब-अजीब धंधे हैं!

मैंने सुना है, एक रात एक होटल में बहुत देर तक कुछ मित्र आकर शराब पीते रहे, भोजन करते रहे। आधी रात वे विदा होने लगे तो मैनेजर ने होटल के अपनी पत्नी से कहा कि ऐसे भले लोग, ऐसे प्यारे लोग, ऐसे दिलफेंक लोग, ऐसे खर्च करने वाले लोग अगर रोज आएं तो हमारी जिंदगी में आनंद ही आनंद हो जाए। चलते वक्त मेहमानों से उसने कहा कि आप कभी-कभी आया करें! बड़ी कृपा रही कि आप आए, हम बड़े आनंदित हुए। जिस आदमी ने पैसे चुकाए थे उसने कहा, भगवान से प्रार्थना करना, हमारा धंधा ठीक चले, हम रोज आते रहेंगे।

मैनेजर ने पूछा, लेकिन आपका धंधा क्या है? उसने कहा, यह मत पूछो! तुम तो सिर्फ प्रार्थना करना कि हमारा धंधा ठीक चलता रहे। फिर भी उसने कहा, कृपा कर बता तो दें कि धंधा आपका क्या है? उसने कहा, मैं मरघट पर लकड़ी बेचने का काम करता हूं। हमारा धंधा रोज चलता रहे, हम बराबर आते रहें। कभी-कभी ऐसा होता है, धंधा बिल्कुल ही नहीं चलता, कोई गांव में मरता ही नहीं, लकड़ी नहीं बिकती। जिस दिन गांव में ज्यादा लोग मरते हैं, उस दिन लकड़ी ज्यादा बिक जाती है, धंधा ठीक चल जाता है, हम चले आते हैं।

आपने सुना होगा न, डाक्टर भी कहते हैं, जब मरीज ज्यादा होते हैं तो वे कहते हैं।। सीजन चल रहा है।

आश्चर्य की बात है! अगर किन्हीं लोगों का धंधा लोगों के बीमार होने से चलता हो, तो फिर बीमारी मिटानी बहुत मुश्किल हो जाएगी। अब यह डाक्टर को हमने उलटा काम सौंपा हुआ है। उसको हमने काम सौंपा हुआ है कि वह लोगों की बीमारी मिटाए; और उसकी पूरी आकांक्षा भीतर यह है कि लोग बीमार हों, क्योंकि उसका व्यवसाय बीमारी पर खड़ा है।

इसलिए रूस में क्रांति के बाद उन्होंने जो बड़े काम किए उनमें एक काम यह था कि डाक्टर के काम को उन्होंने नेशनेलाइज कर दिया। उन्होंने कहा, डाक्टर का काम व्यक्तिगत कभी भी करना खतरनाक है। क्योंकि डाक्टर का काम कंट्राडिक्ट्री हो जाएगा, विरोधी हो जाएगा। ऊपर से बीमार को चाहेगा कि ठीक करे और भीतर से आकांक्षा रखेगा कि बीमार बीमार रहे, क्योंकि उसका धंधा तो बीमार के बीमार रहने पर चलेगा। इसलिए उन्होंने डाक्टर का धंधा, प्राइवेट प्रैक्टिस, बिल्कुल रूस में बंद कर दी। अब डाक्टर को तनख्वाह मिलती है। बल्कि उन्होंने एक नया प्रयोग किया, और वह यह प्रयोग किया कि अगर एक डाक्टर को जो एरिया दिया गया है, जो क्षेत्र दिया गया है, उसमें लोग ज्यादा बीमार होते हैं, तो डाक्टर से एक्सप्लेनेशन पूछा जा

सकता है कि इस इलाके में इतने लोग ज्यादा क्यों बीमार हुए? अब डाक्टर को इसकी फिकर रखनी पड़ती है कि कोई बीमार न पड़े। तो रूस के स्वास्थ्य में बुनियादी फर्क पड़े।

चीन में माओ ने आते से ही वकील के धंधे को नेशनेलाइज कर दिया। उसने कहा, वकील का धंधा खतरनाक है। क्योंकि वकील का धंधा भी कंट्राडिक्ट्री है। है तो वह इसलिए कि न्याय उपलब्ध हो, और उसकी सारी चेष्टा यह रहती है कि उपद्रव हों, चोरियां हों, हत्याएं हों। क्योंकि उस पर उसका धंधा निर्भर करता है, अगर वे न हों तो उसके तो जीवन का आधार टूट जाए।

धर्मगुरु का धंधा भी बड़ा विरोधी है। वह चेष्टा तो यह करता है कि लोग शांत हों, आनंदित हों, सुखी हों। लेकिन उसका धंधा इस पर निर्भर है कि लोग अशांत रहें, दुखी हों, बेचैन हों, परेशान हों। क्योंकि अशांत लोग ही उसके पास पूछने आते हैं कि हम शांत कैसे हों? दुखी आदमी उसके पास आता है कि हमारा दुख कैसे मिटे? दीन-दरिद्र उसके पास आता है कि हमारी दीनता-दरिद्रता का अंत कैसे हो?

धर्मगुरु का धंधा निर्भर है लोगों के बढ़ते हुए दुख पर। इसलिए जब भी दुनिया में दुख बढ़ जाता है तब धर्मगुरु एकदम प्रभावी हो जाता है। अनैतिकता बढ़ जाए तो धर्मगुरु प्रभावी हो जाता है, क्योंकि वह नीति का उपदेश देने लगता है। धर्मगुरु निर्भर ही इस बात पर है।

इसलिए धर्मगुरु तो विरोध करेगा। वह कहेगा कि नहीं; अगर लोग कम होंगे, सुखी हो सकेंगे, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।

और भी एक ध्यान रखने की बात है कि धर्मगुरु सारी बातों को ईश्वर पर थोप देता है। और सारी दुनिया के सब धर्मगुरुओं ने सब बातें ईश्वर पर थोप दी हैं। और ईश्वर कभी गवाही देने आता नहीं कि उसकी मर्जी क्या है! तो वह क्या चाहता है! उसकी क्या इच्छा है!

इंग्लैंड और जर्मनी अगर युद्ध में हों, तो इंग्लैंड का धर्मगुरु समझाता है कि ईश्वर की इच्छा है इंग्लैंड को जिताना और जर्मनी का धर्मगुरु समझाता है कि ईश्वर की इच्छा है जर्मनी को जिताना। जर्मनी में उसी भगवान से प्रार्थनाएं की जाती हैं कि अपने देश को जिताओ! और इंग्लैंड में पादरी और पुरोहित प्रार्थना करता है कि हे भगवान, अपने देश को जिताओ!

ईश्वर की इच्छा पर हम अपनी इच्छा थोपते रहे हैं। ईश्वर बेचारा बिल्कुल चुप है, उसका कुछ पता नहीं चलता कि उसकी इच्छा क्या है। अच्छा हो कि हम ईश्वर पर अपनी इच्छाएं न थोपें, बल्कि हम जीवन को सोचें, समझें और वैज्ञानिक रास्ता निकालें।

यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि जितना समाज समृद्ध होता है उतने कम बच्चे पैदा करता है। गरीब समाज ज्यादा बच्चे पैदा करता है। दीन और दरिद्र और भिखारी समाज और ज्यादा बच्चे पैदा करता है। कुछ कारण हैं। जितना कोई समृद्ध होता जाता है... आपने कभी न सुना होगा, अक्सर तो यह होता है, हिंदुस्तान में अक्सर होता है कि बड़े आदमी को अक्सर बेटे गोद लेने पड़ते हैं। जितना समृद्ध कोई होता चला जाता है उतने बच्चे कम पैदा होते हैं। जितना दुखी, दीन, दरिद्र होता है उतने ज्यादा बच्चे पैदा होते हैं। कुछ कारण है। कारण यह है कि दुखी, दीन, दरिद्र जीवन में और किसी मनोरंजन, और किसी सुख की सुविधा न होने से आदमी सिर्फ सेक्स और यौन में ही सुख लेने लगता है, और कोई उपाय नहीं है।

एक अमीर संगीत भी सुनता है, साहित्य भी पढ़ता है, चित्र भी देखता है, टेलीविजन भी देखता है, घूमने भी जाता है, पहाड़ की यात्रा भी करता है, उसकी शक्ति बहुत दिशाओं में बह जाती है। एक गरीब आदमी के पास शक्ति बहने का कोई उपाय नहीं रहता, उसके मनोरंजन का कोई उपाय नहीं। क्योंकि सब मनोरंजन

खर्चीले हैं, सिर्फ एक सेक्स ऐसा मनोरंजन है जो मुफ्त उपलब्ध है। इसलिए गरीब आदमी बच्चे इकट्ठे करता चला जाता है, वह बच्चे पैदा करता चला जाता है।

गरीब आदमी इतने बच्चे इकट्ठा कर लेता है कि और गरीबी बढ़ती चली जाती है, एक विसियस सर्किल पैदा हो जाता है। गरीब ज्यादा बच्चे पैदा करता है। गरीब के बच्चे और गरीब होते हैं, वे और बच्चे पैदा करते जाते हैं। और देश गरीब से गरीब होता चला जाता है।

किसी न किसी तरह गरीब आदमी की इस भ्रामक स्थिति को तोड़ना जरूरी है। इसे तोड़ना ही पड़ेगा, अन्यथा गरीबी का कोई पारावार न रहेगा, गरीबी इतनी बढ़ जाएगी कि जीना असंभव हो जाएगा। इस देश में तो बढ़ ही गई है और जीना करीब-करीब असंभव है। कोई मान ही नहीं सकता कि हम जी रहे हैं। अच्छा हो कि कहा जाए कि हम धीरे-धीरे मर रहे हैं।

जीने का क्या अर्थ है? जीने का इतना ही अर्थ है कि हम एक्झिस्ट करते हैं, हमारा अस्तित्व है। हम दो रोटी खा लेते हैं, पानी पी लेते हैं और कल तक के लिए और जी जाते हैं। लेकिन जीना ठीक अर्थों में तभी उपलब्ध होता है, जब एफ्लुएंस, समृद्धि उपलब्ध हो। जीने का अर्थ है, ओवर फ्लोइंग; जीने का अर्थ यह है, जब कोई चीज हमारे ऊपर से बहने लगे।

एक फूल है। आपने कभी खयाल किया कि फूल कैसे खिलता है पौधे पर? अगर पौधे को ठीक खाद न मिले, ठीक पानी न मिले, तो पौधा जिंदा रहेगा, लेकिन फूल नहीं खिलेगा। फूल ओवर फ्लोइंग है। जब पौधे में इतनी शक्ति इकट्ठी हो जाती है कि अब पत्तों को, जड़ों को, शाखाओं को कोई जरूरत नहीं रह जाती, कुछ अतिरिक्त जब पौधे के पास इकट्ठा हो जाता है, तब फूल खिलता है। फूल जो है वह अतिरिक्त है। इसीलिए फूल सुंदर है। वह अतिरेक है, वह बहाव है, वह किसी चीज का बहुत हो जाने से बहाव है।

जीवन में सभी सौंदर्य अतिरेक है, सभी सौंदर्य ओवर फ्लोइंग है, ऊपर से बह जाना है। जीवन का सब आनंद भी अतिरेक है। जीवन में जो भी श्रेष्ठ है वह सब ऊपर से बहा हुआ है। महावीर और बुद्ध राजाओं के बेटे हैं, कृष्ण और राम भी राजाओं के बेटे हैं। यह ओवर फ्लोइंग है। ये फूल जो खिले ये गरीब के घर में नहीं खिल सकते थे। कोई महावीर गरीब के घर में पैदा नहीं होता, और कोई बुद्ध भी गरीब के घर में पैदा नहीं होता, और कोई राम भी नहीं, और कोई कृष्ण भी नहीं।

गरीब के घर में ये फूल नहीं खिल सकते; गरीब सिर्फ जी सकता है। उसका जीना इतना न्यूनतम है कि उसमें फूल खिलने का उपाय नहीं। वह गरीब पौधा है। वह किसी तरह जी लेता है, किसी तरह उसके पत्ते भी हो जाते हैं, किसी तरह शाखाएं भी निकल आती हैं। न तो वह पूरी ऊंचाई ग्रहण कर पाता है, न सूरज को छू पाता है, न आकाश की तरफ उठ पाता है, न उसमें फूल खिल पाते हैं। क्योंकि फूल तो तभी खिल सकते हैं जब पौधे के पास जीने से अतिरिक्त शक्ति इकट्ठी हो जाए। जीने से जो अतिरिक्त इकट्ठा होता है तभी फूल खिलते हैं।

ताजमहल भी वैसा ही फूल है, वह अतिरेक से निकला हुआ फूल है। जगत में जो भी सुंदर है, साहित्य है, काव्य है, संगीत है, वह सब अतिरेक से निकले हुए फूल हैं।

गरीब की जिंदगी में फूल कैसे खिल सकते हैं? लेकिन हम रोज अपने को गरीब करने का उपाय करते चले जाएं। और ध्यान रहे, जीवन में जो सबसे बड़ा फूल है परमात्मा का, वह संगीत, साहित्य, और काव्य, और चित्र, और जीवन के छोटे आनंद से भी ज्यादा जब शक्ति ऊपर इकट्ठी होती है तब वह परम फूल खिलता है परमात्मा का। लेकिन गरीब समाज उस फूल के लिए कैसे उपाय बना सकता है?

गरीब समाज रोज दीन होता है, रोज हीन होता चला जाता है। गरीब बाप दो बेटे पैदा करता है तो अपने से दुगने गरीब पैदा कर जाता है, उसकी गरीबी भी बंट जाती है। हिंदुस्तान कई सैकड़ों सालों से अमीरी नहीं बांट रहा है, सिर्फ गरीबी बांट रहा है। जब एक बाप अपने चार बेटों में विभाजन करता है तो बाप की संपत्ति नहीं बंटती।। संपत्ति तो है ही नहीं; बाप ही गरीब था, बाप के पास ही कुछ न था, वह खुद ही कभी नहीं जी पाया कि अतिरेक का फूल खिल पाए।। बाप सिर्फ अपनी गरीबी बांट देता है और चार और चौगुने गरीब समाज में खड़ा कर जाता है। और विसियस सर्किल, दुष्टचक्र यह है कि वे चार बेटे गरीब होने की वजह से सेक्स में ही रस खोजेंगे और बच्चे पैदा करते चले जाएंगे।

हां, धर्मगुरु सिखाते हैं ब्रह्मचर्य। वे कहते हैं कि गरीब को भी अगर बच्चे नहीं पैदा करना है तो वह ब्रह्मचर्य का पालन करे। मैंने कहा कि मनोरंजन के सब साधन उसे बंद हैं। और धर्मगुरु कहते हैं कि यह एक साधन और मनोरंजन का उसके जीवन में थोड़े रस का है, वह इसको भी ब्रह्मचर्य से बंद कर दे। तब तो गरीब आदमी मर गया! वह चित्र देखने जाता है तो रुपया खर्च होता है, वह संगीत सुनने जाता है तो रुपया खर्च होता है, वह किताब पढ़ने जाता है तो रुपया खर्च होता है। एक सस्ता और मुफ्त मिला साधन था, धर्मगुरु कहता है, ब्रह्मचर्य से वह उसे भी बंद कर दे।

इसलिए धर्मगुरु समझाते रहते हैं ब्रह्मचर्य की बात, कोई उनकी सुनता नहीं। खुद धर्मगुरु ही नहीं सुनते हैं अपनी बात। कोई नहीं सुनता; वह बकवास बहुत लंबी चल चुकी, उससे कोई परिणाम नहीं हुआ, उससे कोई हित भी नहीं हुआ।

विज्ञान ने ब्रह्मचर्य की जगह एक नया उपाय दिया जो सर्वसुलभ हो सकता है। वह हैः संतति-नियमन के कृत्रिम साधन। जिनसे व्यक्ति को ब्रह्मचर्य में बंधने की कोई जरूरत नहीं। जीवन के द्वार खुले रह सकते हैं, अपने को सप्रेस करने की और दमन करने की भी कोई जरूरत नहीं।

और यह भी ध्यान रहे, जो व्यक्ति एक बार अपनी यौन की प्रवृत्ति को जोर से दबा कर दबा दे अपने भीतर, वह व्यक्ति सदा के लिए किन्हीं गहरे अर्थों में रुग्ण हो जाता है। यौन की वृत्ति से मुक्त हुआ जा सकता है, लेकिन यौन की वृत्ति को दबा कर कोई कभी मुक्त नहीं होता। यौन की वृत्ति से मुक्त हुआ जा सकता है। अगर यौन में निकलने वाली शक्ति किसी और आयाम में, किसी और दिशा में प्रवाहित हो जाए, तो मुक्त हुआ जा सकता है।

एक वैज्ञानिक मुक्त हो जाता है बिना किसी ब्रह्मचर्य के। बिना राम-राम का पाठ किए, हनुमान चालीसा पढ़े, एक वैज्ञानिक मुक्त हो जाता है। क्योंकि सारी शक्ति की ऊर्जा, सारी ऊर्जा विज्ञान की खोज में लग जाती है।

एक चित्रकार भी मुक्त हो सकता है, एक संगीतज्ञ भी मुक्त हो सकता है, एक परमात्मा का खोजी भी मुक्त हो सकता है।

ध्यान रहे, लोग कहते हैं।। ब्रह्मचर्य शर्त है परमात्मा की खोज की।

मैं कहता हूं, यह बात गलत है। हां, परमात्मा की खोज में जाने वाला ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। यह परिणाम है। अगर कोई परमात्मा की खोज में पूरी तरह चला गया, तो उसकी सारी शक्तियां इतनी लीन हो जाती हैं कि उसके पास यौन की दिशा में जाने के लिए शक्ति का न बहाव बचता है, न आकांक्षा बचती है। ब्रह्मचर्य से कोई परमात्मा की तरफ नहीं जाता, लेकिन परमात्मा की तरफ जाने वाला ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है।

लेकिन अगर हम किसी को कहें कि वह बच्चे रोकने के लिए ब्रह्मचर्य का उपयोग करे...। गांधी जी निरंतर वही कहते रहे। और भी इस मुल्क के महात्मा यही कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का उपयोग करो।

लेकिन गांधी जी जैसे बढ़िया आदमी भी ठीक-ठीक अर्थों में ब्रह्मचर्य को कभी उपलब्ध नहीं हो सके। वे भी कहते हैं कि मेरे स्वप्नों में भी कामवासना उतर आती है। वे भी कहते हैं कि दिन तो मैं किसी तरह संयम रख पाता हूं, लेकिन सपनों में सब संयम टूट जाता है। और जीवन के अंतिम दिनों में एक स्त्री को बिस्तर पर लेकर सोकर वे प्रयोग करते थे कि कहीं अभी भी तो कामवासना शेष नहीं रह गई? सत्तर वर्ष की उम्र में एक युवती को रात बिस्तर पर सोते थे लेकर, यह जानने के लिए कि कहीं कामवासना शेष रह गई कि नहीं? मुझे पता नहीं कि क्या परिणाम हुआ, क्या वे जान पाए। लेकिन एक बात तो पक्की है कि उन्हें शक रहा होगा सत्तर वर्ष की उम्र तक कि ब्रह्मचर्य उपलब्ध नहीं हुआ। अन्यथा इस परीक्षा की कोई जरूरत न थी।

ब्रह्मचर्य की बात एकदम अवैज्ञानिक, अव्यावहारिक है। कृत्रिम साधन का उपयोग किया जा सकता है। और मनुष्य के चित्त पर बिना कोई दबाव दिए उसका उपयोग किया जा सकता है।

कुछ प्रश्न हैं जो उठाए जाते हैं, उनके भी मैं उत्तर देना पसंद करूंगा।

एक प्रश्न अभी-अभी मैं आया तो एक मित्र ने कहा कि अगर यह बात समझाई जाए, तो जो समझदार हैं, बुद्धिजीवी हैं, इंटेलिजेंसिया है, मुल्क का जो अभिजात वर्ग है, बुद्धिमान, समझदार, वह तो रोक लेगा, वह तो संतति-नियमन कर देगा, परिवार-नियोजन कर लेगा। लेकिन जो दीन-हीन है, गरीब है, बेपढ़ा-लिखा है, गांव का है, ग्राम्य है, जो सुनता ही नहीं किसी की, समझता भी नहीं, वह बच्चे पैदा करता चला जाएगा। तो लंबे अरसे में परिणाम यह होगा कि बुद्धिमानों के बच्चे कम हो जाएंगे और गैर-बुद्धिमानों के बच्चों की संख्या बढ़ जाएगी, जो कि अहितकर हो सकता है।

यह प्रश्न उचित ही है उठाना। इसे एक तरह से और भी धर्मगुरु उठाते हैं। वे यह कहते हैं कि मुसलमान तो सुनते नहीं; ईसाई सुनते नहीं; कैथलिक मानते नहीं कि संतति-नियमन करना चाहिए, वे कहते हैं हमारे धर्म के विरोध में है; मुसलमान फिक्र नहीं करता। हिंदू अगर फिक्र करेगा, तो हिंदू धर्मगुरु कहते हैं कि हिंदू सिकुड़ते चले जाएंगे, मुसलमान और ईसाई बढ़ते चले जाएंगे; पचास साल में मुश्किल हो जाएगी, हिंदू ना-कुछ हो जाएंगे और मुसलमान और ईसाई बढ़ जाएंगे।

इस बात में भी थोड़ा अर्थ है। इन दोनों के संबंध में मैं यह कहना चाहूंगा कि पहली तो बात यह है कि संतति-नियमन अनिवार्य होना चाहिए, कंपल्सरी; वालेंटरी नहीं। जब तक हम एक-एक आदमी को समझाने की कोशिश करेंगे कि तुम्हें संतति-नियमन करवाना चाहिए, तब तक इतनी देर हो चुकी होगी कि संतति-नियमन का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।

मैं अभी एक घटना पढ़ रहा था। एक अमेरिकी विचारक ने लिखा है कि इस वक्त सारी दुनिया में जितने डाक्टर परिवार-नियोजन में सहयोगी हो सकते हैं, अगर वे सब के सब लाकर भी एशिया में लगा दिए जाएं और वे बिल्कुल न सोएं, सुबह से लेकर दूसरी सुबह तक आपरेशंस करते रहें, तो भी एशिया को उस स्थिति में लाने के लिए, जहां जनसंख्या सीमा में आ जाए, पांच सौ वर्ष लगेंगे। और पांच सौ वर्षों में तो हमने इतने पैदा कर दिए होंगे बच्चे कि जिसका कोई हिसाब नहीं रह जाएगा।

ये दोनों ही संभावनाएं नहीं हैं। सारी दुनिया के डाक्टर एशिया में लाकर लगाए नहीं जा सकते। और लगा भी दिए जाएं तो पांच सौ वर्षों में यह संभावना अगर हो पाए, तो पांच सौ वर्षों में हम खाली थोड़े ही बैठे रहेंगे, हम प्रतीक्षा थोड़े ही करते रहेंगे पांच सौ वर्षों तक कि जब आपके पांच सौ वर्ष पूरे हो जाएं तब तक हम चुप बैठे रहें। पांच सौ वर्षों में हम क्या कर डालेंगे!

नहीं, यह संभव नहीं मालूम होता। समझाने-बुझाने के प्रयोग से तो रास्ता दिखाई नहीं पड़ता। संतति-नियमन अनिवार्य करना होगा।

और यह अलोकतांत्रिक नहीं है। हम हत्या को अनिवार्य किए हुए हैं कि कोई हत्या नहीं कर सकता। यह अलोकतांत्रिक नहीं है। हम कहते हैं कि कोई किसी आदमी को हत्या का हक नहीं है। लेकिन यह डेमोक्रेसी के खिलाफ नहीं है।

अभी मैं अहमदाबाद में बोल रहा था तो मुझे कई पत्र आए कि आप कहते हैं अनिवार्य कर दें संतति-नियमन! तो यह तो लोकतंत्र का विरोध है।

मैंने उनको कहा कि एक आदमी की हत्या करने से जितना नुकसान होता है, आज उससे हजार गुना ज्यादा नुकसान एक बच्चे को पैदा करने से होता है। एक आदमी आत्महत्या कर लेता है उससे जितना नुकसान होता है, उतना एक आदमी एक बच्चे को पैदा करता है उससे हजार गुना नुकसान होता है।

संतति-नियमन अनिवार्य होना चाहिए। तब गरीब और अमीर और बुद्धिमान और गैर-बुद्धिमान का सवाल नहीं रह जाता। अनिवार्य होना चाहिए। तब हिंदू, मुसलमान और ईसाई का सवाल नहीं रह जाता।

यह देश बड़ा अजीब है। हम कहते हैं कि हम धर्म-निरपेक्ष हैं, और फिर भी सब चीजों में धर्म का विचार करते हैं। सरकार भी विचार रखती है! हिंदू कोड बिल बना हुआ है, वह सिर्फ हिंदू स्त्रियों पर ही लागू होता है! यह बड़ी अजीब बात है। सरकार जब धर्म-निरपेक्ष है तो मुसलमान स्त्रियों को अलग करके सोचे, यह बात ही गलत है। सरकार को सोचना चाहिए स्त्रियों के संबंध में। मुसलमान को हक है कि वह चार शादियां करे, किंतु हिंदू को हक नहीं! तो मानना क्या होगा? यह धर्म-निरपेक्ष राज्य कैसे हुआ? हिंदुओं के लिए अलग नियम और मुसलमान के लिए अलग नियम नहीं होना चाहिए।

नहीं; सरकार को सोचना चाहिए।। स्त्री के लिए क्या उचित है? क्या यह उचित है कि चार स्त्रियां एक आदमी की पत्नी बनें? वह हिंदू हो या मुसलमान, यह इररेलेवेंट है, यह असंगत है, इससे कोई संबंध नहीं है। चार स्त्रियां एक आदमी की पत्नियां बनें, यह बात ही अमानवीय है। इसमें सवाल नहीं है कि कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है। यह अपनी-अपनी इच्छा की बात है।

फिर तो कल हम यह भी कह सकते हैं कि मुसलमान को हत्या करने में थोड़ी सुविधा देनी चाहिए। ईसाई को थोड़ी या हिंदू को थोड़ी सुविधा देनी चाहिए हत्या करने में।

नहीं; हमें व्यक्ति और आदमी को सोच कर विचार करने की जरूरत है। अनिवार्य होना चाहिए। यह सवाल मुल्क का है, पूरे मुल्क का है। उसमें हिंदू, मुसलमान और ईसाई अलग नहीं किए जा सकते। उसमें अमीर और गरीब अलग नहीं किए जा सकते।

दूसरी बात विचारणीय है कि हमारे मुल्क में, इस देश में हमारी प्रतिभा निरंतर क्षीण होती चली गई है। अगर हम आगे भी ऐसे ही बच्चे पैदा करना जारी रखते हैं तो संभावना है कि हम सारे जगत में प्रतिभा में धीरे-धीरे और पिछड़ते चले जाएं। अगर इस जाति को ऊंचा उठना हो।। स्वास्थ्य में, सौंदर्य में, चिंतना में, प्रतिभा में, मेधा में।। तो हमें प्रत्येक आदमी को बच्चे पैदा करने का हक नहीं देना चाहिए।

पहली तो बात मैं यह मानता हूं कि संतति-नियमन अनिवार्य होना चाहिए।

दूसरी बात मैं यह मानता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को बच्चे पैदा करने का हक जब तक विशेषज्ञ न दे दें, तब तक बच्चे पैदा करने का हक किसी को भी नहीं रह जाना चाहिए। बच्चे पैदा करने के हक के बाद दो बच्चे कोई पैदा कर सकता है, लेकिन हक उसे मिलना चाहिए। उसके लिए हमें वैसे ही लाइसेंस देने चाहिए जो मेडिकल बोर्ड जब तक लाइसेंस न दे, कोई आदमी बच्चे पैदा नहीं कर सकेगा।

कितने कोढ़ी बच्चे पैदा किए जाते हैं, कितने ईडियट बच्चे पैदा किए जाते हैं, कितने संक्रामक रोगों से भरे हुए लोग बच्चे पैदा किए जाते हैं। और उनके बच्चे पैदा होते चले जाते हैं और बढ़ते चले जाते हैं। और इस देश में दया और दान करने वाले लोग हैं कि अगर वे खुद अपने बच्चे न पाल सकते हों तो हम उनके लिए अनाथालय खोल कर उनके बच्चों को पालने का भी इंतजाम करते हैं। यह ऊपर-ऊपर तो दान और दया दिखाई पड़ रही है, लेकिन ये बड़े खतरनाक लोग हैं जो ऐसे इंतजाम कर रहे हैं। इंतजाम तो यह होना चाहिए कि स्वस्थ, सुंदर, बुद्धिमान, प्रतिभाशाली, संक्रामक रोगों से ग्रसित नहीं, ऐसे स्त्री और पुरुष को ही बच्चा पैदा करने का हक होना चाहिए।

असल में शादी के पहले ही हर गांव में, हर नगर में सलाहकार समिति होनी चाहिए डाक्टर्स की, विचारशील मनोवैज्ञानिकों की, साइकोएनालिस्ट्स की, जो प्रत्येक व्यक्ति को यह हक दे कि तुम अगर दोनों शादी करते हो तो तुम बच्चे पैदा कर सकोगे या नहीं कर सकोगे, यह बता दे। शादी करने का हक प्रत्येक को है। ऐसे दो लोग शादी कर सकते हैं जिनको कि सलाह न दी जाए। वे शादी कर सकते हैं, लेकिन बच्चे पैदा नहीं कर सकते।

हम जानते हैं भलीभांति कि पौधों पर क्रास ब्रीडिंग से कितना लाभ उठाया जा सकता है। एक माली अच्छी तरह जानता है कि नये बीज कैसे विकसित किए जा सकते हैं; गलत बीजों को कैसे हटाया जा सकता है। छोटे बीज कैसे अलग किए जा सकते हैं; बड़े बीज कैसे बचाए जा सकते हैं। एक माली सभी बीज नहीं बो देता है; बीजों को छांटता है। लेकिन हम अब तक मनुष्य-जाति के साथ उतनी समझदारी नहीं कर सके जो एक साधारण सा माली अपने बगीचे में करता है।

यह भी आपको खयाल हो कि जब माली को एक बड़ा फूल पैदा करना होता है तो वह छोटे फूलों को पहले ही काट देता है। अगर आपने देखा हो, कभी प्रदर्शनी फूलों की देखी हो, तो जो फूल जीत जाते हैं उनके जीतने का कारण क्या है? उनका कारण यह है कि माली ने होशियारी की; एक पौधे पर एक ही फूल पैदा किया, बाकी फूल पैदा ही नहीं होने दिए; बाकी फूलों को उसने जड़ से ही अलग कर दिया। तो फूल की, पौधे की सारी शक्ति एक ही फूल में प्रवेश कर गई।

एक आदमी बारह बच्चे पैदा करता है तो कभी भी बहुत प्रतिभाशाली बच्चे पैदा नहीं कर सकता। अगर एक ही बच्चा पैदा करे तो उसके बारह बच्चों की सारी प्रतिभा एक में भी प्रवेश कर सकती है।

और प्रकृति के बड़े अदभुत नियम हैं। प्रकृति के नियम बहुत हैरानी के हैं। प्रकृति बड़े अजीब ढंग से काम करती है। जब युद्ध होता है दुनिया में, तो युद्ध के बाद लोगों की संतति पैदा करने की क्षमता बढ़ जाती है। यह बड़ी हैरानी की बात है! युद्ध से क्या लेना-देना? जब भी युद्ध होता है तब जन्म-दर बढ़ जाती है। पहले महायुद्ध के बाद जन्म-दर एकदम ऊपर उठ गई, क्योंकि पहले महायुद्ध में कोई साढ़े तीन करोड़ लोग मर गए। प्रकृति कैसे इंतजाम रखती है, यह भी हैरानी की बात है! प्रकृति को कैसे पता चला कि युद्ध हो गया और अब बच्चों की जन्म-दर बढ़ जानी चाहिए! दूसरे महायुद्ध में भी कोई साढ़े सात करोड़ लोग मरे और जन्म-दर एकदम से बढ़

गई। महामारी के बाद, हैजे के बाद, प्लेग के बाद लोगों की जन्म-दर बढ़ जाती है। प्रकृति का अपना आंतरिक इंतजाम है।

अगर एक आदमी पचास बच्चे पैदा करे तो उसकी शक्ति पचास पर बिखर जाती है। अगर वह एक ही बच्चे पर केंद्रित करे तो उसकी शक्ति, उसकी प्रतिभा प्रकृति एक ही बच्चे में भी डाल देती है।

मैं देख रहा था तो बहुत हैरान हुआ! जब बच्चे पैदा होते हैं तो सौ लड़कियां पैदा होती हैं, एक सौ सोलह लड़के पैदा होते हैं। यह अनुपात है सारी दुनिया में। अब यह बड़े मजे की बात है कि एक सौ सोलह लड़के किसलिए पैदा करना? सोलह लड़के बेकार रह जाएंगे, इनको कौन लड़की मिलेगी! सौ लड़कियां पैदा होती हैं, एक सौ सोलह लड़के पैदा होते हैं।

लेकिन प्रकृति का इंतजाम बहुत ही अदभुत है और बहुत गहरा है। वह लड़कियों को कम पैदा करती है और लड़कों को ज्यादा, क्योंकि उम्र पाते-पाते, मैच्योर होते-होते, प्रौढ़ होते-होते सोलह लड़के मर जाएंगे और संख्या बराबर हो जाएगी। असल में लड़कियों की जिंदगी में जीने का रेसिस्टेंस लड़कों से ज्यादा है। इसलिए सोलह लड़के ज्यादा पैदा करती है प्रकृति, ताकि भूल-चूक न हो। सोलह लड़के मर जाएंगे। सौ लड़कियां रह जाएंगी, सौ लड़के रह जाएंगे। चौदह साल के बाद संख्या बराबर हो जाएगी। सारी दुनिया में चौदह साल के बाद संख्या बराबर हो जाएगी। वे सोलह लड़के भूल-चूक से बचने के लिए कि कोई लड़कियां खाली न रह जाएं, बिना लड़कों के न रह जाएं, इतना इंतजाम किया हुआ है वह एक सौ सोलह। लड़कियों की जिंदा रहने की शक्ति लड़कों से ज्यादा है।

आमतौर पर पुरुष सोचता है कि वह सब तरह से शक्तिमान है। इस भूल में कभी मत पड़ना। कुछ बातों को छोड़ कर स्त्रियां पुरुषों से कई अर्थों में ज्यादा शक्तिमान हैं। जैसे उनका रेसिस्टेंस, उनकी प्रतिरोध की शक्ति ज्यादा है। इसलिए तो हम शादी करते हैं तो हम चार-पांच साल उम्र बड़ा लड़का खोजते हैं। आपने कभी खयाल किया, क्यों खोजते हैं? वह इसीलिए खोजते हैं कि अगर लड़कियां और लड़के बराबर उम्र के खोजे जाएं तो दुनिया में विधवाएं छूट जाएंगी, लड़के पहले मर जाएंगे। सत्तर साल में लड़के मर जाएंगे और स्त्रियां पचहत्तर और छिहत्तर साल तक जिंदा रह जाएंगी। तो सारी स्त्रियां विधवा रह जाएंगी पृथ्वी पर। वे विधवा न रह जाएं इसलिए हम पांच साल का फर्क रखते हैं।

पुरुष की जीने की क्षमता स्त्री से कम है; बीमारी सहने की क्षमता भी स्त्री से कम है। जिंदगी में मुसीबतों में से गुजर जाने की क्षमता भी पुरुष की कम है। शायद प्रकृति ने स्त्री को यह सारी क्षमता इसीलिए दी है कि वह बच्चे को पैदा करने की, बच्चे को झेलने की, बच्चे को बड़ा करने की इतनी तकलीफदेय प्रक्रिया है, उस सबको वह झेल सके।

प्रकृति इंतजाम कर लेती है। अगर हम बच्चे कम पैदा करेंगे, तो प्रकृति जो अनेक बच्चों पर प्रतिभा देती थी, वह एक बच्चे पर ही डाल देगी।

लेकिन वैज्ञानिक चिंतन हमारा नहीं है। आदमी इसलिए पिछड़ा हुआ है कि हम दूसरी चीजों के संबंध में वैज्ञानिक चिंतन कर लेते हैं, लेकिन आदमी के संबंध में नहीं कर पाते। आदमी के संबंध में हम बड़े अवैज्ञानिक हैं। हम कहते हैं, हम कुंडली मिलाएंगे। हम कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं तो हम ब्राह्मण से ही शादी करेंगे।

विज्ञान तो कहता है कि शादी जितनी दूर हो उतने अच्छे बच्चे पैदा होंगे। अगर अंतर्जातीय हो तो बहुत अच्छा; अगर अंतर्देशीय हो तो और अच्छा; अगर अंतर्राष्ट्रीय हो तो और अच्छा; और अगर आज नहीं कल, मंगल या कहीं आदमी मिल जाए तो अंतर्ग्रहीय, इंटरप्लेनेटरी हो तो और अच्छा है। क्योंकि हम जानते हैं

भलीभांति कि अगर अंग्रेज सांड लाया जाए और हिंदुस्तानी गाय हो तो जो बच्चे पैदा होते हैं उनका मुकाबला नहीं। वह क्रास ब्रीडिंग जो बच्चे पैदा करती है उनका मुकाबला नहीं। कब हम आदमी के संबंध में समझ का उपयोग करेंगे! अगर हम समझ का उपयोग करेंगे, तो जो हम जानवर के साथ कर रहे हैं, वही समझ जो फूल के साथ कर रहे हैं, आदमी के साथ भी करनी जरूरी है।

ज्यादा अच्छे बच्चे पैदा किए जा सकते हैं, ज्यादा स्वस्थ, ज्यादा उम्र तक जीने वाले, ज्यादा शक्तिशाली, ज्यादा प्रतिभाशाली। लेकिन उसके लिए कोई व्यवस्थापन देने की जरूरत है।

परिवार-नियोजन मनुष्य के वैज्ञानिक संतति-नियोजन का पहला कदम है। अभी और कदम उठाने पड़ेंगे, यह तो सिर्फ पहला कदम है। लेकिन इस पहले कदम से एक क्रांति हो जाती है। वह क्रांति आपके खयाल में नहीं है। वह मैं आपको कहना चाहता हूं। बड़ी जो क्रांति हो जाती है परिवार-नियोजन की व्यवस्था से वह यह है, वह क्रांति यह है कि हम पहली दफे सेक्स को, यौन को संतति से तोड़ देते हैं। अब तक यौन, संभोग का अर्थ था संतति का पैदा होना। अब हम दोनों को तोड़ देते हैं। अब हम कहते हैं कि संभोग हो सकता है, संतति के पैदा होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। यौन और संतति को हम दो हिस्सों में तोड़ रहे हैं। यह बहुत बड़ी क्रांति है। इसका मतलब अंततः यह होगा कि अगर यौन से संतति के पैदा होने की संभावना नहीं है, यौन से हम संतति को अलग कर देते हैं, तो कल हम ऐसी संतति को भी पैदा करने की व्यवस्था करेंगे जिसका हमारे यौन से कोई संबंध न हो। वह दूसरा कदम होगा।

आप अपने बेटे के लिए अच्छे शिक्षक की व्यवस्था करते हैं; आप ही पढ़ाने नहीं बैठ जाते, क्योंकि मैं इसका बाप हूं तो मैं ही इसको पढ़ाऊंगा। आप अपने बेटे के लिए अच्छा टेलर खोजते हैं; आप ही कमीज बनाने नहीं बैठ जाते कि मैं इसका बाप हूं। आप अपने बेटे के लिए अच्छा डाक्टर खोजते हैं; आप ही आपरेशन नहीं करने लगते, क्योंकि मैं इसका बाप हूं। तो आप अपने बेटे के लिए पहले दिन से ही अच्छा वीर्यकण क्यों न खोजें? संतति-नियमन का अंतिम परिणाम यह होने वाला है कि हम वीर्यकणों के बाबत व्यवस्था कर सकेंगे। आइंस्टीन का वीर्यकण उपलब्ध हो सकता हो... ।

और एक आदमी के पास कितने वीर्यकण हैं, कभी आपने सोचा? एक संभोग में एक आदमी इतने वीर्यकण खोता है कि उससे एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकते हैं। और एक आदमी जिंदगी में अंदाजन चार हजार बार संभोग करता है। यानी चार हजार करोड़ बच्चों का बाप एक आदमी बन सकता है। एक आदमी के वीर्यकण अगर संरक्षित हो सकें तो एक आदमी चार हजार करोड़ बच्चों का बाप बन सकता है। एक आइंस्टीन चार हजार करोड़ बच्चों को जन्म दे सकता है। एक बुद्ध चार हजार करोड़ बच्चों को जन्म दे सकता है। क्या उचित न होगा कि हम आदमी के बाबत विचार करें और हम इस बात की खोज करें?

लेकिन संतति-नियमन ने पहली घटना पूरी कर दी है, हमने सेक्स को तोड़ दिया। अब हम कहते हैं कि बच्चे की फिक्र छोड़ दो। संभोग किया जा सकता है, संभोग का सुख लिया जा सकता है, बच्चे की चिंता की कोई जरूरत नहीं। जैसे ही यह बात स्थापित हो जाएगी, दूसरा कदम भी उठाया जा सकेगा। और वह यह कि अब तुम संभोग करते हो जिससे, उससे ही बच्चा पैदा हो, तुम्हारे ही संभोग से बच्चा पैदा हो, यह भी अवैज्ञानिक है। अब और अच्छी व्यवस्था की जा सकती है, और अच्छा वीर्यकण उपलब्ध किया जा सकता है, वैज्ञानिक व्यवस्था की जा सकती है और तुम्हें वीर्यकण मिल सकता है। चूंकि अब तक हम उसको सुरक्षित नहीं रख सकते थे, अब तो सुरक्षित रखा जा सकता है।

अब जरूरी नहीं है कि आप जिंदा हों तभी आपका बेटा पैदा हो। आपके मरने के दस हजार साल बाद भी आपका बेटा पैदा हो सकता है। इसलिए अब जल्दी करने की जरूरत नहीं है कि मेरा बेटा मेरे जिंदा रहने में पैदा हो जाए। वह बाद में दस हजार साल बाद भी पैदा हो सकता है। अगर मनुष्यता ने समझा कि आपका बेटा पैदा करना है तो वह आपके लिए सुरक्षा कर सकती है। आपका बच्चा कभी भी पैदा हो सकता है। अब बाप और बेटे का अनिवार्य संबंध, उस हालत में नहीं रह जाएगा जिस हालत में अब तक था, वह टूट जाएगा, एक क्रांति हो रही है।

लेकिन इस देश में हमारे पास समझ बहुत कम है। अभी तो हम संतति-नियमन को ही नहीं समझ पा रहे हैं। वह पहला कदम है, वह सेक्स मारेलिटी के संबंध में पहला कदम है। और एक दफा सेक्स की पुरानी मारेलिटी, पुरानी नीति टूट जाए, तो इतनी क्रांति होगी जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। क्योंकि हमें पता ही नहीं है कि जो भी हमारी नीति है, वह किसी पुरानी यौन-व्यवस्था से संबंधित है। वह यौन-व्यवस्था पूरी टूट जाए तो पूरी नीति बदल जाएगी। धर्मगुरु इसलिए भी डरा हुआ है। गांधी जी और विनोबा जी इसलिए भी डरे हुए हैं। वे डरे हुए हैं इसलिए कि अगर यह कदम उठाया गया तो यह पुरानी पूरी नैतिक व्यवस्था को तोड़ देगा। नई नीति विकसित हो जाएगी अपने आप। अपने आप नई नीति विकसित हो जाएगी, क्योंकि पुरानी नीति का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।

अब तक पुरुष के दबाव में थी स्त्री और स्त्री को निरंतर दबाया जा सकता था। पुरुष अपने सेक्स के संबंध में स्वतंत्रता बरत सकता था, क्योंकि उसको पकड़ना मुश्किल था। इसलिए पुरुष ने एक ऐसी व्यवस्था बनाई थी जिसमें स्त्री की पवित्रता का पूरा इंतजाम रखा था और अपनी स्वतंत्रता का पूरा इंतजाम रखा था। इसलिए स्त्री को सती होना पड़ता था, पुरुष को नहीं। इसलिए स्त्री के कुंवारे होने पर भारी बल था, पुरुष के कुंवारे होने की कोई चिंता न थी। इसलिए अभी भी माताएं और स्त्रियां कहती हैं कि लड़के तो लड़के हैं। लेकिन लड़कियों के संबंध में हिसाब अलग है।

अगर संतति-नियमन की बात पूरी होगी।। और होनी ही पड़ेगी।। तो लड़कियां भी लड़कों जैसी ही हो जाएंगी, मुक्त! उनको फिर बांधने और दबाने का उपाय नहीं है। लड़कियां उपद्रव में पड़ जा सकती थीं, क्योंकि उनको गर्भ रह जा सकता था। पुरुष उपद्रव में नहीं पड़ता था, क्योंकि उसको गर्भ का कोई डर न था। नई व्यवस्था ने लड़कियों को भी लड़कों की स्थिति में खड़ा कर दिया है।

पहली दफे स्त्री और पुरुष की समानता सिद्ध हो सकेगी। जो अब तक नहीं हो सकती थी। चाहे हम कितना ही चिल्लाते कि स्त्री और पुरुष समान हैं, वे समान नहीं हो सकते थे। क्योंकि पुरुष स्वतंत्रता बरत सकता था बिना पकड़े जाने के डर के, स्त्री स्वतंत्रता नहीं बरत सकती थी।

विज्ञान की व्यवस्था ने स्त्री को पुरुष के निकट खड़ा कर दिया। अब वे दोनों बराबर स्वतंत्र हैं। अगर पवित्रता निश्चित करनी है तो दोनों को समान निश्चित करनी पड़ेगी और अगर स्वतंत्रता तय करनी है तो दोनों समान रूप से स्वतंत्र होंगे। बर्थ-कंट्रोल, संतति-नियमन के कृत्रिम साधन स्त्री को पहली बार पुरुष के समकक्ष बिठाते हैं।

बुद्ध नहीं बिठा सके, महावीर नहीं बिठा सके, अब तक दुनिया का कोई महापुरुष नहीं बिठा सका स्त्री को बराबर। कहा उन्होंने कि दोनों बराबर हैं। लेकिन वे बराबर हो नहीं सके, क्योंकि उनकी एनाटामी, उनकी

शरीर की व्यवस्था, खास कर गर्भ की व्यवस्था कठिनाई में डाल देती थी। स्त्री कभी भी पुरुष की तरह स्वतंत्र नहीं हो सकी। आज पहली दफे स्त्री भी स्वतंत्र हो सकती है।

अब इसके दो ही अर्थ होंगेः या तो स्त्री स्वतंत्र की जाए या पुरुष की अब तक की जो स्वतंत्रता थी उस पर पुनर्विचार किया जाए। सारी नीति को बदलना पड़ेगा। इसलिए धर्मगुरु परेशान हैं। अब मनु की नीति नहीं चल सकेगी, क्योंकि सारी व्यवस्था बदल जाएगी। और इसलिए उनकी घबराहट स्वाभाविक है।

लेकिन बुद्धिमान लोगों को समझ लेना चाहिए कि उनकी घबराहट, उनकी नीति को बचाने के लिए मनुष्यता की हत्या नहीं की जा सकती। उनकी नीति जाती हो कल तो आज चली जाए, लेकिन मनुष्यता का बचना ज्यादा महत्वपूर्ण और ज्यादा जरूरी है। मनुष्य रहेगा तो हम नई नीति खोज लेंगे। और मनुष्य न रहा तो मनु की और याज्ञवल्क्य की किताबें सड़ जाएंगी और गल जाएंगी और नष्ट हो जाएंगी, उनको कोई बचा भी नहीं सकता है।

परिवार-नियोजन में मैं मनुष्य के भविष्य के लिए बड़ी क्रांति की संभावनाएं देखता हूं। इतना ही नहीं कि आप दो बच्चों पर रोक लेंगे अपने को, बल्कि अगर परिवार-नियोजन की फिलासफी, उसका पूरा दर्शन हमारे खयाल में आ जाए तो हमें मनुष्य की पूरी नीति, पूरा धर्म, अंततः परिवार की पूरी व्यवस्था और अंतिम रूप से समाज का पूरा ढांचा बदल जाएगा। कभी छोटी चीजें सब बदल देती हैं जिनका हमें खयाल नहीं होता। मैं परिवार-नियोजन और कृत्रिम साधनों के पक्ष में हूं, क्योंकि मैं अंततः जीवन को चारों तरफ से क्रांति से गुजरा हुआ देखना चाहता हूं।

एक छोटी सी कहानी, अपनी बात मैं पूरी कर दूं।

चीन से एक आदमी ने, जर्मनी में एक विचारक था, उसको एक छोटी सी पेटी भेजी, लकड़ी की पेटी। बहुत खूबसूरत खुदाव था उस पेटी पर। अपने मित्र को उसने वह पेटी भेजी, एक लेखक को, और कहा कि एक ही शर्त है मेरी उसको ध्यान में रखना, इस पेटी का मुंह हमेशा पूर्व की तरफ रखना। क्योंकि यह पेटी हजार वर्ष पुरानी है और जिन-जिन लोगों के हाथ में गई है, यह शर्त उनके साथ रही है कि इसका मुंह पूर्व की तरफ रहे, यह इसे बनाने वाले की इच्छा है। अब तक पूरी की गई है, इसका ध्यान रखना।

उसके मित्र ने लिख भेजा कि चाहे कुछ भी हो, वह पेटी का मुंह पूर्व की तरफ रखेगा। इसमें कठिनाई क्या है!

लेकिन पेटी इतनी खूबसूरत थी कि जब उसने अपने बैठकखाने में पेटी का मुंह पूर्व की ओर करके रखा तो देखा कि पूरा बैठकखाना बेमेल हो गया। उसे पूरे बैठकखाने को बदलना पड़ा, फिर से आयोजित करना पड़ा, सोफे बदलने पड़े, टेबलें बदलनी पड़ीं, फोटो बदलने पड़े। जब उसने सब बदल दिया तो उसे हैरानी हुई कि कमरे के जो दरवाजे-खिड़कियां थीं, वे बेमेल हो गईं। पर उसने पक्का आश्वासन दिया था, तो उसने खिड़की-दरवाजे भी बदल डाले। लेकिन वह कमरा अब पूरे मकान में बेमेल हो गया। तो उसने पूरा मकान बदल दिया। आश्वासन दिया था तो उसे पूरा करना था। तब उसने पाया कि उसका बगीचा, बाहर का दृश्य, फूल, सब बेमेल हो गए। तब उसको उन सबको बदलना पड़ा।

फिर भी उसने अपने मित्र को लिखा कि मेरा घर मेरी बस्ती में बेमेल हुआ जा रहा है, इसलिए मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं, अपने घर तक को बदल सकता हूं, लेकिन पूरे गांव को कैसे बदलूंगा? और गांव को बदलूंगा तो शायद वह सारी दुनिया में बेमेल हो जाए, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।

यह घटना बताती है कि एक छोटी सी बदलाहट अंततः सब चीजों को बदल देती है।

धर्मगुरु का डरना ठीक है, वह डरा हुआ है। वह डरा हुआ है, उसके कारण हैं। उसे अचेतन में यह बोध हो रहा है कि अगर संतति-नियमन और परिवार-नियोजन की व्यवस्था आ गई तो अब तक की परिवार की धारणा, नीति, सब बदल जाएगी।

और मैं क्यों पक्ष में हूं?

क्योंकि मैं चाहता हूं कि वह जितनी जल्दी बदले, उतना अच्छा है। आदमी ने बहुत दुख झेल लिया पुरानी व्यवस्था से, उसे नई व्यवस्था खोजनी चाहिए। जरूरी नहीं कि नई व्यवस्था सुख ही लाएगी, लेकिन कम से कम पुराना दुख तो न होगा। दुख भी होंगे तो नये होंगे। और जो नये दुख खोज सकता है, वह नये सुख भी खोज सकेगा।

असल में, नये की खोज की हिम्मत जुटानी जरूरी है। पूरे मनुष्य को नया करना है। और परिवार-नियोजन और संतति-नियमन केंद्रीय बन सकता है, क्योंकि सेक्स मनुष्य के जीवन में केंद्रीय है। हम उसकी बात करें या न करें, हम उसकी चर्चा करें या न करें, सेक्स मनुष्य के जीवन में केंद्रीय तत्व है। अगर उसमें कोई भी बदलाहट होती है, तो हमारा पूरा धर्म, पूरी नीति, सब बदल जाएगी। वे बदल जानी ही चाहिए।

मनुष्य के भोजन, निवास, भविष्य की समस्याएं ही इससे बंधी नहीं हैं, मनुष्य की आत्मा, मनुष्य की नैतिकता, मनुष्य के भविष्य का धर्म, मनुष्य के भविष्य का परमात्मा भी इस बात पर निर्भर है कि हम अपने यौन के संबंध में क्या दृष्टिकोण अख्तियार करते हैं।

प्रश्नः ओशो, परिवार-नियोजन के बारे में अनेक लोग प्रश्न करते हैं कि परिवार-नियोजन द्वारा अपने बच्चों की संख्या कम करना धर्म के खिलाफ है। क्योंकि उनका कहना है कि बच्चे तो ईश्वर की देन हैं, और खिलाने वाला परमात्मा है। हम कौन हैं? हम तो सिर्फ जरिया हैं, इंस्ट्रूमेंट हैं। हम तो सिर्फ बीच में इंस्ट्रूमेंट हैं, जिसके जरिए ईश्वर खिलाता है। देने वाला वह, करने वाला वह, कराने वाला वह, फिर हम क्यों रोक डालें? अगर हमको ईश्वर ने दस बच्चे दिए तो दसों को खिलाने का प्रबंध भी वही करेगा। इस संबंध में आपके क्या विचार हैं?

सबसे पहले तो धर्म क्या है, इस संबंध में थोड़ी सी बात समझ लेनी चाहिए।

धर्म है मनुष्य को अधिकतम आनंद, मंगल और सुख देने की कला।

मनुष्य कैसे अधिकतम रूप से मंगल को उपलब्ध हो, इसका विज्ञान ही धर्म है।

तो धर्म ऐसी किसी बात की सलाह नहीं दे सकता, जिससे मनुष्य के जीवन में सुख की कमी हो। परमात्मा भी वह नहीं चाह सकता जिससे कि मनुष्य का दुख बढ़े। परमात्मा भी चाहेगा कि मनुष्य का आनंद बढ़े। लेकिन परमात्मा मनुष्य को परतंत्र भी नहीं करता। क्यों? क्योंकि परतंत्रता भी दुख है। इसलिए परमात्मा ने मनुष्य को पूरी तरह स्वतंत्र छोड़ा है। और स्वतंत्रता में अनिवार्य रूप से यह भी सम्मिलित है कि मनुष्य चाहे तो अपने लिए दुख निर्माण कर ले, तो भी परमात्मा रोकेगा नहीं।

हम अपना दुख भी बना सकते हैं और सुख भी। हम आनंदमय हो सकते हैं और परेशान भी। यह सारी स्वतंत्रता मनुष्य को है। इसलिए यदि हम दुखी होते हैं तो परमात्मा जिम्मेवार नहीं है। उस दुख के कारण हमें खोजने पड़ेंगे और बदलने पड़ेंगे।

मनुष्य ने दुख के कारण बदलने में बहुत विकास किया है। एक बड़ा दुख था जगत में कि मृत्यु की दर बहुत ज्यादा थी। दस बच्चे पैदा होते थे तो नौ बच्चे मर जाते थे। यह इतने दुख की घटना थी जिसका कोई हिसाब

नहीं था। शायद मां-बाप के लिए इससे दुखद कोई घटना न थी। खुद का मरना भी शायद इतना दुखद न होगा जितना दस बच्चे पैदा हों और नौ बच्चे मर जाएं। तो मां-बाप बच्चों के जन्म की करीब-करीब खुशी ही नहीं मना पाते थे, मरने का दुख मनाते ही जिंदगी बीत जाती थी।

तो मनुष्य ने निरंतर खोज की और अब यह हालत आ गई है कि दस बच्चों में से नौ बच्चे बच सकते हैं; और कल दस बच्चे भी बचाए जा सकेंगे। दस बच्चों में से नौ बच्चे मरते थे, तो एक आदमी को अगर तीन बच्चे बचाना हो तो कम से कम औसतन तीस बच्चे पैदा करने होते थे। जब तीस बच्चे पैदा होते थे तो तीन बच्चे बचते थे। अब मनुष्य ने खोज कर ली है नियमों की और वह इस जगह पहुंच गया कि दस बच्चों में से नौ जिंदा रहेंगे, दस भी जिंदा रह सकते हैं। लेकिन आदत उसकी पुरानी पड़ी हुई है।। तीस बच्चे पैदा करने की।

आज परिवार-नियोजन जो कह रहा हैः दो या तीन बच्चे बस! यह कोई नई बात नहीं है। इतने बच्चे तब भी थे। इससे ज्यादा तो कभी होते ही नहीं थे। औसत तो यही था, तीन बच्चों का। और सत्ताइस बच्चे मरते थे। फिर सत्ताइस बच्चों के मरने पर तीन बच्चों के होने का सुख भी समाप्त हो जाता था। तो हमने व्यवस्था कर ली कि हमने मृत्यु-दर को कम कर लिया। वह भी हमने परमात्मा के नियमों को खोज कर किया। वे नियम भी कोई आदमी के बनाए नियम नहीं हैं। अगर बच्चे मर जाते थे तो वे भी हमारे नियम की नासमझी के कारण मरते थे। हमने नियम खोज लिए हैं, बच्चे ज्यादा बचा लेते हैं। बच्चे जब हम ज्यादा बचा लेते हैं तो सवाल खड़ा हुआ कि इतने बच्चों के लिए इस पृथ्वी पर सुख की व्यवस्था हम कर पाएंगे? इतने बच्चों के लिए सुख की व्यवस्था इस पृथ्वी पर नहीं की जा सकती।

बुद्ध के समय में हिंदुस्तान की आबादी दो करोड़ थी, आज हिंदुस्तान की आबादी पचास करोड़ के ऊपर है। जहां दो करोड़ लोग खुशहाल हो सकते थे, वहां पचास करोड़ लोग कीड़े-मकोड़ों की तरह मरने लगेंगे और परेशान होने लगेंगे; क्योंकि जमीन नहीं बढ़ती, जमीन के उत्पादन की क्षमता नहीं बढ़ती। आज पृथ्वी पर साढ़े तीन अरब लोग हैं। यह संख्या इतनी ज्यादा है कि पृथ्वी संपन्न नहीं हो सकती।

इतनी संख्या के होते हुए भी हमने मृत्यु-दर रोक ली है। उस वक्त हमने न कहा कि भगवान चाहता है कि दस बच्चे पैदा हों और नौ मर जाएं। अगर हम उस वक्त कहते तो भी बात ठीक थी। उस वक्त हम राजी हो गए। लेकिन अब हम कहते हैं कि हम बच्चे पैदा करेंगे, क्योंकि भगवान दस बच्चे देता है। यह तर्क बेईमान तर्क है। इसका भगवान से, धर्म से कोई संबंध नहीं है। जब हम दस बच्चे पैदा करते थे और नौ बच्चे मरते थे, तब भी हमें यही कहना चाहिए था कि भगवान नौ बच्चे मारता है, हम न बचाएंगे। हम दवा न करेंगे, हम इलाज न करेंगे, हम चिकित्सा की व्यवस्था न करेंगे।

चिकित्सा की व्यवस्था, इलाज, दवाएं, सबकी खोज हमने की, जो कि बिल्कुल उचित ही है और इसको निश्चित ही भगवान आशीर्वाद देगा। क्योंकि भगवान बीमारी का आशीर्वाद देता हो, और इतने बच्चे पैदा हों और उनमें अधिकतम मर जाएं, इसके लिए उसका आशीर्वाद हो, ऐसी बात जो लोग करते हैं, वे धार्मिक नहीं हो सकते। वे तो भगवान को भी क्रूर, हत्यारा और बुरा सिद्ध कर देते हैं।

अगर बच्चे मरते थे तो हमारी नासमझी थी। अब हमने समझ बढ़ा ली, अब बच्चे बचेंगे। अब हमें दूसरी समझ बढ़ानी पड़ेगी कि कितने बच्चे पैदा करें। मृत्यु-दर जब हमने कम कर ली तो हमें जन्म-दर भी कम करनी पड़ेगी। अन्यथा नौ बच्चों के मरने से जितना दुख होता था, दस बच्चों के बचने से उससे कई गुना ज्यादा दुख जमीन पर पैदा हो जाएगा। आदमी स्वतंत्र है अपने दुख और सुख की खोज में। यह आदमी की बुद्धिमत्ता पर

निर्भर है कि वह कितना सुख अर्जित करे या कितना दुख अर्जित करे। तो अब जरूरी हो गया है कि हम बच्चे कम पैदा करें, ताकि अनुपात वही रहे जो कि पृथ्वी सम्हाल सकती है।

और बड़े मजे की बात यह है कि हम भगवान का नाम लेते हैं तो यह भूल जाते हैं कि अगर भगवान बच्चे पैदा कर रहा है तो बच्चों को रोकने की जो कल्पना, जो खयाल पैदा हो रहा है, वह कौन पैदा कर रहा है? अगर डाक्टर के भीतर से भगवान बच्चे को बचा रहा है, तो डाक्टर के भीतर से उन बच्चों को आने से रोक भी रहा है, जो कि पृथ्वी को कष्ट में, दुख में डाल देंगे।

अगर सभी कुछ भगवान का है, तो यह परिवार-नियोजन का खयाल भी भगवान का ही है। और मनुष्य की यह आकांक्षा कि हम अधिकतम सुखी हों, यह भी इच्छा भगवान की ही है।

अधिकतम सुख चाहिए तो परिवार का नियमन चाहिए। परिवार-नियोजन का और कोई अर्थ नहीं है, इसका अर्थ इतना ही है कि पृथ्वी कितने लोगों को सुख दे सकती है, भोजन दे सकती है। उससे ज्यादा लोगों को पृथ्वी पर खड़े करना, अपने हाथ से पृथ्वी को नरक बनाना है। पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है, नरक भी बन सकती है।। और यह आदमी के हाथ में है।

जब तक आदमी नासमझ था तो प्रकृति की अंधी शक्तियां काम करती थीं। बच्चे कितने ही पैदा कर लो, मर जाते थे। बीमारी आती थी, महामारी आती थी, प्लेग आता था, मलेरिया आता था, और बच्चे विदा होते जाते थे। युद्ध होता, अकाल पड़ता, भूकंप होते, और बच्चे विदा हो जाते थे।

मनुष्य ने प्रकृति की ये सारी विध्वंसक शक्तियों पर बहुत दूर तक कब्जा पा लिया। प्लेग नहीं होगा, महामारी नहीं होगी, मलेरिया नहीं होगा, माता नहीं होगी, अकाल में हम बच्चे मरने न देंगे। पिछला अकाल जो बिहार में पड़ा, उसमें अनुमान था कि कोई दो करोड़ लोगों की मृत्यु हो जाएगी; लेकिन मरे केवल चालीस आदमी। तो अकाल भी जिन लोगों को मार सकता था, उनको भी हमने सब भांति बचा लिया। तो हमने प्रकृति की विध्वंसक शक्ति पर तो रोक लगा दी और उसकी सृजनात्मक शक्ति पर अगर हम उसी अनुपात में रोक न लगाएं तो हम प्रकृति का संतुलन नष्ट करने वाले सिद्ध होंगे।

परमात्मा के खिलाफ कोई काम हो सकता है तो यह है कि प्रकृति का संतुलन नष्ट हो जाए। तो जो लोग आज संख्या बढ़ा रहे हैं, जमीन की क्षमता से ज्यादा, वे लोग परमात्मा के खिलाफ काम कर रहे हैं। क्योंकि परमात्मा का संतुलन बिगाड़े दे रहे हैं।

प्रकृति का संतुलन बचेगा, अगर प्रकृति की सृजनात्मक शक्तियों पर भी उसी अनुपात में रोक लगा दें, जिस अनुपात में विध्वंसक शक्तियों पर रोक लगा दी है। तो अनुपात वही होगा। और यह सुखद है बजाय इसके कि बच्चे पैदा हों और मरें बीमारी में, अकाल में, भूकंप में, युद्ध में। इससे ज्यादा उचित है कि वे पैदा ही न हों। क्योंकि पैदा होने के बाद मरना, मारना, मरने देना अत्यंत दुखद है। न पैदा करना कतई दुखद नहीं है।

इसलिए मैं यह कतई नहीं मानता हूं कि परिवार-नियोजन कोई परमात्मा के खिलाफ बात है।

बल्कि मैं यह मानता हूं कि इस वक्त जिनके भीतर से परमात्मा थोड़ी-बहुत आवाज दे रहा है, वे यह कहेंगे कि परिवार-नियोजन परमात्मा का काम है। निश्चित ही परमात्मा का काम हर युग में बदल जाता है। क्योंकि कल जो परमात्मा का काम था, जरूरी नहीं कि वह आज भी वही हो। युग बदलता है, परिस्थिति बदल जाती है, तो काम भी बदल जाता है।

अब सारी परिस्थितियां बदल गई हैं और आदमी के हाथ इतनी शक्ति आ गई है कि वह पृथ्वी को अत्यंत आनंदपूर्ण बना सकता है। सिर्फ एक चीज की रुकावट हो गई है कि संख्या अत्यधिक हो गई है, तो पृथ्वी नष्ट हो

जाएगी। और बहुत से प्राणी भी अपनी बहुत संख्या करके मर चुके हैं, आज उनका अवशेष भी नहीं मिलता। मनुष्य भी मर सकता है।

इस समय वही मनुष्य धार्मिक है, जो मनुष्य की संख्या कम करने में सहयोगी हो रहा है।

इस समय परमात्मा की दिशा में और मनुष्य की सेवा की दिशा में इससे बड़ा कोई कदम नहीं हो सकता। इसलिए धार्मिक चित्त तो यही कहेगा कि परिवार-नियोजन हो।

हां, यह हो सकता है कि... हम ऐसे बेईमान लोग हैं कि जो हमें करना होता है, उसके लिए हम भगवान का सहारा खोज लेते हैं। और जो हमें नहीं करना होता, उसके लिए हम भगवान के सहारे की बात नहीं करते! जब हमें बीमारी होती है तब हम अस्पताल जाते हैं; तब हम यह नहीं कहते कि बीमारी भगवान ने भेजी है; कैंसर, टी बी भगवान ने भेजे हैं। तब हम डाक्टर को खोजते हैं। और जब डाक्टर हमें खोजता हुआ आता है और कहता है इतने बच्चे नहीं, तब हम कहते हैं कि ये तो भगवान के भेजे हुए हैं।

तो हमें इन दो में से कुछ एक तय करना होगा कि बीमारी भी भगवान की भेजी हुई है।। मलेरिया भी, महामारी भी, प्लेग भी, अकाल भी।। तब हमें इनमें मरने के लिए तैयार होना चाहिए। और अगर हम कहते हैं कि ये भगवान के भेजे नहीं हैं, हम इनसे लड़ेंगे। तो फिर हमें निर्णय लेना होगा कि फिर बच्चे भी जो हम कहते हैं, भगवान के भेजे हैं, उन पर हमें नियंत्रण करना जरूरी है।

मुझे एक घटना याद आती है।

इथोपिया में बड़ी संख्या में बच्चे मर जाते हैं। तो इथोपिया के सम्राट ने एक अमेरिकन डाक्टरों के मिशन को बुलाया और जांच-पड़ताल करवाई कि क्या कारण है। तो पता चला कि इथोपिया में जो पानी पीने की व्यवस्था है वह गंदी है। और पानी जो है वह रोगाणुओं से भरा है। और लोग सड़क के किनारे के गंदे डबरों का ही पानी पीते रहते हैं। उसी में सब मल-मूत्र भी बहता रहता है और उसका पानी पीते हैं! वही उनकी बीमारियों और मृत्यु का बड़ा कारण है। साल भर की मेहनत के बाद उनके मिशन ने रिपोर्ट दी और सम्राट को कहा कि पानी पीने की यह व्यवस्था बंद करवाइए, सड़क के किनारों के गड्ढों का पानी पीना बंद करवाइए और पानी की कोई नई वैज्ञानिक व्यवस्था करवाइए।

तो इथोपिया के सम्राट ने कहा कि मैंने समझ ली आपकी बातें और कारण भी समझ लिया; लेकिन मैं यह नहीं करूंगा। क्योंकि आज अगर हम यह इंतजाम कर लें आदमियों को बीमारी से बचाने का, तो फिर कल इन्हीं लोगों को समझाना मुश्किल होगा कि परिवार-नियोजन करो। इथोपिया के सम्राट ने कहा, यह दोहरी झंझट हम न लेंगे। पहले हम इनको यह समझाएं कि तुम गंदा पानी मत पीयो, इसमें झंझट-झगड़ा होगा। बामुश्किल बहुत खर्च करके हम इनको राजी कर पाएंगे। तब जनसंख्या बढ़ेगी। तब हम इन्हें समझाएंगे दुबारा कि तुम बच्चे कम पैदा करो। तो उसने कहा, इससे यह जो हो रहा है, वही ठीक हो रहा है।

मैं भी समझता हूं कि यदि भगवान पर छोड़ना है तो फिर इथोपिया का सम्राट ठीक कहता था, तो फिर हमें भी इसी के लिए राजी होना चाहिए। अस्पताल बंद, लोग गंदा पानी पीएं, बीमारी में रहें।। फिर हम सब भगवान पर छोड़ दें।। जितने जीएं, जीएं।

इतना जरूर कहे देता हूं कि भगवान के हाथ में छोड़ कर इतने आदमी दुनिया में कभी न बचे थे, जितने आदमी ने अपने हाथ में लेकर बचाए। इतने आदमी भगवान के हाथ में छोड़ कर कभी न बचते।

इसलिए जब हमने विध्वंस की शक्तियों पर रोक लगा दी तो हमें सृजन की शक्तियों पर भी रोक लगाने की तैयारी दिखानी चाहिए। और इस तैयारी में परमात्मा का कोई विरोध नहीं हो रहा है और न इसमें कोई

धर्म का विरोध हो रहा है। क्योंकि धर्म है ही इसलिए कि मनुष्य अधिकतम सुखी कैसे हो, इसका इंतजाम, इसकी व्यवस्था करनी है।

प्रश्नः ओशो, एक और प्रश्न है कि परिवार-नियोजन जैसा अभी चल रहा है उसमें हम देखते हैं कि हिंदू ही उसका प्रयोग कर रहे हैं, और बाकी और धर्मों के लोग ईसाई, मुस्लिम, ये इसका कम उपयोग कर रहे हैं। तो ऐसा हो सकता है कि उनकी संख्या थोड़े वर्षों के बाद इतनी बढ़ जाए कि एक और पाकिस्तान मांग लें, और तुर्किस्तान मांग लें, और कुछ ऐसी मुश्किलें खड़ी हो जाएं। फिर पाकिस्तान या चीन है, वहां जनसंख्या पर रुकावट नहीं है, तो उसमें अधिक लोग हो जाएंगे और वे हम पर हमला करने की चेष्टा रखते हैं, तो हमारी जनसंख्या कम होने से हमारी ताकत कम हो जाए। तो इसके बारे में आपके क्या खयाल हैं?

इस संबंध में दो-तीन बातें खयाल में रखने की हैं।

पहली बात तो यह कि आज के वैज्ञानिक युग में जनसंख्या का कम होना, शक्ति का कम होना नहीं है। हालतें उलटी हैं। हालत तो यह है कि जिस मुल्क की जनसंख्या जितनी ज्यादा है, वह टेक्नॉलाजिकल दृष्टि से कमजोर है; क्योंकि इतनी बड़ी जनसंख्या के पालन-पोषण में, व्यवस्था में उसके पास अतिरिक्त संपत्ति बचने वाली नहीं है, जिससे वह एटम बम बनाए, हाइड्रोजन बम बनाए, सुपर बम बनाए, और चांद पर जाए। जितना गरीब देश होगा, आज वह उतना ही वैज्ञानिक दृष्टि से शक्तिहीन देश होगा। आज तो वही देश शक्ति-संपन्न होगा, जिसके पास ज्यादा संपत्ति है, ज्यादा व्यक्ति नहीं।

वह जमाना गया जब आदमी ताकतवर था, अब मशीन ताकतवर है। और मशीन उसी देश के पास अच्छी से अच्छी हो सकेगी, जिस देश के पास जितनी संपन्नता होगी। और संपन्नता उसी देश के पास ज्यादा होगी, जिसके पास प्राकृतिक साधन ज्यादा और जनसंख्या कम होगी।

तो पहली बात यह है कि आज जनसंख्या शक्ति नहीं है। और इसलिए भ्रांति में पड़ने का कोई कारण नहीं है। चीन के पास चाहे जितनी जनसंख्या हो, तो भी शक्तिशाली अमेरिका होगा। चीन के पास जितनी भी जनसंख्या हो, तो भी छोटा सा मुल्क इंग्लैंड शक्तिशाली है, और जापान जैसा मुल्क भी शक्तिशाली है। शक्ति का पूरा का पूरा आधार बदल गया है। जब आदमी ही एकमात्र आधार था, तब तो ये बातें ठीक थीं कि जनसंख्या बड़ा मूल्य रखती थी। लेकिन अब आदमी से भी बड़ी शक्ति हमने पैदा कर ली है, जो मशीन की है। मशीन ताकत है। और देश उतना ही संपन्न हो सकता है, जितनी ज्यादा जनसंख्या उसकी कम हो, ताकि उसके पास संपत्ति बच सके, लोगों को खिलाने, कपड़ा पहनाने, इलाज कराने के बाद; ताकि उस शक्ति को वैज्ञानिक विकास करने में लगा सके।

दूसरी बात यह समझने जैसी है कि संख्या कम होने से उतना बड़ा दुर्भाग्य नहीं टूटेगा, जितना बड़ा दुर्भाग्य संख्या के बढ़ जाने से बिना किसी हमले के टूट जाएगा। यानी हमले का तो कोई उपाय भी किया जा सकता है कि कोई बड़ा मुल्क हम पर हमला करे तो हम दूसरों से सहायता ले लें, लेकिन हमारे ही बच्चे हमलावर सिद्ध हो जाएं संख्या के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण तो हम किसी की सहायता न ले सकेंगे। उस वक्त हम बिल्कुल असहाय हो जाएंगे। इस वक्त युद्ध इतना बड़ा खतरा नहीं है, जितना बड़ा खतरा जनसंख्या विस्फोट का है। खतरा बाहर नहीं है कि हमें कोई मार डाले, वरन जो हमारी उत्पादन क्षमता है बच्चों की, वही

हमारे लिए सबसे बड़ा खतरा है।। कि संख्या इतनी हो जाए कि हम सिर्फ मर जाएं इस कारण से कि न पानी हो, न भोजन हो, न रहने को जगह।

तीसरी बात यह कि जो हम सोचते हैं कि हिंदू अपनी संख्या कम कर लें तो मुसलमान से कम न हो जाएं, तो इस डर से हिंदू भी अपनी संख्या कम न करें। मुसलमान भी इस डर से अपनी संख्या कम न करें कि कहीं हिंदू ज्यादा न हो जाएं। ईसाई भी यही डर रखें। जैन भी यही डर रखें। सिक्ख भी यही डर रखें। तो इन सबके डर एक से हैं। तब परिणाम यह होगा कि मुल्क ही मर जाएगा। तो यह डर किसी को तो तोड़ना शुरू करना पड़ेगा। और जो समाज इस डर को तोड़ेगा, वह संपन्न हो जाएगा। मुसलमानों से उनके बच्चे ज्यादा स्वस्थ, ज्यादा शिक्षित होंगे, ज्यादा अच्छे मकानों में रहेंगे। वे दूसरे समाजों को, जिनकी संख्या कीड़े-मकोड़ों की तरह बढ़ेगी, उनको पीछे छोड़ कर आगे निकल जाएंगे। और इसका परिणाम यह भी होगा कि दूसरे समाजों में भी स्पर्धा पैदा होगी इस खयाल से कि वे गलती कर रहे हैं।

आज दुनिया में यह बड़ा सवाल नहीं है कि हिंदू कम हो गए तो कोई हर्ज हो रहा है, कि मुसलमान ज्यादा हो गए तो उनको कोई फायदा हो रहा है। बड़ा सवाल यह है कि अगर इन सारे लोगों के दिमाग में यही खयाल भरा रहे तो यह पूरा मुल्क मर जाएगा। अगर यही विकल्प है कि हिंदू कम हो जाएंगे और इससे हिंदुओं की संख्या को नुकसान पहुंचेगा, मुसलमान ज्यादा हो जाएंगे, ईसाई ज्यादा हो जाएंगे, तो भी मैं कहूंगा कि हिंदू अपने को कम कर लें और भारत को बचाने का श्रेय ले लें, चाहे खुद मिट जाएं। हालांकि इसकी कोई संभावना नहीं है। तो भी मैं कहूंगा कि मेरे लिए यह इतना बड़ा सवाल नहीं है, हिंदू-मुसलमान का, जितना बड़ा मेरे लिए एक दूसरा सवाल है।

जब तक हम परिवार-नियोजन को स्वेच्छा पर छोड़े हुए हैं, तब तक खतरा एक दूसरा है कि जो जितना शिक्षित और उन्नत है, जो जितना संपन्न है, जिसकी बुद्धि विकसित है, वह तो राजी हो जाएगा स्वभावतः। वह तो आज परिवार-नियोजन के लिए राजी हो जाएगा, सिर्फ बुद्धुओं को छोड़ कर। बुद्धिमान तो राजी होंगे ही; क्योंकि परिवार-नियोजन से उसके बच्चे ज्यादा सुखी होंगे, ज्यादा संपन्न होंगे, ज्यादा शिक्षित होंगे। लेकिन खतरा यह है कि जो बुद्धिहीन वर्ग है।। उसको न कोई शिक्षा है, न कोई ज्ञान है, न कोई सवाल है।। वे समझ ही न पाएं और बच्चे पैदा करते चले जाएं। तो जो नुकसान हो सकता है लंबे अर्थों में वह यह हो सकता है कि अशिक्षित, अविकसित, पिछड़े हुए लोग ज्यादा बच्चे पैदा करें और शिक्षित व संपन्न लोग कम बच्चे पैदा करें तो मुल्क की प्रतिभा को ज्यादा नुकसान पहुंचे। यह हो सकता है।

इसलिए मेरी यह मान्यता है कि परिवार-नियोजन की बात धीरे-धीरे अनिवार्य हो जानी चाहिए।

कहीं ऐसा न हो कि बुद्धिमान तो स्वीकार कर लें और गैर-बुद्धिमान न करें, तो वह अनिवार्य होना चाहिए। इसलिए मैं अनिवार्य परिवार-नियोजन के पक्ष में हूं।

परिवार-नियोजन किसी की स्वेच्छा पर नहीं छोड़ा जा सकता है।

यह तो ऐसा ही है कि जैसे हम हत्या को स्वेच्छा पर छोड़ दें।। कि जिसको करना हो करे, जिसको न करना हो न करे। डाके को स्वेच्छा पर छोड़ दें।। कि जिसको डाका डालना हो डाले, न डालना हो न डाले। सरकार समझाने की कोशिश करेगी और देखती रहेगी।

डाका भी आज उतना खतरनाक नहीं है, हत्या भी आज उतनी खतरनाक नहीं है, जितना जनसंख्या का बढ़ना। इस जीवंत सवाल को इस तरह स्वेच्छा पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए।

और जब हम इसे स्वेच्छा पर नहीं छोड़ते, तो यह हिंदू, मुसलमान, ईसाई का सवाल नहीं रह जाता। क्योंकि सिक्ख को उसका गुरु समझा रहा है कि तुम कम हो जाओगे, मुसलमान ज्यादा हो जाएंगे। मुसलमान को मौलवी समझा रहा है कि तुम कम हो जाओगे, हिंदू ज्यादा हो जाएंगे। वही ईसाई पादरी भी सोच रहा है, वही हिंदू पंडित भी सोच रहा है। ये सब जो सोच रहे हैं, इनकी सोचने की वजह भी अनिवार्य परिवार-नियोजन से मिट जाएगी। यदि हम परिवार-नियोजन अनिवार्य कर देते हैं, तो कोई हिंदू, मुसलमान, ईसाई का सवाल नहीं रह जाता है।

मेरे लिए तो सवाल यह है कि सैकड़ों वर्षों में कुछ लोग विकसित हो गए हैं और कुछ लोग अविकसित रह गए हैं। जो अविकसित वर्ग है, वह बच्चे ज्यादा छोड़ जाए तो देश की प्रतिभा और बुद्धिमत्ता को भारी नुकसान पहुंच सकता है। बुद्धिमत्ता को भारी नुकसान पहुंच सकता है। और वह नुकसान खतरनाक सिद्ध हो सकता है। इसलिए उस दृष्टि से मैं सारे सवाल को सोचता हूं कि केवल परिवार-नियोजन ही न हो, बल्कि ऐसा लगता है कि वह अनिवार्य हो। एक भी व्यक्ति सिर्फ इसलिए न छोड़ा जा सके कि वह राजी नहीं है। और यह हमें करना ही पड़ेगा। इसे बिना किए हम इन आने वाले पचास वर्षों में जिंदा नहीं रह सकते।

शक्ति के सारे मापदंड बदल गए हैं, यह हमें ठीक से समझ लेना चाहिए। आज शक्तिशाली वह है जो संपन्न है। और संपन्न वह है जिसके पास जनसंख्या कम है और उत्पादन के साधन ज्यादा हैं। आज मनुष्य न तो उत्पादन का साधन है, न शक्ति का साधन है। आज मनुष्य सिर्फ भोक्ता है, कंज्यूमर है। मशीन पैदा करती है, जमीन पैदा करती है, मनुष्य खा रहा है।

और धीरे-धीरे जैसे-जैसे टेक्नॉलाजी विकसित होती है, आदमी की शक्ति का सारा मूल्य समाप्त हुआ जा रहा है। आदमी न हो तो भी चल सकता है। एक लाख आदमी जिस फैक्टरी में काम करते हों, उसे एक आदमी चला सकेगा। और हिरोशिमा में एक लाख आदमी मारना हो तो उन्हें एक आदमी मार सकेगा। पुराने जमाने में तो कम से कम एक लाख आदमी ले जाने पड़ते। अब तो कोई एक आदमी जाता है और एटम बम गिरा कर उनको समाप्त कर देता है। कल यह भी हो सकता है कि एक आदमी को भी न जाना पड़े। कंप्यूटराइज्ड आदेश एक आदमी भर देगा मशीन में और काम हो जाएगा। आदमी की संख्या बिल्कुल महत्वहीन हो गई है।

यह जरूरी नहीं है कि मेरी सारी बातें मान ली जाएं। इतना ही काफी है कि आप मेरी बात पर सोचें, विचार करें। अगर इस देश में सोच-विचार आ जाए तो शेष चीजें अपने आप छाया की तरह पीछे चली आएंगी। मेरी बातें खयाल में लें और उस पर सूक्ष्मता से विचार करें, तो हो सकता है कि आपको यह बोध आ जाए कि परिवार-नियोजन की अनिवार्यता कोई साधारण बात नहीं है जिसकी उपेक्षा की जा सके। वह जीवन की अनेक-अनेक समस्याओं की गहनतम जड़ों से संबंधित है। और उसे क्रियान्वित करने की देरी पूरी मनुष्य-जाति के लिए आत्मघात सिद्ध हो सकती है।

पांचवां प्रवचन

विद्रोह क्या है

हिप्पीवाद पर मैं कुछ कहूं, ऐसा छात्रों ने अनुरोध किया है।

इस संबंध में पहली बात, बर्नार्ड शॉ ने एक किताब लिखी हैः मैक्जिम्स फॉर ए रेवोल्यूशनरी।। क्रांतिकारी के लिए कुछ स्वर्ण-सूत्र। और उसमें पहला स्वर्ण-सूत्र बहुत अदभुत लिखा है। और एक ढंग से पहले स्वर्ण-सूत्र पर भी बात पूरी हो जाती है। पहला स्वर्ण-सूत्र लिखा हैः दि फर्स्ट गोल्डन रूल इ.ज दैट देअर आर नो गोल्डन रूल्स! पहला-स्वर्ण नियम यही है कि कोई भी स्वर्ण-नियम नहीं हैं।

हिप्पीवाद के संबंध में जो पहली बात कहना चाहूंगा वह यह कि हिप्पीवाद कोई "वाद" नहीं है, समस्त वादों का विरोध है। पहले इस वाद को ठीक से समझ लेना जरूरी है।

पांच हजार वर्षों से मनुष्य को जिस चीज ने सर्वाधिक पीड़ित किया है, वह है वाद।। वह चाहे इस्लाम हो, चाहे ईसाइयत हो, चाहे हिंदू हो, चाहे कम्युनिज्म हो, सोशलिज्म हो, फासिज्म हो, या गांधी-इज्म हो। वादों ने मनुष्य को बहुत ज्यादा पीड़ित और परेशान किया है। मनुष्य इतिहास के जितने युद्ध हैं, जितना हिंसापात है, वह सब वादों के आस-पास घटित हुआ है। वाद बदलते चले गए हैं, लेकिन नये वाद पुरानी बीमारियों की जगह ले लेते हैं और आदमी फिर वहीं का वहीं खड़ा हो जाता है।

उन्नीस सौ सत्रह में रूस में पुराने वाद समाप्त हुए, पुराने देवी-देवता विदा हुए, तो नये देवी-देवता पैदा हो गए, नया धर्म पैदा हो गया। क्रेमलिन अब मक्का और मदीना से कम नहीं है। वह नई काशी है, जहां पूजा के फूल चढ़ाने सारी दुनिया के कम्युनिस्ट इकट्ठे होते हैं। मूर्तियां हट गईं, जीसस क्राइस्ट के चर्च मिट गए, लेकिन लेनिन की मृत देह क्रेमलिन के चौराहे पर रख दी गई है। उसकी भी पूजा चलती है!

वाद बदल जाता है, लेकिन नया वाद उसकी जगह ले लेता है।

हिप्पी समस्त वादों से विरोध है। हिप्पी के नाम से जिन युवकों को आज जाना जाता है, उनकी धारणा यह है कि मनुष्य बिना वाद के जी सकता है। न किसी धर्म की जरूरत है, न किसी शास्त्र की, न किसी सिद्धांत की, न किसी विचार-संप्रदाय, आइडियालॉजी की। क्योंकि उनकी समझ यह है कि जितना ज्यादा विचार की पकड़ होती है, जीवन उतना ही कम हो जाता है।

हिप्पियों की इस बात से मैं भी अपनी सहमति जाहिर करना चाहता हूं। इन अर्थों में वे बहुत सांकेतिक हैं, सिंबालिक हैं और आने वाले भविष्य की एक सूचना देते हैं। आज से सौ वर्ष बाद दुनिया में जो मनुष्य होगा, वह मनुष्य वादों के बाहर तो निश्चित ही चला जाएगा।

वाद का इतना विरोध होने का कारण क्या है? हिप्पियों के मन में, उन युवकों के मन में, जो समस्त वादों के विरोध में चले गए हैं, समस्त मंदिरों, समस्त चर्चों के विरोध में चले गए हैं।। जाने का कारण है। और कारण है इतने दिनों का निरंतर का अनुभव। वह अनुभव यह है कि जितना ही हम मनुष्य के ऊपर वाद थोपते हैं, उतनी ही मनुष्य की आत्मा मर जाती है। जितना बड़ा ढांचा होगा वाद का, उतनी ही भीतर की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि हममें से बहुत से लोग मर तो बहुत पहले जाते हैं, दफनाए बहुत बाद में जाते हैं। कोई तीस साल में मर जाता है और सत्तर साल में दफनाया जाता है। हम उसी दिन अपनी स्वतंत्रता, अपना व्यक्तित्व, अपनी आत्मा खो देते हैं, जिस दिन कोई विचार का कोई ढांचा हमें सब तरफ से पकड़ लेता है। सींकचे तो दिखाई पड़ते हैं लोहे के, कारागृह दिखाई पड़ते हैं लोहे के, लेकिन विचार के कारागृह दिखाई नहीं पड़ते! और जो कारागृह जितना कम दिखाई पड़ता है, उतना ही खतरनाक है।

अभी मैं एक नगर से विदा हुआ; बहुत से मित्र छोड़ने आए थे। जिस कंपार्टमेंट में मैं था उसमें एक और साथी थे। उन्होंने देखा कि बहुत मित्र मुझे छोड़ने आए हैं। तो जैसे ही मैं अंदर प्रविष्ट हुआ, गाड़ी चली, उन्होंने जल्दी से मेरे पैर छुए और कहा कि महात्मा जी, नमस्कार करता हूं। बड़ा आनंद हुआ कि आप मेरे साथ होंगे। मैंने उनसे कहा कि ठीक से पता लगा लेना था कि मैं महात्मा हूं या नहीं। आपने तो जल्दी पैर छू लिए। अब अगर मैं महात्मा सिद्ध न हुआ तो पैर छूने को वापस कैसे लेंगे?

उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है, आपके कपड़े कहते हैं! मैंने कहा, अगर कपड़ों से कोई महात्मा होता तो तब तो पृथ्वी सारी की सारी कभी की महात्मा हो गई होती। उन्होंने कहा कि नहीं, इतने लोग छोड़ने आए थे! तो मैंने कहा कि किराए के आदमी इतने लोगों को छोड़ने आते हैं कि उसका कोई मतलब नहीं रहा है। वे कहने लगे, कम से कम आप हिंदू तो हैं?

उन्होंने सोचा कि न सही कोई महात्मा हों, हिंदू होंगे तो भी चलेगा। कोई ज्यादा गुनाह नहीं हुआ, पैर छू लिए। तो मैंने कहा, नहीं, हिंदू भी नहीं हूं। तो उन्होंने कहा, आप आदमी कैसे हैं? कुछ तो होंगे, मुसलमान होंगे, ईसाई होंगे! मैंने उनसे पूछा कि क्या मेरे सिर्फ आदमी होने से आपको कोई एतराज है? क्या सिर्फ आदमी होकर मैं नहीं हो सकता हूं, मुझे कुछ और होना ही पड़ेगा?

उनकी बेचैनी देखने जैसी थी। कंडक्टर को बुला कर वे दूसरे कंपार्टमेंट में अपना सामान ले गए। मैं थोड़ी देर बाद उनके पास गया और मैंने उनको कहा, आप तो कहते थे सत्संग होगा, बड़ा आनंद होगा। आप तो चले गए! क्या एक आदमी के साथ सफर करना उचित नहीं मालूम पड़ा? हिंदू के साथ सफर हो सकता था। आदमी के साथ सफर बहुत मुश्किल है।

आज पश्चिम में जिन युवकों ने हिप्पियों का नाम ले रखा है, उनकी पहली बगावत यह है कि वे कहते हैं कि हम सीधे आदमी की तरह जीएंगे। न हम हिंदू होंगे, न हम कम्युनिस्ट होंगे, न हम सोशलिस्ट होंगे, न हम ईसाई होंगे। हम सीधे निपट आदमी की तरह जीने की कोशिश करेंगे।

निपट आदमी की तरह जीने की जो भी कोशिश है, वह मुझे तो बहुत प्रीतिकर है। और मेरी समझ में जीसस भी निपट आदमी की तरह जीए।। बुद्ध भी, महावीर भी। इसलिए अभी एक वक्तव्य में जब मैंने कहा कि जीसस, बुद्ध, महावीर और कृष्ण, इन सबको हिप्पियों के लंबे इतिहास में जोड़ लिया जाना चाहिए, तो कुछ लोगों को बहुत हैरानी हुई।

हिप्पी नाम तो नया है, लेकिन घटना बहुत पुरानी है। मनुष्य के इतिहास में आदमी ने कई बार निपट आदमी की तरह जीने की कोशिश की है। निपट आदमी की तरह जीने में बहुत से सवाल हैं। धर्म नहीं, चर्च नहीं, समाज नहीं।। अंततः देश भी नहीं; क्योंकि देश, राष्ट्र, सब उपद्रव हैं, सब बीमारियां हैं।

कल तक पाकिस्तान की भूमि हमारी मातृभूमि हुआ करती थी। अब वह हमारे शत्रु की मातृभूमि है! जमीन वही है, कहीं टूटी नहीं, कहीं दरार नहीं पड़ी।

मैंने सुना है, एक पागलखाना था हिंदुस्तान के बंटवारे के समय हिंदुस्तान-पाकिस्तान की सीमा पर। अब यह भी सवाल उठा कि इस पागलखाने को कहां जाने दें।। हिंदुस्तान में कि पाकिस्तान में? कोई राजनैतिक उत्सुक न था कि वह पागलखाना कहीं भी चला जाए। तो पागलों से ही पूछा अधिकारियों ने कि तुम कहां जाना चाहते हो, हिंदुस्तान में या पाकिस्तान में? तो उन पागलों ने कहा, हम तो जहां हैं वहां बड़े आनंद में हैं, हमें कहीं जाने की कोई इच्छा नहीं है। पर उन्होंने कहा कि जाना तो पड़ेगा ही, यह इच्छा का सवाल नहीं है। और तुम घबड़ाओ मत! तुम हिंदुस्तान में चाहो हिंदुस्तान में चले जाओ, पाकिस्तान में चाहो तो पाकिस्तान में चले जाओ। तुम जहां हो वहीं रहोगे। यहां से हटना न पड़ेगा।

तब तो वे पागल बहुत हंसने लगे। उन्होंने कहा, हम तो सोचते थे कि हम ही पागल हैं। लेकिन ये अधिकारी और भी पागल मालूम होते हैं, क्योंकि ये कहते हैं कि जाना कहीं न पड़ेगा और पूछते हैं जाना कहां चाहते हो! उन पागलों ने कहा कि जब जाना ही नहीं पड़ेगा तो "जाना चाहते हो" का सवाल क्या है?

उन पागलों को समझाना बहुत मुश्किल हुआ। आखिर आधा पागलखाना बीच से दीवार उठा कर पाकिस्तान में चला गया, आधा हिंदुस्तान में चला आया! मैंने सुना है कि अभी भी वे पागल एक-दूसरे की दीवार पर चढ़ जाते हैं और आपस में सोचते हैं कि बड़ी अजीब बात है, हम वहीं के वहीं हैं, लेकिन तुम पाकिस्तान में चले गए और हम हिंदुस्तान में चले गए!

ये पागल हमसे कम पागल मालूम होते हैं। हमने जमीन को बांटा है, आदमी को बांटा है।

हिप्पी कह रहा है, हम बांटेंगे नहीं; हम निपट, बिना बंटे हुए आदमी की तरह जीना चाहते हैं।

और वाद बांटते हैं। बांटने की सबसे सुविधापूर्ण तरकीब वाद है, इज्म है।

इसलिए हिप्पी कहते हैं कि हम किसी इज्म में नहीं हैं। ऊब चुके तुम्हारे वादों से, तुम्हारे धर्मों से। हमें निपट आदमी की तरह छोड़ दो।। हम जैसे हैं, वैसे जीना चाहते हैं।

यह तो पहला सूत्र है। इसलिए मैंने कहा, यह बात पहले समझ लेना जरूरी है। हिप्पीइज्म जैसी चीज नहीं है, हिप्पीज हैं। हिप्पीवाद नहीं है, हिप्पी जरूर हैं।

दूसरी बात ध्यान में लेने जैसी है और वह यह है कि हिप्पियों की ऐसी धारणा है कि न केवल आदमी की तरह जीएं, बल्कि सहज आदमी की तरह जीएं।

हजारों साल की सभ्यता ने आदमी को असहज बनाया है, जैसा वह नहीं है वैसा बनाया है। हजारों साल की सभ्यता, संस्कार, व्यवस्था ने आदमी को कृत्रिम और झूठा बनाने की कोशिश की है। उसके हजार चेहरे बना दिए हैं। मैंने सुना है कि अगर एक कमरे में मैं और आप दो जन मिलें, तो वहां दो जन नहीं होंगे, वहां कम से कम छह जन होंगे। एक मैं।। जैसा मैं हूं; एक मैं।। जैसा कि मैं सोचता हूं कि मैं हूं; और एक मैं।। जैसा कि आप मुझे समझते हैं कि मैं हूं। और तीन आप और तीन मैं। उस कमरे में, जहां दो आदमी मिलते हैं, कम से कम छह आदमी मिलते हैं। छह कम से कम, मिनिमम। हजार मिल सकते हैं। क्योंकि हमारे हजार चेहरे हैं, मुखौटे हैं।

हर आदमी कुछ है और कुछ दिखला रहा है। कुछ है, कुछ बन रहा है और कुछ और ही दिखाई पड़ रहा है। और फिर न मालूम कितने चेहरे।। जैसे दर्पण के आगे दर्पण, और दर्पण के आगे दर्पण, और एक-दूसरे के प्रतिबिंब, और हजार-हजार प्रतिबिंब हो गए हैं। इन प्रतिबिंबों की भीड़ में पता लगाना ही मुश्किल है कि कौन हैं आप? तय करना ही मुश्किल है कि कौन हैं आप?

पत्नी के सामने आपका चेहरा दूसरा होता है। बेटे के सामने दूसरा हो जाता है। नौकर के सामने एक होता है, मालिक के सामने एक हो जाता है। जब आप मालिक के सामने खड़े होते हैं, तो जो पूंछ आपके पास नहीं है,

वह हिलती रहती है। और जब आप नौकर के पास खड़े होते हैं, तब जो पूंछ उसके पास नहीं है, आप गौर से देखते रहते हैं कि वह हिला रहा है या नहीं हिला रहा है।

हिप्पियों की धारणा मुझे प्रीतिकर मालूम पड़ती है। वे कहते हैं कि हम सहज आदमियों की तरह जीएंगे।। जैसे हम हैं। धोखा न देंगे। प्रवंचना, पाखंड, डिसेप्शन खड़ा न करेंगे। ठीक है, तकलीफ होगी तो तकलीफ झेलेंगे। लेकिन जैसे हम हैं, वैसे ही रहेंगे। अगर हिप्पी को लगता है कि वह किसी से कहे कि मुझे आप पर क्रोध आ रहा है और गाली देने का मन होता है, तो वह आपसे आकर कहेगा पास में बैठ कर कि मुझे आप पर बहुत क्रोध आ रहा है और मैं आपको दो गाली देना चाहता हूं।

मैं समझता हूं कि यह बड़ा मानवीय गुण है। और वह क्षमा मांगने नहीं आएगा पीछे, जब तक उसे लगे न। क्योंकि वह कहेगा, गाली देने का मेरा मन था, मैंने गाली दी; और अब जो भी फल हो उसे लेने के लिए मैं तैयार हूं। लेकिन गाली भीतर, ऊपर मुस्कुराहट, इस बात को वह इनकार कर रहा है।

लेकिन हमारी स्थिति यह है कि भीतर कुछ है, बाहर कुछ। भीतर एक नरक छिपाए हुए हैं हम, बाहर हम कुछ और हो गए हैं। एक-एक आदमी एक जीता-जागता झूठ है।

हिप्पी का दूसरा सूत्र यह है कि हम जैसे हैं, वैसे हैं। हम कुछ भी रुकावट न करेंगे, छिपावट न करेंगे।

मेरे एक मित्र हिप्पियों के एक छोटे से गांव में जाकर कुछ दिन तक रहे, तो मुझसे बोले कि बहुत बेचैनी होती है वहां। क्योंकि वहां सारे मुखौटे उखड़ जाते हैं। वहां बजाय एक युवक एक युवती के पास आकर कविताएं कहे, प्रेम की और बातें करे हजार तरह की, वह उससे सीधा ही आकर निवेदन कर देगा कि मैं आपको भोगना चाहता हूं। वह कहेगा कि इतने सारे जाल के पीछे इरादा तो वही है, तो उस इरादे को हम सीधा कह देते हैं। उस इरादे के लिए इतने जाल बनाने की कोई जरूरत नहीं है। वह कह सकता है एक लड़की को जाकर कि मैं तुम्हारे साथ बिस्तर पर सोना चाहता हूं।

बहुत घबराने वाली बात लगेगी!

लेकिन सारी बातचीत और सारी कविता और सारे संगीत और सारी प्रेम-चर्चा के बाद यही घटना अगर घटने वाली है, तो हिप्पी कहता है कि इसे सीधा ही निवेदन कर देना उचित है। किसी को धोखा तो न हो! वह लड़की अगर न चाहती हो सोना, तो कह तो सकती है कि क्षमा करो।

एक जाल सभ्यता ने खड़ा किया है, जिसने आदमी को बिल्कुल ही झूठी इकाई बना दिया है।

अब एक पति है, वह अपनी पत्नी से रोज कहे जा रहा है कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। और भीतर जानता है कि यह मैं क्यों कह रहा हूं। एक पत्नी है, वह अपने पति से रोज कहे जा रही है कि मैं तुम्हारे बिना एक क्षण नहीं जी सकती। और उसी पति के साथ एक क्षण जीना मुश्किल हुआ जा रहा है। बाप बेटे से कुछ कह रहा है। बाप बेटे से कह रहा है कि मैं तुम्हें इसलिए पढ़ा रहा हूं कि मैं तुझे बहुत प्रेम करता हूं। और वह पढ़ा इसलिए रहा है कि बाप अपढ़ रह गया है। और उसके अहंकार की चोट घाव बन गई है। वह अपने बेटे को पढ़ा कर अपने अहंकार की पूर्ति कर लेना चाहता है। बेटे के कंधे पर रख कर अहंकार की बंदूक चलाना चाह रहा है। लेकिन वह कह यह रहा है कि मैं तुझे प्रेम करता हूं इसलिए पढ़ा रहा हूं! बाप नहीं पहुंच पाया मिनिस्टरी तक, वह बेटे को पहुंचाना चाहता है। पर वह कहता है, बेटे को मैं बहुत प्रेम करता हूं इसलिए। लेकिन उसे पता नहीं है कि बेटे को मिनिस्टरी तक पहुंचाना बेटे को नरक तक पहुंचा देना है। अगर प्रेम है तो कम से कम बाप एक बात तो न चाहेगा कि बेटा राजनीतिज्ञ हो जाए।

सब माताएं कह रही हैं कि बेटों से प्रेम करती हैं, लेकिन प्रेम का कुछ पता नहीं। सब बाप कह रहे हैं कि बेटों से प्रेम करते हैं! सब पति कह रहे हैं, सब पत्नियां कह रही हैं! सारी पृथ्वी पर साढ़े तीन अरब आदमी एक-दूसरे से कह रहे हैं कि हम तुम्हें प्रेम करते हैं और हर दस वर्ष में युद्ध की जरूरत पड़ती है जिसमें दस-पांच करोड़ लोगों को मारना पड़ता है! और रोज कहीं वियतनाम, कहीं कोरिया, कहीं कश्मीर में युद्ध जारी है। सारी दुनिया प्रेम कर रही है, लेकिन प्रेम का कोई विस्फोट कभी नहीं होता है! सारी दुनिया प्रेम कर रही है और जब भी विस्फोट होता है तो घृणा का होता है।

हिप्पी कहता है, जरूर हमारा प्रेम कहीं धोखे का है। कर रहे हैं घृणा, कह रहे हैं प्रेम।

मैं एक स्त्री को कहता हूं कि मैं तुझे प्रेम करता हूं और मेरी स्त्री जरा पड़ोस के आदमी की तरफ गौर से देख ले तो सारा प्रेम विदा हो गया और तलवार खिंच गई। कैसा प्रेम है! अगर मैं इस स्त्री को प्रेम करता हूं तो ईर्ष्यालु नहीं हो सकता। प्रेम में ईर्ष्या की कहां जगह है? लेकिन जिनको भी हम प्रेम करते हैं, वे सिर्फ एक-दूसरे के पहरेदार बन जाते हैं, और कुछ भी नहीं; और एक-दूसरे के लिए ईर्ष्या का आधार खोज लेते हैं; जलते हैं, जलाते हैं, परेशान करते हैं।

हिप्पी यह कह रहा है कि बहुत हो चुकी यह बेईमानी। अब हम तो जैसे हैं, वैसे हैं। अगर प्रेम है तो कह देंगे कि प्रेम है और जिस दिन प्रेम चुक जाएगा उस दिन निवेदन कर देंगे कि प्रेम चुक गया। अब झूठी बातों में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है, मैं जाता हूं।

लेकिन पुराने प्रेम की धारणा कहती है कि प्रेम होता है तो फिर कभी नहीं मिटता, शाश्वत होता है।

हिप्पी कहता है, होता होगा। अगर होगा तो कह दूंगा कि शाश्वत है, टिका है। नहीं होगा तो कह दूंगा कि नहीं है।

एक जाल है जो सभ्यता ने विकसित किया था। उस जाल में आदमी की गर्दन ऐसे फंस गई है, जैसे फांसी लग गई हो। उस जाल से बगावत है हिप्पी की।

दूसरा सूत्र है हिप्पी काः सहज जीवन। जैसे हैं, हैं।

लेकिन सहज होना बहुत कठिन बात है। सहज होना सच में ही बहुत कठिन बात है, क्योंकि हम इतने असहज हो गए हैं और इतनी हमने यात्रा कर ली है अभिनय की, कि वहां लौट जाना जहां हमारी सच्चाई प्रकट हो जाए, बहुत मुश्किल है।

डाक्टर पर्ल्स एक मनोवैज्ञानिक है, जो हिप्पियों का गुरु कहा जा सकता है। एक महिला गई थी वहां। मैंने उससे कहा था कि जरूर उस पहाड़ी पर हो आना, दो-चार दिन रुक आना। तो जब वह पर्ल्स के पास गई और वहां का सारा हिसाब देखा, वह तो बहुत घबड़ा गई। बहुत घबड़ा गई, क्योंकि वहां सहज जीवन सूत्र है। सारे लोग बैठे हैं और एक आदमी नंगा चला आएगा हॉल में और आकर बैठ जाएगा। अगर उसको नंगा होना ठीक लग रहा है तो यह उसकी मर्जी है। इसमें किसी को कुछ लेना-देना नहीं है। न कोई हॉल में चीखेगा, न कोई चिल्लाएगा, न कोई गौर से देखेगा। उसे जैसा ठीक लग रहा है, उसे वैसा करने देना है।

और जो लोग पर्ल्स के पास महीने भर रह आते हैं, उनकी जिंदगी में कुछ नये फूल खिल जाते हैं। क्योंकि पहली दफा वे हलके, पक्षियों की तरह जी पाते हैं।। पौधों की तरह, या जैसे आकाश में कभी चील को उड़ते देखा हो।। पंख भी नहीं चलाती, पंख भी बंद हो जाते हैं, बस हवा में तैरती रहती है। उस पहाड़ी पर पर्ल्स के पास भी व्यक्ति हवा में तैर रहे हैं। एक आदमी बाहर नाच रहा है। कोई गीत गा रहा है तो गीत गा रहा है। कोई रो रहा है तो रो रहा है। कोई रुकावट नहीं है।

लेकिन हमने तो आदमी को सब तरह से रोक रखा है। बच्चे को निर्देश देने से शुरू हो जाती है कहानी। हमारी सारी शिक्षा "डू नाट" से शुरू हो जाती है। और हर बच्चे के दिमाग में हम ज्यादा से ज्यादा "यह मत करो", थोपते चले जाते हैं। अंततः करने की सारी क्षमता, सृजन की सारी क्षमता, "न करने" के इस जाल में लुप्त हो जाती है। या तो वह आदमी चोरी से शुरू कर देता है जो-जो हमने रोका था कि मत करो। और या फिर भीतर परेशानी में पड़ जाता है। दो ही रास्ते हैंः या तो पाखंडी हो जाए, या पागल हो जाए।

अगर भीतर लड़ा और अगर सिंसियर होगा, ईमानदार होगा, तो पागल हो जाएगा। अगर होशियार हुआ, चालाक हुआ, कनिंग हुआ, तो पाखंडी हो जाएगा। एक दरवाजा मकान के पीछे से बना लेगा, जहां से करने की दुनिया रहेगी, एक दरवाजा बाहर का रहेगा जहां "न करने" के सारे टेन कमांडमेंट्स लिखे हुए हैं। वहां वह सदा ऐसा खड़ा होगा कि यह मैं नहीं करता हूं। और करने की अलग दुनिया बना लेगा।

मनुष्य को खंडित, स्कीजोफ्रेनिक बनाने में, मनुष्य के मन को खंड-खंड करने में सभ्यता की "न करने" की शिक्षा ने बड़ा काम किया है।

हिप्पी कह रहा है कि जो हमें करना है, वह हम करेंगे। और उसके लिए जो भी हमें भोगना है, हम भोग लेंगे। लेकिन एक बात हम न करेंगे कि करें कुछ और दिखाएं कुछ।

यह बड़ी गहरी बगावत है।

हालांकि सदा से साधु-संतों ने कहा था कि बाहर और भीतर एक जैसा होना चाहिए। हिप्पी भी यही कहते हैं। लेकिन एक बुनियादी फर्क है।

साधु-संत कहते हैं कि बाहर और भीतर एक होना चाहिए, तब उनका मतलब हैः बाहर जैसे हो वैसे ही भीतर होना चाहिए। हिप्पी जब कहता है कि बाहर-भीतर एक होना चाहिए, तो वह कहता है कि भीतर जैसे हो वैसे ही बाहर भी होना चाहिए। इन दोनों में फर्क है।

साधु-संत जब कहते हैं कि बाहर जैसे हो वैसे ही भीतर होना चाहिए, तो वे कहते हैं कि वह भीतर का दरवाजा बंद करो। हिप्पी जब कहता है कि बाहर-भीतर एक होना चाहिए, तो वह कहता है, बाहर जो दस निषेध आज्ञाओं, टेन कमांडमेंट्स की तख्ती लगी है, उसको उखाड़ कर फेंक दो। और जैसे भी हो, वैसे हो जाओ। अगर चोर हो तो चोर, अगर बेईमान हो तो बेईमान, क्रोधी हो तो क्रोधी। बड़ा खतरा तो यह है कि क्रोधी अभिनय कर रहा है अक्रोध का, हिंसक अभिनय कर रहा है अहिंसक का, कामी अभिनय कर रहा है ब्रह्मचर्य का। और पुरानी सारी संस्कृतियां अभिनय को बड़ी कीमत देती हैं और कुशल अभिनेता की बड़ी पूजा करती हैं।

हिप्पी कह रहा है कि हम अभिनय की पूजा नहीं करते, हम जीवन के पूजक हैं। हिप्पी यह कह रहा है कि झूठे ब्रह्मचर्य से सच्चा यौन भी अर्थपूर्ण है। झूठे ब्रह्मचर्य में भी वह सुगंध नहीं है, जो सच्चे यौन में हो सकती है। सच्चे ब्रह्मचर्य की तो बात ही दूसरी है। उसकी सुगंध का हमें क्या पता है? लेकिन सच्चा यौन न हो तो सच्चे ब्रह्मचर्य की कोई संभावना ही नहीं है। अभी हिप्पी यह नहीं कह रहे हैं; लेकिन शीघ्र ही जानेंगे तो कहेंगे। अभी तो वे यही कह रहे हैं कि जो जैसा है, वैसा प्रकट करेंगे। हम अगर पशु हैं तो स्वीकृत है कि हम पशु हैं और हम पशु की भांति ही जीएंगे।

तीसरी बात, जब मैं सोचता हूं तो मुझे लगता है कि अगर खोज की जाए तो ईसाइयों की कहानी के अदम और ईव हिप्पियों के आदि पुरुष कहे जाने चाहिए। क्योंकि अदम और ईव को ईश्वर ने कहा था कि तुम ज्ञान के वृक्ष का फल मत चखना। उन्होंने बगावत कर दी और जिस वृक्ष का फल नहीं चखने को कहा था, उसी का फल चख लिया और वे ईडन के बगीचे से बहिष्कृत कर दिए गए।

तीसरा सूत्र है हिप्पी काः विद्रोह, इनकार का साहस। एक तो कनफरमिस्ट की जिंदगी है, हां-हुजूर की, यस सर की। वह जो भी कह रहा है, हां कह रहा है। वह सदा हां-हुजूर कहने के लिए तैयार है। उसने चाहे बात भी ठीक से नहीं सुनी है, लेकिन हां-हुजूर कहे जा रहा है। उसे पता भी नहीं कि वह किस चीज में हां भर रहा है, लेकिन वह हां भरे चला जा रहा है। एक गुर, एक सीक्रेट उसे पता चल गया है कि जिंदगी में जीना हो तो सब चीज में हां कहे चले जाओ।

हिप्पी कह रहा है, जब तक हम समाज की हर चीज में हां कह रहे हैं, तब तक व्यक्तित्व का जन्म नहीं होता। व्यक्तित्व का जन्म होता है नो सेइंग से, न कहना शुरू करने से।

असल में, मनुष्य की आत्मा ही तब पैदा होती है, जब कोई आदमी नो, "नहीं" कहने की हिम्मत जुटा लेता है।। जब कोई कह सकता है "नहीं", चाहे दांव पर पूरी जिंदगी लग जाती हो। और जब एक बार आदमी "नहीं" कहना शुरू कर दे, "नहीं" कहना सीख ले, तब पहली दफा उसके भीतर इस "नहीं" कहने के कारण, डिनायल के कारण व्यक्तित्व का जन्म शुरू होता है। यह "न" की जो रेखा है, उसको व्यक्ति बनाती है। "हां" की रेखा उसको समूह का अंग बना देती है।

इसलिए समूह सदा से आज्ञाकारिता पर जोर देता है। बाप अपने गोबर-गणेश बेटे को कहेगा कि आज्ञाकारी है। क्योंकि गोबर-गणेश बेटे से "न" निकलती ही नहीं। असल में, "न" निकलने के लिए थोड़ी बुद्धि चाहिए। "हां" निकलने के लिए बुद्धि की कोई जरूरत नहीं है। "हां" तो कंप्यूटराइज्ड है, वह तो बुद्धि जितनी कम होगी उतनी जल्दी निकलती है। "न" तो सोच-विचार मांगता है। "न" तो तर्क, आर्ग्युमेंट मांगता है। "न" जब कहेंगे तो पच्चीस बार सोचना पड़ता है। क्योंकि "न" कहने पर बात खतम नहीं होती, शुरू होती है। "हां" कहने पर बात खतम हो जाती है, शुरू नहीं होती।

बुद्धिमान बेटा होगा तो बाप को ठीक नहीं लगेगा, क्योंकि बुद्धिमान बेटा बहुत बार बाप को भी निर्बुद्धि सिद्ध कर देगा। बहुत क्षणों में बाप को भी लगेगा कि मैं भी निर्बुद्धि मालूम पड़ रहा हूं। बड़ी चोट है अहंकार को। वह कठिनाई में डाल देगी। इसलिए हजारों साल से बाप, पीढ़ी, समाज "हां" कहने की आदत डलवा रहा है। उसको वह अनुशासन कहे, आज्ञाकारिता कहे, और कुछ नाम दे, लेकिन प्रयोजन एक है, और वह यह है कि विद्रोह नहीं होना चाहिए, बगावती चित्त नहीं होना चाहिए।

हिप्पियों का तीसरा सूत्र है कि अगर चित्त ही चाहिए हो तो सिर्फ बगावती ही हो सकता है। अगर चित्त ही न चाहिए हो, तब बात दूसरी। अगर आत्मा चाहिए हो तो वह रिबेलियस ही होगी। अगर आत्मा ही न चाहिए हो, तो बात दूसरी। कनफरमिस्ट के पास कोई आत्मा नहीं होती।

यह ऐसा ही है, जैसे एक पत्थर पड़ा है सड़क के किनारे। सड़क के किनारे पड़ा हुआ पत्थर मूर्ति नहीं बनता है। मूर्ति तो तब बनता है, जब छैनी और हथौड़ी उस पर चोट करती और काटती है। जब कोई आदमी "न" कहता है और बगावत करता है, तो सारे प्राणों पर छैनी और हथौड़ियां पड़ने लगती हैं। सब तरफ से मूर्ति निखरनी शुरू होती है। लेकिन जब कोई पत्थर कह देता है "हां", तो छैनी-हथौड़ी नहीं होती वहां पैदा। वह फिर पत्थर ही रह जाता है सड़क के किनारे पड़ा हुआ।

लेकिन समस्त सत्ताधिकारियों को।। चाहे वे पिता हों, चाहे शिक्षक हों, चाहे मां-बाप हों, चाहे बड़े भाई हों, चाहे राजनेता हों।। समस्त सत्ताधिकारियों को हां-हुजूरों की जमात चाहिए।

हिप्पी कहते हैं, इससे हम इनकार करेंगे। हमें जो ठीक लगेगा, वैसा हम जीएंगे।

निश्चित ही तकलीफ है। और इसलिए हिप्पी भी एक तरह का संन्यासी है। असल में, संन्यासी कभी एक दिन एक तरह का हिप्पी ही था, उसने भी इनकार किया था, अ-नागरिक था, समाज छोड़ कर भाग रहा था। जैसे महावीर नग्न खड़े हो गए। महावीर जिस दिन बिहार में नग्न खड़े हुए होंगे, उस दिन मैं नहीं समझता कि पुरानी जमात ने स्वीकार किया हो इस आदमी को।

यहां तक बात चली कि अब महावीर को मानने वालों के दो हिस्से हैं। एक तो कहता है कि वस्त्र पहनते थे, लेकिन वे अदृश्य वस्त्र थे, दिखाई नहीं पड़ते थे! यह पुराना कनफरमिस्ट जो होगा, उसने आखिर महावीर को भी वस्त्र पहना दिए, लेकिन ऐसे वस्त्र जो दिखाई नहीं पड़ते! इसलिए कुछ लोगों को भूल हुई कि वे नंगे थे। वे नंगे नहीं थे, वस्त्र पहनते थे।

जीसस, बुद्ध या महावीर जैसे लोग सभी बगावती हैं। असल में, मनुष्य-जाति के इतिहास में जिनके नाम भी गौरव से लिए जा सकें, वे सब बगावती हैं। और कृष्ण से बड़ा महा-हिप्पी खोजना तो असंभव ही है। इसलिए कृष्ण को मानने वाला कृष्ण को काट-काट कर स्वीकार करता है।

अगर सूरदास के पास जाएं तो वे कृष्ण को बच्चे से ऊपर बढ़ने ही नहीं देते। क्योंकि बच्चे के ऊपर बढ़ कर वह जो उपद्रव करेगा, वह सूरदास की पकड़ के बाहर है। तो बाल कृष्ण को ही वे स्वीकार कर सकते हैं, छोटे बच्चे को! तब उसकी चोरी भी निर्दोष हो जाती है। लेकिन सूरदास सोच ही नहीं सकते कि उनका कृष्ण रास रचा रहा है, गोपियों से प्रेम कर रहा है और नहाती हुई स्त्रियों के कपड़े लेकर वृक्ष पर चढ़ गया है।

फिर पुराना कनफरमिस्ट जब आएगा व्याख्या करने, तो वह कहेगा, वे गोपियां नहीं हैं। गोपी का मतलब होता है इंद्रियां। तो इंद्रियों को निरावरण करके वे वृक्ष पर चढ़ गए हैं, किसी स्त्री को निरावरण करके नहीं। कनफरमिस्ट बार-बार लौट कर विद्रोही को भी अपने कैंप में खड़ा कर लेता है।

इसलिए जीसस को सूली देनी पड़ती है, लेकिन दो-चार सौ वर्ष बाद जीसस भी उसी कतार में सम्मिलित हो जाते हैं। अब कभी हमने नहीं सोचा कि जीसस को सूली देने का कारण क्या था?

जीसस को सूली देने के कारण बड़े अजीब थे। बड़े से बड़े कारणों में से एक तो यह था कि वे गैर-पारंपरिक, नॉन-कनफरमिस्ट थे। वे अंध-स्वीकारी नहीं थे। वे इनकार करने वाले व्यक्ति थे। लोगों ने कहा, वह मेग्दलीन वेश्या है, उसके घर में मत ठहरो। तो जीसस ने कहा, मैं भी अगर वेश्या के घर में नहीं ठहरूंगा तो फिर कौन ठहरेगा?

इसलिए जान कर हैरानी होगी कि जिस दिन जीसस को सूली हुई, उस सूली के पास न तो जीसस का कोई अनुयायी था, न कोई शिष्य था। उस सूली के पास जीसस के बुद्धिमान शिष्यों में से कोई भी न था। जीसस के पास सिर्फ दो औरतें थीं। एक तो वही वेश्या थी, जो उनकी फांसी का भी एक कारण थी। सूली से जिसने लाश को उतारा है, वह मेग्दलीन थी।

तो जीसस को स्वीकार करना, उस समाज के लिए असंभव रहा होगा। इसलिए जीसस को जब सूली दी तो दो चोरों के बीच में सूली दी। दो तरफ दो चोर लटकाए, बीच में जीसस को लटकाया। और जनता में से लोगों ने यह भी चिल्ला कर कहा कि इन चोरों को क्यों मार रहे हो, लेकिन किसी ने यह न कहा कि जीसस को क्यों मार रहे हो!

यह आदमी फिर करोड़ों लोगों का मसीहा हो गया! फिर हम व्याख्या कर लेते हैं। फिर हम इंतजाम कर लेते हैं। फिर हम सब साफ-सुथरा कर लेते हैं।

बगावत आत्मा का जन्म है।

हिप्पी विद्रोह को जी रहा है।

इस संबंध में एक बात और मुझे कह देने जैसी है कि हिप्पी क्रांतिकारी, रेवोल्यूशनरी नहीं है; विद्रोही, रिबेलियस है। क्रांतिकारी नहीं है; बगावती है, विद्रोही है। और क्रांति और बगावत के फर्क को थोड़ा समझ लेना उपयोगी है। असल में, हजारों साल में कितनी ही क्रांतियां हो चुकीं, लेकिन सब क्रांतियां असफल हो गईं। हिप्पी का कहना है, सब क्रांतियां असफल हो गईं, क्योंकि क्रांति सफल हो ही नहीं सकती है। सफल हो सकता है केवल अनियोजित विद्रोह।

उन्नीस सौ सत्रह की क्रांति असफल हो गई, क्योंकि एक .जार को मारा और दूसरा .जार उसकी जगह पर बैठ गया। सिर्फ नाम बदल गया है। स्टैलिन हो गया उसका नाम। वह दूसरा .जार है। किसी .जार ने इतने आदमी न मारे थे। स्टैलिन ने अपनी जिंदगी में एक करोड़ लोगों की हत्या की। किसी .जार ने अथवा सब .जारों ने मिल कर भी इतने आदमी नहीं मारे थे!

तो बड़ी कठिन बात है कि क्रांति भी होती है तो फिर उसके ऊपर एक .जार बैठ जाता है। नाम बदल जाता है, झंडा बदल जाता है, बैठने वाले नहीं बदलते। वही चंगीज, वही तैमूर फिर वापस बैठ जाता है।

हिटलर सोशलिस्ट था। उसकी पार्टी का नाम थाः नेशनलिस्ट सोशलिस्ट पार्टी, राष्ट्रीयवादी समाजवादी दल! किसने सोचा था कि हिटलर यह करेगा जो उसने किया।

क्रांतियां जब सफल होती हैं, तब पता चलता है कि सब व्यर्थ हो गया। जब तक सफल नहीं होतीं, तब तक तो लगता है बहुत कुछ हो रहा है। फिर एकदम व्यर्थ हो जाती हैं।

हमारे ही देश में क्रांति हुई और उन्नीस सौ सैंतालीस के बाद हमने सोचा आजादी आ जाएगी। फिर उन्नीस सौ सैंतालीस के बाद भी हम सोच ही रहे हैं कि बाइस साल हो गए, अभी तक आई नहीं? कब आएगी? हां, एक फर्क हो गया है। सफेद चमड़ी के मालिक बदल गए, उनकी जगह काली चमड़ी के लोग बैठ गए। काली चमड़ी वालों को भी लगा कि सफेद चमड़ी होनी चाहिए। चमड़ी तो सफेद करना बहुत मुश्किल थी, कपड़े उन्होंने सफेद कर लिए। बस इतना फर्क हो गया। अंग्रेजों ने जितनी गोलियां नहीं चलाईं इस देश में, इतनी जिनको हम अपने ही आदमी कहें, उन्होंने चलाईं। कभी अगर इतिहास पूछेगा तो वह पूछ सकेगा कि गुलाम कौम पर इतनी गोलियां नहीं चलानी पड़ीं, आजाद होने के बाद इतनी गोलियां अपने ही लोगों पर चलानी पड़ीं, यह बात क्या है? हो क्या गया है?

कोई क्रांति सफल नहीं हो पाई। न होने का कारण है। एक तो यह कि क्रांति के उपकरण बड़े गैर-क्रांतिकारी होते हैं, बड़े दकियानूसी होते हैं। दूसरा यह कि क्रांति वस्तुतः प्रतिक्रियात्मक, रिएक्शनरी होती है। उसके प्राण उसी में होते हैं, जिससे कि वह लड़ती है। फिर इसलिए शत्रु के मरते ही उसके होने का भी कोई कारण नहीं रह जाता है। क्रांति की सफलता ही मृत्यु बन जाती है।

हिप्पी का खयाल यह है कि क्रांति इसलिए भी सफल नहीं होती कि क्रांति पुनः समाज को ही केंद्र मान कर चलती है। वह कहती है, समाज बदले।

विद्रोह व्यक्ति को केंद्र मानता है, क्रांति समाज को केंद्र मानती है।

क्रांति कहती है, समाज बदले।

हिप्पी कहता है, भाड़ में जाए तुम्हारा पूरा समाज, मैं बदलता हूं। मैं तुम्हारे समाज के लिए नहीं रुकूंगा। मैं अकेला बदल जाता हूं। इसलिए हिप्पी व्यक्तिगत विद्रोही है।

और मेरी समझ में यह बात भी बड़ी कीमती है। क्योंकि सब क्रांतियां असफल हो गईं, फिर भी हम नई क्रांतियों की बात सोचते चले जाते हैं। असल में, क्रांति करने में जो इंतजाम करना पड़ता है, वह क्रांति की ही हत्या कर देता है।

पहले तो क्रांति करने के लिए संगठन बनाना पड़ता है। और जैसे ही संगठन बनता है तो संगठन के अपने नियम हैं। वह संगठन किसी का भी हो।। जब संगठन बनता है और कोई विचार इंस्टीट्यूशन बनता है, तब सब रोग वापस लौट आते हैं। जो रोग पुराने संगठन में थे, वे पुराने संगठन की वजह से न थे। संगठन के कारण कुछ रोग अनिवार्य हैं। संगठन होगा तो कोई पद पर होगा, मालिक होगा; कोई अधिनायक, डिक्टेटर होगा, कोई आज्ञा चलाएगा। संगठन होगा तो कुछ थोड़े से लोग शक्तिशाली हो जाएंगे। संगठन होगा तो धन इकट्ठा होगा। संगठन होगा तो भीड़ इकट्ठी होगी। और ध्यान रहे, भीड़ सदा परंपरानुगत, कनफरमिस्ट है। भीड़ सदा हां-हुजूर है।

हिप्पी यह कहता है कि अब क्रांति से नहीं होगा, अब तो विद्रोह करना पड़ेगा।

विद्रोह का मतलब है कि जिसे लगता है गलत है, वह तत्काल गलत से विदा हो जाए।

उनका एक शब्द हैः ड्रापिंग आउट। वे कहते हैं, रास्ते पर भीड़ चली जा रही है, हम कोई आग्रह नहीं करते कि सारी भीड़ को बदलेंगे। हमें लगता है कि गलत है यह भीड़, गलत है यह रास्ता, वी जस्ट ड्राप आउट, हम रास्ता छोड़ कर नीचे उतर जाते हैं। हम कहते हैं, नमस्कार, तुम जाओ!

यह धारणा बड़ी नई है, व्यक्तिगत विद्रोह की। बड़ी सबल भी है, क्योंकि शायद किसी क्रांतिकारी ने इतना दांव नहीं लगाया। वे कहते हैं, सब बदलेंगे। तो एक कम्युनिस्ट भी करोड़पति हो सकता है। कोई कठिनाई नहीं है। वह कहता है, जब समाज बदलेगा, जब सबकी संपत्ति बंटेगी, तो मेरी भी बंट जाएगी। लेकिन जब तक सबकी नहीं बंटी, तब तक मुझे क्यों बांटने की फिकर करना है!

लेकिन हिप्पी कहता है, संपत्ति अगर रोग है, तो मैं तो बाहर हुआ जाता हूं। फिर जब समाज बदलेगा, बदलेगा। लेकिन फिर तुम मुझे जिम्मेवार न ठहरा सकोगे।

अगर वियतनाम में गलत युद्ध हो रहा है, तो क्रांतिकारी कहेगा कि आंदोलन चलाओ, हड़ताल करो, घेराव करो। हिप्पी कहता है, सब घेराव करो, सब हड़ताल करो, सब आंदोलन चलाओ। लेकिन चलाने में हिंसा चाहिए, घेराव करने में हिंसा चाहिए। और अगर जीत गए तुम किसी दिन, तो जीतते-जीतते इतने हिंसक हो जाओगे कि वियतनाम की जगह दूसरा वियतनाम तुम चला दोगे।

हिप्पी कहता है कि हमको लगता है कि गलत है वियतनाम, हम युद्ध पर जाने से इनकार करते हैं। तुम हमें गोली मार दो, हम ये बैठे हैं, हम नहीं जाएंगे।

व्यक्तिगत विद्रोह! पहली दफा निपट एक व्यक्ति साहस कर रहा है कि सारा समाज गलत लगता है तो हम बाहर हो जाएं। वह यह नहीं कह रहा है कि समाज के विवाह के नियम बदलेंगे, तब हम सुधरेंगे। वह यह कह रहा है, हमने बदल दिए हैं नियम अपने लिए। अब जो तकलीफ होगी, वह हम सह लेंगे।

अब हिप्पी ऐसी लड़कियों के साथ रह रहा है जिनसे वह विवाहित नहीं है। हिप्पी लड़कियां ऐसे युवकों के साथ रह रही हैं जिनसे उनका कोई विवाह नहीं हुआ। क्योंकि हिप्पी कहता है कि विवाह जो है, वह लीगलाइज्ड प्रॉस्टीट्यूशन है। समाज के द्वारा आदेशित, लाइसेंस्ड वेश्यागिरी है।

समाज लाइसेंस देता है दो आदमियों के लिए कि अब हम तुम्हारे बीच में बाधा नहीं बनेंगे। लाइसेंस देने की कई तरकीबें हैं। कहीं सात चक्कर लगा कर लाइसेंस देता है, कहीं माला पहनवा कर देता है, कहीं दफ्तर में रजिस्टर पर दस्तखत करवा कर देता है। वे विधियां तो गैर-महत्वपूर्ण हैं, नॉन-एसेंशियल हैं। महत्वपूर्ण यह है कि समाज एक लाइसेंस देता है कि अब इन दो आदमियों के बीच जो यौन संबंध होंगे, उनमें हम बाधा न देंगे।

हिप्पी यह कहता है कि मेरा प्रेम मेरी निजी बात है। और जिससे मेरा प्रेम है, यह दो व्यक्तियों की बात है, इसमें हमें समाज से स्वीकृति का सवाल कहां है? इसमें पूरे समाज का संबंध कहां है? यह पूरा समाज हमारे प्रेम तक पर भी काबू रखने की कोशिश क्यों करता है? यह हमें स्वतंत्र व्यक्ति बिल्कुल नहीं रहने देना चाहता। प्रेम पर भी इसका काबू होना चाहिए!

लेकिन वह तकलीफें झेल रहा है। क्योंकि बच्चा हो जाएगा हिप्पी लड़की को, स्कूल में भरती करने जाएगी, तो वहां शिक्षक पूछता है, इसके बाप का नाम? तो हिप्पी लड़की लिखवाती है कि नहीं, इसका कोई बाप नहीं है, मां ही है।

बड़ी तकलीफ है! जिस गांव में एक लड़की यह कह सकती हो कि इसका बाप नहीं है, सिर्फ मां है, आप अगर बिना बाप के नाम लिख सकते हों तो ठीक।

मुझे उपनिषद की एक कहानी याद आती है, सत्यकाम जाबाल की। वक्त बदल जाता है इसलिए हम कहानी को बढ़िया रूप दे देते हैं। सत्यकाम गुरु के आश्रम गया, तो पूछा, तेरे पिता का नाम क्या है? तो वह वापस लौटा, उसने अपनी मां को कहा कि मेरे पिता का नाम क्या है? तो उसकी मां ने कहा, जब मैं युवा थी और तेरा जन्म हुआ, तो बहुत लोगों की मैं सेवा करती थी। कौन तेरा पिता है, मुझे पता नहीं। तो तू जा वापस। अपने गुरु को कह देना।। सत्यकाम मेरा नाम है, जाबाल मेरी मां का नाम है, इसलिए सत्यकाम जाबाल आप मुझे कह सकते हैं। और मेरी मां ने कहा है कि जब वह युवा थी तो बहुत लोगों के संपर्क में आई, पता नहीं पिता कौन है।

सत्यकाम वापस गया। उसने गुरु से कहा कि मेरी मां ने कहा है कि जब मैं युवा थी तब बहुत लोगों के संपर्क में आई, पता नहीं कि तेरा पिता कौन है। इतना ही उसने कहा कि मेरा नाम सत्यकाम है और मां का नाम जाबाल है, इसलिए आप मुझे सत्यकाम जाबाल कह सकते हैं।

मैंने तो सुना है, कोई कह रहा था कि जबलपुर जाबाल के नाम पर ही निर्मित है। पता नहीं मुझे, मुझे कोई कह रहा था, हो सकता है।

लेकिन गुरु ने कहा कि तब तुझे मैं ले लेता हूं, क्योंकि मैं मान लेता हूं कि तू निश्चित ही ब्राह्मण है। क्योंकि इतना सत्य सिर्फ ब्राह्मण ही बोल सकता है। इतना सत्य तेरी मां ने बोला कि मुझे पता नहीं, बहुत लोगों के संपर्क में आई, पता नहीं कौन पिता था। इतना सत्य सिर्फ ब्राह्मण ही बोल सकता है।

हिप्पी एक अर्थ में ब्राह्मण है। इस अर्थ में ब्राह्मण है कि जीवन का जो सत्य है, जैसा है, वह वैसा बोल रहा है, कह रहा है। ये तीन बातें।

और चौथी अंतिम बात। फिर मेरी दृष्टि क्या है हिप्पी के बाबत, वह मैं आपको कहूं।

चौथी बात। मनुष्य ने इतनी संपत्ति, इतनी सुविधा, इतनी सामग्री पैदा की है, लेकिन किसी गहरे अर्थ में मनुष्य भीतर दरिद्र हो गया है, चेतना संकुचित हो गई है। तो हिप्पी का चौथा सूत्र हैः चेतना का विस्तार, एक्सपांशन ऑफ कांशसनेस। वह यह कह रहा है कि हम अपनी चेतना को कैसे फैलाएं। तो चेतना फैलाने के लिए वह सब तरह के प्रयोग कर रहा है। गांजा, अफीम, भांग, हशीश, एल एस डी, मेस्कलीन, मारिजुआना,

योग-ध्यान, वह यह सब कर रहा है कि चेतना कैसे फैले, संकुचित चेतना का विस्तार कैसे उपलब्ध हो जाए। तो केमिकल ड्रग्स का भी उपयोग कर रहा है, एल एस डी, मेस्कलीन, जिनके द्वारा थोड़ी देर के लिए चित्त नये लोक में प्रवेश कर जाता है।

कानून विरोध में है, क्योंकि कानून तो हर नई चीज के विरोध में है। क्योंकि कानून तो बनता है कभी और युग बदल जाता है। कानून तो विरोध में है। कानून तो एल एस डी को पाप मानता है।

मैं नहीं समझ पा रहा हूं। एल एस डी और मेस्कलीन में बड़ी संभावनाएं हैं। इस बात की बहुत संभावनाएं हैं कि ये दोनों चीजें मनुष्य की चेतना को नये दर्शन कराने में सफल रूप से प्रयुक्त की जा सकती हैं। ऐसा मैं नहीं मानता हूं कि इनके द्वारा कोई समाधि को उपलब्ध हो जाएगा, लेकिन समाधि की एक झलक मिल सकती है। और झलक मिल जाए तो समाधि की प्यास पैदा हो जाती है। आज जो पश्चिम में योग और ध्यान के लिए इतना आकर्षण है, उसके बहुत गहरे में एल एस डी है। लाखों लोग एल एस डी लेकर देख रहे हैं।

जब कोई आदमी एल एस डी की एक टिकिया लेता है तो कई घंटों के लिए उसकी सारी दुनिया बदल जाती है। जैसे ब्लैक की कविता हम पढ़ें तो ऐसा लगता है कि ब्लैक कुछ ऐसे रंग जानता है, जो हम नहीं जानते। उसे फूल कुछ ऐसा दिखाई पड़ता है, जैसा हमें दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन एल एस डी लेकर हम भी वही जान पाते हैं। पत्ते-पत्ते रंगीन हो जाते हैं, फूल-फूल अदभुत हो जाता है। एक आदमी की आंख में इतनी गहराई दिखाई पड़ने लगती है, जितनी कभी नहीं दिखाई पड़ी। एक साधारण सी कुर्सी भी एक जीवंत अर्थ ले लेती है। थोड़ी देर के लिए जगत और ढंग का दिखाई पड़ने लगता है।

जैसे कि बिजली चमक जाए अंधेरी रात में, और एक सेकेंड को वृक्ष दिखाई पड़े, फूल दिखाई पड़े, रास्ता दिखाई पड़े। बिजली तो गई तो फिर अंधेरा भर गया, लेकिन अब हम वही आदमी नहीं हो सकते जो बिजली के पहले थे।

इन साइकेडेलिक ड्रग्स का, इन रासायनिक तत्वों का हिप्पी बड़े पैमाने पर प्रयोग कर रहे हैं। मेरी समझ में सोमरस इससे भिन्न बात न थी। अल्डुअस हक्सले ने तो एक किताब लिखी है। तो उसमें सन दो हजार वर्ष के बाद जो विकसित साइकेडेलिक ड्रग, रासायनिक द्रव्य होगा उसका नाम ही सोमा दिया है, सोमरस के आधार पर ही।

और एल एस डी और मेस्कलीन जिन्होंने लिया है तो पहली दफा उनको खयाल आया कि वैदिक ऋषियों को देवी-देवता एकदम जमीन पर चलते-फिरते नजर क्यों आते थे। वे हमको भी आ सकते हैं। भांग में कुछ थोड़ी सी बात है, बहुत ज्यादा नहीं, बहुत थोड़ी। लेकिन भांग के पीछे थोड़ा सा हैंग ओवर होता है। एल एस डी का कोई हैंग ओवर नहीं है। गांजे में कुछ थोड़ी बात है, लेकिन बहुत ज्यादा नहीं। हजारों साल से साधु भांग, गांजा, अफीम का उपयोग करते रहे हैं। वह अकारण नहीं है।

और इधर जितनी खोज होती है, उससे कुछ हैरानी के तथ्य सामने आते हैं। अगर एक आदमी बहुत देर तक उपवास करे, तो भी शरीर में जो फर्क होते हैं वे केमिकल हैं। अब ऊपर से देखने में लगता है कि महावीर तो गांजे के बिल्कुल खिलाफ हैं। लेकिन उपवास के बहुत पक्ष में हैं। हालांकि उपवास से भी तीस दिन भूखा रहने से शरीर में जो फर्क होंगे वे केमिकल हैं। कोई फर्क नहीं है।

प्राणायाम से भी जो फर्क होते हैं वे केमिकल हैं। अगर एक आदमी विशेष विधि से श्वास लेता है तो आक्सीजन की मात्रा के अंतर पड़ने शुरू हो जाते हैं। ज्यादा आक्सीजन कुछ तत्वों को जला देती है, कुछ तत्वों को बचा लेती है। भीतर जो फर्क होते हैं वे केमिकल हैं।

हिप्पी यह कह रहा है कि अब तक की जितनी साधना पद्धतियां हैं, वे किसी न किसी रूप में केमिकल फर्क ही ला रही हैं। तो केमिकल फर्क एक गोली से भी लाया जा सकता है।

चौथा जो हिप्पी का जोर है, जिसकी वजह से वह परेशानी में पड़ा हुआ है, वह इन ड्रग्स के कारण है। कानून इनके खिलाफ है। कानून उन्होंने बनाया था जिनको एल एस डी का कुछ भी पता नहीं था।

डाक्टर लियरी एक अदभुत आदमी हैं इस दिशा में, जिस आदमी ने इधर बहुत काम किया कि ड्रग्स कैसे मनुष्य को समाधि तक पहुंचा सकते हैं। और जिन लोगों ने एक बार इस तरह का प्रयोग किया है, वे आदमी और ही तरह के हो गए, उनकी जिंदगी और ही तरह की हो जाती है। जैसे हम जीते हैं एक तनाव में, जैसे ही कोई इस तरह के ड्रग्स लेता है तो सारा मन रिलैक्स्ड, विश्रामपूर्ण हो जाता है। जीते हैं फिर आप।। तनाव में नहीं, अभी और यहां। हिप्पीज का जो शब्द है उसके लिए, वह हैः टर्निंग ऑन। कोई एक टर्न है, मोड़ है, दरवाजा है, जो एक गोली देने से आपके लिए खुल जाता है। जैसे ड्रापिंग ऑफ, रास्ते के किनारे उतर जाना; ऐसे ही टर्निंग ऑन, जहां हम हैं वहां से कहीं और मुड़ जाना।। उस दुनिया में, उस आयाम, उस डायमेंशन में जिसका हमें कोई पता नहीं है। रासायनिक प्रयोग के द्वारा मनुष्य की चेतना विस्तीर्ण हो सकती है और सौंदर्यबोध, एस्थेटिक से भर सकती है।

इस दिशा में डाक्टर लियरी बड़े गहरे प्रयोग कर रहे हैं। छोटी-छोटी उनकी जमातें बनी हुई हैं।। जंगलों में, पहाड़ों में, गांवों के बाहर। पुलिस उनका पीछा कर रही है, उन्हें उखाड़ रही है। केवल अमेरिका में दो लाख हिप्पी हैं। और यह तो ठीक गणना की संख्या है। लेकिन बहुत से लोग जो पीरियाडिकल, सावधिक हिप्पी हो जाते हैं।। कोई दो-चार महीने के लिए।। फिर वापस दुनिया में लौट आते हैं, उनकी संख्या भी बड़ी है। बहुत से सेंटर्स हैं, जहां बैठ कर इन सबका प्रयोग चल रहा है। जहां बिल्कुल ही ठीक साइंटिफिक निरीक्षण में लोग एल एस डी और ये सारी चीजें ले रहे हैं।

अल्डुअस हक्सले ने एक किताब लिखी हैः डोर्स ऑफ परसेप्शन। उस किताब में उसने कहा है कि कबीर और नानक को जो हुआ, मैं अब जानता हूं कि क्या हुआ।

एल एस डी लेने के बाद हक्सले को लगता है कि क्या हुआ! क्योंकि जिस तरह की बातें वे कह रहे हैं कि अनहद नाद बज रहा है और अमृत की वर्षा हो रही है और आकाश में बादल ही बादल घिरे हैं और अमृत ही अमृत बरस रहा है और कबीर नाच रहे हैं। अब यह जो हम कविता में पढ़ कर समझने की कोशिश करते हैं, लेकिन न तो कभी कोई बादल दिखाई पड़ते हैं जिनमें अमृत भरा हो, न कभी अमृत बरसता दिखाई पड़ता है, न कोई अनहद नाद सुनाई पड़ता है। लेकिन एल एस डी लेने पर ऐसी ध्वनियां सुनाई पड़नी शुरू होती हैं, जो कभी नहीं सुनी गईं। और ऐसी बरखा शुरू हो जाती है, जो कभी नहीं हुई। और इतना मन हलका और नया हो जाता है, जैसा कभी न था।

चौथी बात हिप्पीज को जो नवीनतम है वह हैः एक्सपांशन ऑफ कांशसनेस थ्रू ड्रग्स, रासायनिक द्रव्यों द्वारा चेतना का विस्तार। ये चार सूत्र मैं मौलिक मानता हूं।

मेरी क्या प्रतिक्रिया है, वह मैं संक्षेप में कहूं।

हिप्पियों ने छोटी-छोटी कम्यून बना रखी हैं। वे कम्यून वैकल्पिक समाज, आल्टरनेट सोसायटी हैं। वे कहते हैं, एक समाज तुम्हारा है हां-हुजूरों का, वियतनाम में लड़ने वालों का, कश्मीर किसका है यह दावा करने वालों का। और एक हमारा है, जिनका कोई दावा नहीं है, जिनका वियतनाम में किसी से कोई संघर्ष नहीं, कश्मीर में जिनका कोई झगड़ा नहीं, राजधानियों में जाने की जिनकी कोई इच्छा नहीं। एक समाज तुम्हारा है,

जिसमें तुम कहते हो कि भविष्य में सब कुछ होगा। एक हमारा है जो कहते हैं, अभी और यहीं जो होना है वह हो। एक आल्टरनेट सोसायटी, एक वैकल्पिक समाज है हिप्पियों का। तो इस समाज से जो ऊब गए, घबड़ा गए, परेशान हो गए, वे उस समाज में प्रवेश कर जाते हैं। हिप्पी अभी और यहीं।। सदा आनंद में है। जो कहता है इसी वक्त आनंद में हूं और कल की चिंता नहीं करता।

हिप्पियों के विद्रोह के संबंध में मेरी पहली दृष्टि तो यह है।। पीछे से शुरू करूं, साइकेडेलिक ड्रग्स से।। निश्चय ही रासायनिक तत्वों के द्वारा झलक पाई जा सकती है, लेकिन सिर्फ झलक, अवस्था नहीं। महावीर या कबीर या बुद्ध के पास जो है, वह अवस्था है, झलक नहीं। लेकिन झलक भी कीमती चीज है। झलक को अवस्था समझ लेना भूल है।

तो हिप्पियों से यहां मेरा फर्क है। वे झलक को अवस्था समझ रहे हैं! झलक सिर्फ झलक है। और झलक किसी गोली पर निर्भर है। वह व्यक्ति को रूपांतरित, ट्रांसफार्म नहीं कर पाती। गोली के असर के बाद आदमी वही का वही होता है।

लेकिन बुद्ध दूसरे आदमी हैं। उस अनुभव के बाद वे दूसरे आदमी हैं। सत्य की, ब्रह्म की, आत्मा की, मोक्ष की, निर्वाण की प्रतीति के बाद आदमी दूसरा आदमी है, पहला आदमी मर गया। यह दूसरा जन्म हुआ उसका, वह द्विज हुआ। यह दूसरा ही आदमी है। यह वही आदमी नहीं है।

लेकिन ड्रग्स के द्वारा जो झलक मिलती है, वह झलक ही है, अवस्था नहीं है। हिप्पी इतना तो ठीक कहते हैं कि यह झलक कीमती है। और जिन्हें नहीं मिली उन्हें मिल जाए तो शायद वे अनुभव, अवस्था की भी तलाश करें। जैसे यहां मैं बैठा हूं। लंदन मैं नहीं गया हूं, न्यूयार्क मैं नहीं गया हूं। लेकिन एक फिल्म यहां बनाई जा सकती है, जिसमें मैं लंदन को देख लूं। लेकिन यह मेरा लंदन में होना नहीं है। हालांकि फिल्म को देख कर लंदन में होने का खयाल पैदा हो सकता है। एक यात्रा शुरू हो सकती है।

ड्रग्स यात्रा के पहले बिंदु पर उपयोगी हो सकते हैं, इससे मैं हिप्पियों से राजी हूं। और हिप्पी विरोधियों के विरोध में हूं, जो कहते हैं कि ड्रग्स का कोई उपयोग नहीं, कोई अर्थ नहीं।

दूसरी बात में मैं हिप्पी विरोधियों से राजी हूं, क्योंकि यह अवस्था नहीं है। और हिप्पियों के विरोध में हूं, क्योंकि उन्होंने अगर झलक को अवस्था समझा और बाहर से आरोपित, फोर्स्ड केमिकल प्रभाव को उन्होंने समझा कि मेरी आत्मा नई हो गई, तो वे निश्चित ही भूल में पड़े जा रहे हैं। शराबी सदा से इसी भूल में है। इस भूल के मैं विरोध में हूं। लेकिन यह मुझे लगता है कि आने वाले मनुष्य के लिए साइकेडेलिक ड्रग्स का बहुत कीमती उपयोग किया जा सकता है।

दूसरी बात। हिप्पी क्रांति के विरोध में हैं, विद्रोह के पक्ष में हैं। लेकिन मजा यह है कि जितने हिप्पी गए छोड़ कर समाज को, उनका भी पैटर्न, ढांचा बन गया है। अगर आप बाल काट कर हिप्पियों में पहुंच जाएं, तो हिप्पी आपको ऐसे गुस्से से देखेंगे, जैसे गुस्से से बाल बढ़े आदमी को समाज देखता है! अगर आप हिप्पी समाज में कहें कि मैं रोज स्नान करूंगा, तो आप उसी क्रोध से देखे जाएंगे, जिस तरह से किसी ब्राह्मण के घर में ठहरा हूं और कहूं कि आज स्नान न करूंगा। ऐसा यह जो विद्रोह है, वह विद्रोह रिएक्शनरी, प्रतिक्रियात्मक है।

हिप्पी स्नान नहीं करता। महावीर को मानने वाले मुनियों को बड़ा प्रसन्न हो जाना चाहिए। वे भी स्नान नहीं करते। हिप्पी गंदगी को ओढ़ता है। क्योंकि वह कहता है, जैसा मैं हूं, हूं। अगर मेरे पसीने में बदबू आती है, तो मैं सुगंध, परफ्यूम न डालूंगा। आने दो पसीने में बदबू।

पसीने में बदबू है, यह बिल्कुल ठीक है। लेकिन यह प्रतिक्रिया अगर है तो खतरनाक है। माना कि पसीने में बदबू है, लेकिन परफ्यूम से बदबू मिटाई जा सकती है। और दूसरे आदमी को बदबू झेलने के लिए मजबूर करना, दूसरे की सीमाओं का अनधिकृत अतिक्रमण, ट्रेसपास है। मेरे पसीने में बदबू है, मैं मजे से अपने पसीने में रहूं। लेकिन जब भी दूसरा आदमी मेरे पड़ोस में है, तो उसको भी मेरी बदबू झेलने के लिए मजबूर करना, तो हिंसा शुरू हो गई। यानी उसकी स्वतंत्रता में बाधा डालना शुरू हो गया।

एक घटना मैंने कहीं सुनी है कि रवींद्रनाथ के पास गांधीजी मेहमान थे। सांझ को जा रहे थे दोनों घूमने। तो रवींद्रनाथ ने कहा, मैं जरा तैयार हो लूं। पर उन्हें तैयार होने में बहुत देर लगी। गांधीजी को तैयार होने की बात में ही हैरानी थी। फिर देर होते देख उन्होंने झांक कर भीतर देखा, तो पाया कि रवींद्रनाथ आदमकद आईने के सामने खड़े स्वयं को सजाने में लीन हैं! गांधीजी ने कहा, यह क्या कर रहे हैं? और इस उम्र में! तो कवि ने कहा, जब उम्र कम थी, तब तो बिना सजे भी चल जाता था, अब नहीं चलता है। और मैं किसी को कुरूप दिखूं तो लगता है कि उसके साथ हिंसा कर रहा हूं।

मैं मानता हूं कि रिएक्शनरी कभी भी ठीक अर्थों में रिबेलियस नहीं हो पाता है। प्रतिक्रियावादी, जो सिर्फ प्रतिक्रिया कर रहा है, वह समाज से उलटा हो जाता है। तुम ऐसे कपड़े पहनते हो, हम ऐसे पहनेंगे। तुम स्वच्छता से रहते हो, हम गंदगी से रहेंगे। तुम ऐसे हो, हम उलटे चले जाएंगे। लेकिन उलटा जाना विद्रोह नहीं है, प्रतिक्रिया है। मैं मानता हूं, विद्रोह की बड़ी कीमत है। लेकिन हिप्पी प्रतिक्रिया में पड़ गया है। प्रतिक्रिया की कोई कीमत नहीं है। विद्रोह तो एक मूल्य है, लेकिन प्रतिक्रिया एक रोग है।

और ध्यान रहे, प्रतिक्रियावादी हमेशा उससे बंधा रहता है, जिसकी वह प्रतिक्रिया कर रहा है। अब ऐसा जरूरी नहीं है कि एक आदमी नंगा आकर इस कमरे में बैठे तो वह सहज ही हो। यह भी हो सकता है कि वह सिर्फ कपड़े पहनने वाले लोगों की प्रतिक्रिया में इधर नंगा आकर बैठ गया हो, सहज बिल्कुल न हो। सहजता का तो मूल्य है, लेकिन सहजता कपड़े पहनने में हो ही नहीं सकती, ऐसा कौन कह सकता है? प्रतिक्रिया पकड़ रही है। प्रतिक्रिया के परिणाम खतरनाक हैं। और प्रतिक्रिया ज्यादा स्थायी नहीं होती, सिर्फ संक्रमण की बात होती है।

इसलिए धीरे-धीरे प्रतिक्रिया भी सेटल, व्यवस्थित होती जा रही है। हिप्पियों का भी एक समाज बन गया, उसके भी नियम और कानून बन गए। उनकी भी आर्थोडाक्सी बन गई है! उनका भी पुरोहित, पंडित, नेता, सब हो गया है! वहां भी आप जाएं तो आप जैसे हैं, वे आपको बेचैनी देना शुरू कर देंगे।

अभी मैं एक घटना पढ़ रहा था। एक अमेरिकन पत्रकार महिला हिप्पियों का अध्ययन करने बहुत से समाजों में गई। वह एक समाज में गई है, वहां भोजन चल रहा है हिप्पियों का, तो उन्होंने चम्मचें नहीं ली हैं। हिंदुस्तान में क्या करेंगे? अगर हिप्पी आएं तो बड़ा मुश्किल पड़ेगा। अमेरिका में तो हाथ से खाना बगावत है। हिंदुस्तान में चम्मच से खाना भी बगावत हो सकता है। हाथ से ही भोजन खा रहे हैं वे! हाथ से खाने की आदत भी नहीं है, तो सब गंदे हाथ हो गए हैं। और इकट्ठा भोजन रखा हुआ है, वह सब गंदा हो गया है! और इस तरह भोजन खा रहे हैं! अब यह जो महिला पत्रकार है यह अपनी चम्मच उठाती है, तो किसी ने उसकी चम्मच छीन ली और उसका हाथ भोजन में डाल दिया है। अब वह बहुत घबड़ा गई है।

लेकिन वहां यही नियम है! अगर वह महिला हां भरती है, तो मैं कहता हूं, अब वह महिला फिर कनफरमिस्ट हो गई है। उसे इनकार करना चाहिए। लेकिन वहां इनकार करना मुश्किल है।

वहां एक हिप्पी ने एक स्त्री का ब्लाउज फाड़ डाला है। उसके ऊपर उसने सब खाना डाल दिया है और उसके शरीर से चाट रहा है।

अब ये सब प्रतिक्रियाएं हो गईं। यह पागलपन हो गया। हां, किसी प्रेम के क्षण में किसी स्त्री के शरीर का स्वाद भी अर्थपूर्ण हो सकता है। वह अनिवार्यतः अनर्थ नहीं है। लेकिन बस किसी क्षण में। लेकिन किसी स्त्री के शरीर पर शोरबा डाल कर उसे चाट कर तो वे सिर्फ मुंह दिखा रहे हैं तुम्हारे समाज को। वे यह कह रहे हैं कि क्या तुम समझते हो हमें!

गिंसबर्ग हिप्पी कवि है। एक छोटी सी पोएट्स गैदरिंग, कवि-सम्मेलन में बोल रहा है। साहस पर कोई कविता बोल रहा है। और उसमें अश्लील शब्दों का प्रयोग कर रहा है। एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि इसमें कौन सा साहस है।। इस गाली-गलौज का उपयोग करने में? तो गिंसबर्ग ने उत्तर में कहा, फिर साहस देखोगे? असली साहस दिखलाएं? उस आदमी ने कहा, दिखलाओ! तो उसने पैंट खोल दिया और वह नंगा खड़ा हो गया! और उसने उस आदमी से कहा कि तुम भी नंगे खड़े हो जाओ, अगर साहसी हो तो।

लेकिन नंगे खड़े होने में कौन सा साहस है? नंगे खड़े होने में साहस है, ऐसा कहने वाला आदमी नंगा खड़ा होने से डरा हुआ होना चाहिए। अन्यथा साहस दिखाना न पड़े!

मेरे एक शिक्षक थे हाईस्कूल में। उनको जब भी मौका मिल जाए, वे अपनी बहादुरी की बात कहे बिना नहीं रहते थे।। कि मैं अकेला ही मरघट चला जाता हूं! अंधेरी रात में, और बिल्कुल अकेले!

मैंने एक दिन उनसे कहा कि आप ऐसी बातें न किया करें। लड़कों को शक होता है कि आप कुछ डरपोक आदमी हैं। इन बातों को क्या बहादुर आदमी कभी कहेगा? मैं अकेला ही अंधेरी रात में चला जाता हूं! यह तो सिर्फ भयभीत आदमी ही कह सकता है। जिसको भय नहीं है, उसको पता ही नहीं चलता कि कब अंधेरी रात है और कब सूरज निकला। वह बस चला जाता है और हिसाब नहीं रखता!

पीछे गिंसबर्ग मुझे कभी मिले तो उससे मैं कहना चाहूंगा कि तुमने बहादुरी नहीं बताई, तुमने सिर्फ मुंह बिचकाया। वह आदमी कपड़े पहने हुए है, तुमने कपड़े निकाल दिए, कुछ बहादुरी न हो गई। और इससे उलटा भी हो सकता है कि कल पांच सौ आदमी नंगे बैठे हों और मैं कपड़े पहने पहुंच जाऊं। और मैं कहूं कि मैं बहादुर हूं, क्योंकि मैं कपड़े पहने हूं। तब भी कोई कठिनाई नहीं है।

मैंने एक घटना सुनी है।। नैतिक साहस, मॉरल करेज की।

मैंने सुना है, एक स्कूल में एक पादरी नैतिक साहस, मॉरल करेज क्या है, यह समझा रहा है। उसने कहा कि तीस बच्चे पिकनिक पर गए हैं। वे दिन भर में थक गए, फिर सांझ को आकर उन्होंने भोजन किया। उनतीस बच्चे तो तत्काल अपने बिस्तर में चले गए। एक बच्चा ठंडी रात, थका-मांदा, उसके बाद भी घुटने टेक कर उसने प्रार्थना की। उस पादरी ने कहा, इस बच्चे में मॉरल करेज है, इसमें नैतिक साहस है। रात कह रही है सो जाओ, ठंड कह रही है सो जाओ, थकान कह रही है सो जाओ। उनतीस लड़के कंबलों के भीतर हो गए हैं और एक लड़का बैठ कर रात की आखिरी प्रार्थना कर रहा है।

महीने भर बाद वह वापस लौटा। उसने कहा, नैतिक साहस पर मैंने तुम्हें कुछ सिखाया था। तुम्हें कुछ याद हो तो मुझे तुम कुछ घटना बताओ। एक लड़के ने कहा, मैं भी आपको एक काल्पनिक घटना बताता हूं। आप जैसे तीस पादरी पिकनिक पर गए। दिन भर के थके, भूखे-प्यासे वापस लौटे। उनतीस पादरी प्रार्थना करने लगे, एक पादरी कंबल ओढ़ कर सो गया। तो हम उसको नैतिक साहस कहते हैं। जहां उनतीस पादरी प्रार्थना कर रहे

हों और एक-एक की आंखें कह रही हों कि नरक जाओगे, अगर प्रार्थना न की! वहां एक पादरी कंबल ओढ़ कर सो जाता है।

लेकिन नैतिक साहस का क्या मतलब इतना ही है कि जो सब कर रहे हों, उससे विपरीत करना नैतिक साहस हो जाएगा? सिर्फ विपरीत होना साहस हो जाएगा?

नहीं, विपरीत होने से साहस नहीं हो जाता। विपरीत होना जरूरी रूप से सही होना नहीं है। और अक्सर तो यह होता है कि गलत के विपरीत जब कोई होता है, तब दूसरी गलती करता है, और कुछ भी नहीं करता। अक्सर दो गलतियों के बीच में वह जगह होती है जहां सही होता है। एक गलती से आदमी पेंडुलम की तरह दूसरी गलती पर चला जाता है। बीच में ठहरना बड़ा मुश्किल होता है।

मुझे लगता है, हिप्पी जिसे विद्रोह कह रहे हैं वह विद्रोह तो है, होना चाहिए वैसा विद्रोह, लेकिन वह प्रतिक्रिया ज्यादा है। और प्रतिक्रिया से मेरा विरोध है।

एक रिबेलियस, विद्रोही आदमी बहुत और तरह का आदमी है। एक विद्रोही आदमी इसलिए "नहीं" नहीं कहता कि "नहीं" कहना चाहिए। अगर "नहीं" कहना चाहिए, इसलिए कोई "नहीं" कहता है, तो यह हां-हुजूरी है। इसमें कोई फर्क न हुआ। वह "नहीं" इसलिए कहता है कि उसे लगता है कि "नहीं" कहना उचित है। और अगर उसे लगता है कि "हां" कहना उचित है, तो दस हजार "नहीं" कहने वालों के बीच में भी वह "हां" कहेगा। यानी वह सोचेगा।

मेरा कहना यह है कि विद्रोह अनिवार्य रूप से विवेक है और प्रतिक्रिया अविवेक है।

तो हिप्पी विद्रोह की बात करके प्रतिक्रिया की तरफ चला जाता है। वहां सब बातें व्यर्थ हो जाती हैं।

दूसरी बात मैंने कही कि हिप्पी कह रहा हैः सहज जीवन। लेकिन सहज जीवन क्या है? जो मेरे लिए सहज है, वह जरूरी नहीं है कि आपके लिए भी सहज हो। जो आपके लिए सहज है, वह मेरे लिए जरूरी नहीं है कि सहज हो। जो एक के लिए जहर हो, वह दूसरे के लिए अमृत हो सकता है। असल में, एक-एक व्यक्ति का अपना-अपना होने का यही अर्थ है। लेकिन हिप्पी कह रहा है कि सहज जीवन, और सहज जीवन के भी नियम बनाए ले रहा है! वह कह रहा है कि सहज जीवन यही है।। जहां पाखाना किया है, उसी के बगल में बैठ कर खाना खा लो!

हमारे मुल्क ने भी परमहंस पैदा किए हैं। उनका भी सहज जीवन यही था कि पाखाना पड़ा है, वहीं बैठ कर खाना खा लेते। लेकिन एक के लिए यह सहज हो सकता है। और दूसरे के लिए यह बहुत असहज हो सकता है कि पाखाना पड़ा हो वहां और वह खाना खाए।

सहज जीवन का कोई नियम नहीं हो सकता। लेकिन हिप्पियों ने भी नियम बना लिए हैं।। कितने लंबे बाल होना चाहिए! किस कट का कोट होना चाहिए! किस छींट की कमीज होनी चाहिए! पैंट की मोहरी कितनी संकरी होनी चाहिए! जूते कैसे होने चाहिए, चाल कैसी होनी चाहिए! गले में हिंदुस्तान की एक रुद्राक्ष की माला भी होनी चाहिए! उसके भी नियम, उसकी भी सारी व्यवस्था हो गई है! असल में, आदमी कुछ ऐसा है कि वह व्यवस्था के बाहर हो ही नहीं पाता। इधर से व्यवस्था तोड़ता है, उधर से व्यवस्था बना लेता है।

यहां मैं हिप्पियों से राजी नहीं हूं। मैं मानता हूं कि एक सहज दुनिया सब तरह के लोगों को स्वीकार करेगी। यानी वह इस आदमी को भी स्वीकार करेगी, जिसको हम समझते हों कि सहज नहीं है। लेकिन उसके लिए वह सहज होना हो सकता है। सबका स्वीकार ही सहजता का आधार बन सकता है।

लेकिन हिप्पी के लिए सब स्वीकार नहीं है। वह दूसरों को ऐसे ही देखता है, जैसे कि दूसरे उसको देखते हैं।। कंडेमनेशन से, निंदा की नजर से। दूसरे लोगों को वह कहता हैः स्क्वायर, चौखटे लोग। वह स्वयं भर स्क्वायर नहीं है। बाकी जितने लोग हैं वे चौखटे हैं।। जो दफ्तर जा रहे हैं, स्कूल में पढ़ा रहे हैं, दुकान कर रहे हैं, पति हैं, पिता हैं। लेकिन किसी के लिए पति होना उतना ही सहज हो सकता है, जितना किसी के लिए प्रेमी होना। और किसी के लिए एक ही स्त्री जीवन भर के लिए सहज हो सकती है, जितना किसी अन्य का स्त्री को बदल लेना। लेकिन हिप्पी यदि कहे कि स्त्री का बदलना ही सहज है, तब फिर दूसरी अति पर वही भूल शुरू हो गई। इसलिए मैं इस सूत्र में भी उनसे राजी नहीं हूं। मैं राजी हूं कि प्रत्येक व्यक्ति का अंगीकार होना जरूरी है।

और अंतिम बात। जब कोई वादों को भी जान कर और चेष्टा से विरोध करता है, तब चाहे वह कितना ही कहे कि वाद नहीं है, वाद बनना शुरू हो जाता है। जिसको हम अ-कविता कहते हैं, वह भी कविता ही बन जाती है। जिसको जापान में अ-नाटक, नो ड्रामा कहा जाता है, वह भी ड्रामा है। और जिसको हम अ-वाद कहते हैं, वह भी नये तरह का वाद हो जाता है। असल में, मनुष्य जब तक वाद का विरोध भी करेगा तो भी वाद निर्मित हो जाएगा। अगर अ-वादी किसी को होना है तो उसे तो मौन ही होना पड़ेगा। उसे वाद के विरोध का भी उपाय नहीं है। इसलिए अ-वादी तो दुनिया में सिर्फ वे ही लोग थे, जो चुप ही रह गए। क्योंकि बोले तो वाद बन जाए।

अब नागार्जुन है, वह सारे वादों का खंडन करता है। कोई उससे पूछे कि तुम्हारा वाद क्या है? तो वह कहता है, मेरा कोई वाद नहीं है। वह सबका खंडन करता है और उसका अपना कोई वाद नहीं है।

लेकिन तब सबका खंडन करना भी वाद बन सकता है।

असल में, एंटी-फिलासफी भी फिलासफी ही है। नॉन-फिलासफिक होना बहुत मुश्किल है; एंटी-फिलासफिक होना बहुत आसान है। दर्शन के विरोध में होने में कठिनाई नहीं है; क्योंकि एक दर्शन फिर विकसित हो जाएगा जो दर्शन का विरोध करेगा। लेकिन नॉन-फिलासफिक होना।। दर्शन के ऊपर चले जाना, बियांड, पार चले जाना।। तो सिर्फ मिस्टिक के लिए संभव है, रहस्यवादी के लिए संभव है, संत के लिए संभव है। जो कहता हैः सत्य के, सिद्धांत के, वाद के पार। इतना ही नहीं, वह कहता हैः बुद्धि के पार, विचार के पार, मन के पार, जहां मैं ही नहीं हूं वहां। जब सबके पार जो शेष रह जाता है, वही है। लेकिन उसे तो कैसे कहें? अभी हिप्पी वहां नहीं पहुंचा, लेकिन कभी पहुंच सकता है।

फिर हिप्पी बड़ी जमात है। उसमें वर्ग भी हैं। अगर हमें रास्ते में एक पीत वस्त्रधारी भिक्षु मिल जाए तो उसे देख कर बुद्ध को नहीं तौलना चाहिए। काशी में जो हिप्पी भीख मांग रहा है सड़क पर, उसे देख कर डाक्टर तिमोती लियरी को या डाक्टर पर्ल्स को नहीं तौलना चाहिए। वे बड़े अदभुत लोग हैं। लेकिन सभी वर्ग के लोग इकट्ठे हो जाते हैं।

हिप्पियों का एक श्रेष्ठ वर्ग निश्चित ही पार जा रहा है। और इस बात की संभावना है कि पश्चिम में मिस्टिसिज्म का जन्म, हिप्पियों का जो श्रेष्ठतम वर्ग है, उससे पैदा होगा। एक नये वैज्ञानिक युग में भी, बुद्धि को आग्रह करने वाले युग में भी, बुद्धि-अतीत की ओर इशारा करने वाला एक वर्ग पैदा होगा।

लेकिन यह दो-चार हिप्पियों की बात है। बाकी जो बड़ा समूह है, वह भीड़-भाड़ है। वह सिर्फ घर से भागे हुए छोकरों का समूह है। कोई पढ़ना नहीं चाहता है। कोई बाप से क्रोध में है। कोई किसी लड़की से विवाह करना चाहता है। कोई गांजा पीना चाहता है। कोई कैसे भी रहना चाहता है। कोई सुबह दस बजे तक सोना चाहता है। इन सारे लोगों का समूह है।

इसलिए मैं दो बातें अंत में कह दूं।

एक यह कि हिप्पी में जो श्रेष्ठतम फूल हैं, उनसे तो मुझे आशा बंधती है कि उनसे एक नये तरह के मिस्टिसिज्म, एक नये तरह के रहस्य का जन्म होगा। लेकिन हिप्पियों में जो नीचे का वर्ग है, उनसे कोई आशा नहीं बंधती। वे सिर्फ घर-भगोड़े हैं। हिप्पी शब्द भी हिप से ही बनता है, अर्थात पीठ दिखा कर भाग जाने वाले। ऐसे भगोड़े थोड़े दिन में वापस भी लौट जाते हैं। वे घर लौट जाएंगे ही।

इसलिए आपको पैंतीस साल से ऊपर का हिप्पी मुश्किल से मिलेगा, नीचे का ही मिलेगा। अधिकतर तो टीन एजर्स, उन्नीस वर्ष के भीतर के हैं। क्योंकि जैसे ही उनको एक बच्चा हुआ और प्रेम हो गया एक स्त्री से कि घर बनाने का सवाल शुरू हो जाता है। फिर उन्हें नौकरी चाहिए। फिर वे वापस लौट आते हैं स्क्वायर लोगों की दुनिया में, चौखटे लोगों की दुनिया में वे फिर वापस आ जाते हैं। फिर किसी दफ्तर में नौकरी। फिर घर है, फिर गृहस्थी है, फिर सब चलने लगता है।

लेकिन ऐसा मैं जरूर सोचता हूं कि हिप्पियों ने एक सवाल खड़ा किया है सारी मनुष्य संस्कृति पर और उस सवाल के उत्तर में भविष्य के लिए बड़े संकेत हो सकते हैं। इसलिए सोचने योग्य है हमारे लिए बहुत। हिंदुस्तान तो अभी हिप्पी नहीं पैदा कर सकता। गरीब कौम हिप्पी पैदा नहीं करती। समृद्धि ही हिप्पी पैदा करती है। गौतम बुद्ध राजा के बेटे हैं। महावीर राजा के बेटे हैं। जैनियों के सब तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं। राम, कृष्ण, सब राजाओं के बेटे हैं। जहां सब मिल जाता है, वहां से बगावती और आगे जाने वाला आदमी पैदा होता है।

हिप्पी का अभी यहां भारत में सवाल नहीं है। अभी हम हिप्पी भी पैदा करेंगे तो वह सिर्फ बाल बढ़ाने वाला आदमी होगा और कुछ भी नहीं। उसको कहो कि एक आदमी दस हजार रुपये दे रहा है लड़की की शादी के लिए, तो वह कहेगा, फिर घोड़ा कहां है?

गरीब कौम हिप्पी पैदा नहीं कर सकती, समृद्ध कौम ही कर सकती है। असल में, इसका मतलब यह हुआ कि वी कैन नाट अफोर्ड।। यह हमारे लिए महंगा सौदा है।

यह दुखद है। यह सुखद नहीं है। हम अभी हिप्पी पैदा नहीं कर सकते, यह बड़े दुख की बात है। हम गरीब हैं बहुत। अभी हम उस जगह नहीं हैं, जहां कि हमारे लड़के कुछ भी न करें, तो जी सकें।

अगर दो लाख आदमी बिना कुछ किए जी रहे हैं, तो उसका मतलब है कि समाज समृद्ध, एफल्युएंट है, समाज में बहुत पैसा है। एक हिप्पी है, वह दो दिन काम कर आता है गांव में, और महीने भर के लिए कमा लेता है। वह अट्ठाइस दिन पड़ा रहता है एक वृक्ष के नीचे, ढोल बजाता रहता है, हरि-भजन करता रहता है, हरि-कीर्तन करता रहता है।

गरीब कौम ऐसा विद्रोह नहीं पैदा कर सकती। लेकिन सदा के लिए तो हम गरीब नहीं रहेंगे। इसलिए जब छात्रों ने आकर कहा कि हिप्पियों पर कुछ कहें, तो मैंने कहा अच्छा है, आज नहीं कल हिप्पी हम भी तो पैदा करेंगे ही। तो उसके पहले साफ हो जाना चाहिए कि हिप्पी यानी क्या?

वैसे इस देश ने अपनी समृद्धि के दिनों में बहुत तरह के हिप्पी पैदा किए, जिनका पश्चिम को कुछ पता भी नहीं। गिंसबर्ग जब काशी आया तो एक संन्यासी से उसको मिलाने ले गए। उस संन्यासी से जब कहा गया कि गिंसबर्ग हिप्पी है, तो वह संन्यासी खूब हंसा और उसने कहा, तुम तो सिर्फ हिप्पी हो, हम महा हिप्पी हैं। हम काशीवासी हैं। और काशी है नामी महा हिप्पी भगवान शंकर की भूमि।

शंकर जैसे परम स्वतंत्र व्यक्तित्व भारत ने कभी पैदा किए थे। लेकिन वह समृद्ध दिनों की पुरानी याददाश्त है। भविष्य में हम फिर कभी हिप्पी पैदा कर सकते हैं।

लेकिन सोचना तो बहुत जरूरी है। और सोच कर यह देखना जरूरी है कि हिप्पियों की इस घटना में क्या मूल्यवान घटित हो रहा है मनुष्य की चेतना के लिए।

मनुष्य-चेतना क्रांति के एक कगार पर खड़ी है और एक निर्णायक छलांग अति निकट है। बाह्य विस्तार अब सार्थक नहीं है। अंतस विस्तार की खोज बेचैनी से चल रही है अनेक आयामों में। आदमी स्वयं की भावी चेतना को खोज रहा है। सुबह होने के पहले अंधेरा भी निश्चय ही गहन हो गया है, लेकिन उससे स्वर्ण-प्रभात की योजना भी मिल रही है।

छठवां प्रवचन

युवक कौन

मेरे प्रिय आत्मन्!

युवकों के लिए कुछ भी बोलने के पहले यह ठीक से समझ लेना जरूरी है कि युवक का अर्थ क्या है?

युवक का कोई भी संबंध शरीर की अवस्था से नहीं है। उम्र से युवा होने का कोई भी संबंध नहीं है। बूढ़े भी युवा हो सकते हैं, और युवा भी बूढ़े हो सकते हैं। ऐसा कभी-कभी होता है कि बूढ़े युवा हों, ऐसा अक्सर होता है कि युवा बूढ़े होते हैं। और इस देश में तो युवक पैदा भी होते हैं, यह भी संदिग्ध बात है।

युवा होने का अर्थ है।। चित्त की एक दशा, चित्त की एक जीवंत दशा, एक लिविंग स्टेट ऑफ माइंड।

बूढ़े होने का अर्थ है।। चित्त की मरी हुई दशा।

इस देश में युवक पैदा ही शायद नहीं होते हैं, जब ऐसा मैं कहता हूं, तो मेरा अर्थ यही है कि हमारा चित्त जीवंत नहीं है। वह जो जीवन का उत्साह, वह जो जीवन का आनंद और जीवन का संगीत हमारी हृदय की वीणा पर होना चाहिए, वह नहीं है। आंखों में, प्राणों में, रोएं-रोएं में, वह जो जीवन को जीने की उद्दाम लालसा होनी चाहिए, वह हममें नहीं है। जीवन को जीएं, इसके पहले ही हम जीवन से उदास हो जाते हैं। जीवन को जानें, इसके पहले ही हम जीवन को जानने की जिज्ञासा की हत्या कर देते हैं।

मैंने सुना है, स्वर्ग के एक रेस्तरां में एक दिन सुबह एक छोटी सी घटना घट गई। उस रेस्तरां में तीन अदभुत लोग एक टेबल के आस-पास बैठे हुए थे।। गौतम बुद्ध, कनफ्यूशियस और लाओत्से। वे तीनों स्वर्ग के रेस्तरां में बैठ कर गपशप करते थे। फिर एक अप्सरा जीवन का रस लेकर आई और उस अप्सरा ने कहा, जीवन का रस पीएंगे?

बुद्ध ने सुनते ही आंख बंद कर लीं और कहा, जीवन व्यर्थ है, असार है, कोई सार नहीं।

कनफ्यूशियस ने आधी आंखें बंद रखीं और आधी खुली।। वह गोल्डन मीन को मानता था हमेशा, मध्य-मार्ग।। उसने थोड़ी सी खुली आंखों से देखा और कहा, एक घूंट लेकर चखूंगा। अगर आगे भी पीने योग्य लगा तो विचार करूंगा। उसने थोड़ा सा जीवन-रस लेकर चखा और कहा, न पीने योग्य है, न छोड़ देने योग्य है; कोई सार भी नहीं, कोई असार भी नहीं। उसने मध्य की बात कही।

लाओत्से ने पूरी की पूरी सुराही हाथ में ले ली जीवन-रस की और कुछ कहे बिना पूरा पी गया। और तब नाचने लगा और कहने लगा, आश्चर्य कि गौतम बुद्ध तुमने बिना पीए ही इनकार कर दिया! और आश्चर्य कि कनफ्यूशियस तुमने थोड़ा सा चखा! लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं जो पूरी ही जानी जाएं तो ही जानी जा सकती हैं। थोड़े चखने से उनका कोई भी पता नहीं चलता।

अगर किसी कविता का एक छोटा सा टुकड़ा किसी को दे दिया जाए दो पंक्तियों का, तो उससे पूरी कविता के संबंध में कुछ भी पता नहीं चलता। एक उपन्यास का एक पन्ना फाड़ कर किसी को दे दिया जाए, तो उससे पूरे उपन्यास के संबंध में कोई भी पता नहीं चलता। कोई वीणा पर संगीत बजाता हो, उसका एक स्वर किसी को मिल जाए, तो उससे उस वीणाकार ने क्या बजाया था, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। एक बड़े चित्र का छोटा सा टुकड़ा काट कर किसी को दे दिया जाए, तो उस बड़े चित्र में क्या है, उस छोटे से टुकड़े से

कुछ भी पता नहीं चलता। कुछ चीजें हैं, जिनके स्वाद से कुछ पता नहीं चलता, जिन्हें तो उनकी समग्रता में, उनकी होलनेस में, उनकी टोटैलिटी में, उनकी समग्रता में ही जीना पड़ता है, तभी पता चलता है।

लाओत्से कहने लगा, नाच उठा हूं मैं। अदभुत था जीवन का रस।

और अगर जीवन का रस भी अदभुत नहीं है, तो फिर और अदभुत क्या होगा? जिनके लिए जीवन का रस भी व्यर्थ है, उनके लिए फिर सार्थकता कहां मिलेगी? फिर वे खोजें और खोजें। वे जितना खोजेंगे, उतना ही खोते चले जाएंगे। क्योंकि जीवन ही है एक सारभूत, जीवन ही है एक रस, जीवन ही है एक सत्य। उसमें ही छिपा है सारा सौंदर्य, सारा आनंद, सारा संगीत।

लेकिन भारत में युवक उस जीवन के उद्दाम वेग से आपूरित नहीं मालूम होते। और न ऐसा लगता है कि उनके जीवन में, उनके प्राणों में उन शिखरों को छूने की कोई आकांक्षा है, जो जीवन के शिखर हैं। न ऐसा लगता है कि उन अज्ञात सागरों को खोजने के लिए प्राणों में कोई उद्दाम पीड़ा है।। उन सागरों को जो जीवन के सागर हैं। न जीवन के अंधेरे को, न जीवन के प्रकाश को, न जीवन की गहराई को, न जीवन की ऊंचाई को, न जीवन की हार को, न जीवन की जीत को, कुछ भी जानने का जो उद्दाम वेग, जो गति, जो ऊर्जा होनी चाहिए, वह युवक के पास नहीं है। इसलिए युवक भारत में है।। ऐसा कहना केवल औपचारिकता है, फार्मेलिटी है। भारत में युवक नहीं है, भारत हजारों साल से बूढ़ा देश है। उसमें बूढ़े ही पैदा होते हैं, बूढ़े ही जीते हैं और बूढ़े ही मरते हैं। न बच्चे पैदा होते हैं, न जवान पैदा होते हैं।

हम इतने बूढ़े हो गए हैं कि अब हमारी जड़ें जीवन के रस को नहीं खींचतीं और न हमारी शाखाएं जीवन के आकाश में फैलती हैं और न हमारी शाखाओं में जीवन के पक्षी बसेरा करते हैं और न हमारी शाखाओं पर जीवन का सूरज ऊगता है और न जीवन का चांद चांदनी बरसाता है। सिर्फ धूल जमती जाती है, जड़ें सूखती जाती हैं, पत्ते कुम्हलाते जाते हैं; फूल पैदा नहीं होते, फल आते नहीं हैं। बस है, वृक्ष है। न उसमें पत्ते हैं, न फूल हैं; सूखी शाखाएं खड़ी रह गई हैं। ऐसा अभागा हो गया है देश!

जब युवकों के संबंध में कुछ बोलना हो तो पहली तो बात यही जान लेनी जरूरी है। युवक! युवक कोई शारीरिक अवस्था है, तब तो हमारे पास भी युवक हैं। युवक अगर कोई मानसिक दशा है, स्टेट ऑफ माइंड है, तो युवक हमारे पास नहीं हैं।

अगर युवक हमारे पास होते तो देश में इतनी गंदगी, इतनी सड़ांध, इतना सड़ा हुआ समाज जीवित रह सकता था? कभी की उन्होंने आग लगा दी होती। अगर युवक हमारे पास होते, एक हजार साल तक हम गुलाम रहते? कभी का गुलामी को उन्होंने उखाड़ फेंका होता। अगर युवक हमारे पास होते तो हम हजारों-हजारों साल तक दरिद्रता और दीनता और दुख में बिताते? हमने कभी की दरिद्रता मिटा दी होती या खुद मिट गए होते।

लेकिन नहीं, युवक शायद नहीं हैं। युवक हमारे पास होते तो इतना पाखंड, इतना अंधविश्वास, इतना सुपरस्टीशन चलता इस देश में? युवक बरदाश्त करते? एक-एक करोड़ रुपया यज्ञों में जलाने देते, युवक अगर मुल्क के पास होते? और अब मैं सुनता हूं कि और भी करोड़ों रुपयों को जलाने का इंतजाम करने के लिए साधु-संन्यासी लालायित हैं। और युवक ही जाकर चंदा इकट्ठा करेंगे और वालंटियर बन कर उस यज्ञ को करवाएंगे, जहां देश की संपत्ति जलेगी निपट गंवारी में!

अगर युवक मुल्क में होते तो ऐसे लोगों को क्रिमिनल्स कह कर, पकड़ कर अदालतों में खड़ा किया होता, जो मुल्क की संपत्ति को इस भांति बर्बाद करते हों। एक करोड़ रुपये की संपत्ति जलाने में जो आदमी जितना अपराधी हो जाता है, उससे भी ज्यादा अपराधी एक करोड़ रुपया यज्ञ में जलाने से होता है। क्योंकि एक करोड़

रुपये की संपत्ति को जलाने वाला थोड़ा-बहुत अपराध भी अनुभव करेगा। यज्ञ में जलाने वाला पॉयस क्रिमिनल है, पवित्र अपराधी है! उसको अपराध भी मालूम नहीं पड़ता है।

लेकिन युवक मुल्क में नहीं हैं, इसलिए किसी भी तरह की मूढ़ता चलती है, इसलिए मुल्क में किसी भी तरह का अंधकार चलता है। युवकों के होने का सबूत नहीं मिलता देश को देख कर! क्या चल रहा है देश में? युवक किसी भी चीज पर राजी हो जाते हुए मालूम पड़ते हैं!

वह युवक कैसा जिसके भीतर विद्रोह न हो, रिबेलियन न हो? युवक होने का मतलब क्या हुआ उसके भीतर? जो गलत के सामने झुक जाता हो, उसको युवक कैसे कहें?

जो टूट जाता हो लेकिन झुकता न हो, जो मिट जाता हो लेकिन गलत को बरदाश्त न करता हो, वैसी स्प्रिट, वैसी चेतना का नाम ही युवक होना है। टु बी यंग।। युवा होने का एक ही मतलब है।। वैसी आत्मा विद्रोही की, जो झुकना नहीं जानती, टूटना जानती है; जो बदलना चाहती है, जो जिंदगी को नई दिशाओं में, नये आयामों में ले जाना चाहती है, जो जिंदगी को परिवर्तन करना चाहती है। क्रांति की यह उद्दाम आकांक्षा ही युवा होने का लक्षण है।

कहां है क्रांति की उद्दाम आकांक्षा?

एक विचारक भारत आया था, काउंट कैसरलेन। लौट कर उसने एक किताब लिखी है। उस किताब को मैं पढ़ता था तो मुझे बहुत हैरानी होने लगी। उसने एक वाक्य लिखा है, जो मेरी समझ के बाहर हो गया; क्योंकि वाक्य कुछ ऐसा मालूम पड़ता था जो कि कंट्राडिक्टरी है, विरोधाभासी है। फिर मैंने सोचा, छापेखाने की कोई भूल हो गई होगी। तो खयाल आया कि किताब जर्मनी में छपी है। जर्मनी में छापेखाने की भूलें तो होती नहीं। वह तो हमारे ही देश में होती हैं। यहां तो किताब छपती है, उसके ऊपर पांच-छह पन्ने की भूल-सुधार वह छपा रहता है। और उन पांच-छह पन्नों को भी गौर से पढ़िए तो उसमें भी भूलें मिल जाएंगी! वह किताब जर्मनी में छपी है, भूल नहीं हो सकती।

फिर मैंने गौर से पढ़ा, फिर बार-बार सोचा, फिर खयाल में आया।। भूल नहीं की है, उस आदमी ने मजाक की है। उसने लिखा है कि मैं हिंदुस्तान गया। मैं एक नतीजा लेकर वापस आया हूंः इंडिया इ.ज ए रिच कंट्री, व्हेअर पुअर पीपुल लिव। हिंदुस्तान एक अमीर देश है, जहां गरीब आदमी रहते हैं!

मैं बहुत हैरान हुआ, यह कैसी बात है! अगर देश अमीर है तो गरीब आदमी क्यों रहते हैं वहां? और देश अगर अमीर है तो वहां के लोग गरीब क्यों हैं?

लेकिन वह मजाक कर रहा है। वह यह कह रहा है कि हिंदुस्तान के पास जवानी नहीं है, जो कि देश के छिपे हुए धन को प्रकट कर दे और देश को धनवान बना दे। देश में धन छिपा हुआ है, लेकिन देश बूढ़ा है। बूढ़ा कुछ कर नहीं सकता। धन खदानों में पड़ा रह जाता है, बूढ़ा भूखा मरता रहता है। धन जमीन में दबा रह जाता है, बूढ़ा भूखा मरता रहता है! देश बूढ़ा है, इसलिए गरीब है। देश जवान हो तो गरीब होने का कोई कारण नहीं है। देश के पास क्या कमी है?

लेकिन अगर हमें कुछ सूझता है तो हमें एक ही बात सूझती है कि जाओ दुनिया में भीख मांगो। जाओ अमेरिका, जाओ रूस, हाथ फैलाओ सारी दुनिया में। भिखारी होने में हमें शर्म भी नहीं आती, हम जवान हैं? रास्ते पर एक जवान आदमी, स्वस्थ आदमी भीख मांगता हो तो हम उससे कहते हैं कि जवान होकर भीख मांगते हो? और हम कभी नहीं सोचते कि हमारा पूरा मुल्क सारी दुनिया में भीख मांग रहा है तो हमें जवान होने का हक रह जाता है?

सड़क पर भीख मांगते आदमी से कोई भी कह देता हैः जवान होकर भीख मांगते हो? हम जानते हैं कि जवान होकर भीख मांगना लज्जा से भरी हुई बात है, अपमानजनक है। जवान को पैदा करना चाहिए। हां, बूढ़ा भीख मांगता हो तो हम क्षमा कर सकते हैं, अब उससे आशा नहीं पैदा करने की।

सारी दुनिया में हम भीख मांग रहे हैं! उन्नीस सौ सैंतालीस के बाद अगर हमने कोई महान कार्य किया है तो वह यही कि हमने सारी दुनिया में भीख मांगने में सफलता पाई है। शर्म भी नहीं आती हमें! दुनिया क्या सोचती होगी कि कितना बूढ़ा देश है, कुछ कर नहीं सकता, सिर्फ भीख मांग सकता है!

लेकिन उन्हें पता नहीं है कि हम पहले से ही पैदा करने की बजाय भीख मांगने को आदर देते रहे हैं। हिंदुस्तान में जो भीख मांगता है, वह आदृत है उससे, जो पैदा करता है। ब्राह्मण हजारों साल तक देश में आदृत रहे हैं सिर्फ इसलिए कि वे पैदा नहीं करते और भीख मांगते हैं।

और हिंदुस्तान ने बड़े-बड़े भिखारी पैदा किए हैं, महापुरुष।। बुद्ध से लेकर विनोबा तक।। सब भीख मांगने वाले महापुरुष! और अगर सारा मुल्क भीख मांगने लगा तो हर्ज क्या है? हम सब महापुरुष हो गए हैं! महापुरुषों का देश है, सारा देश महापुरुष हो गया है। हम सारी दुनिया में भीख मांग रहे हैं। भिक्षावृत्ति बड़ी धार्मिक वृत्ति है!

पैदा करने में हिंसा भी होती है, पैदा करने में श्रम भी उठाना पड़ता है। और फिर हम पैदा क्यों करें? जब भगवान ने हमें पैदा कर दिया है तो भगवान इंतजाम करे! जिसने चोंच दी है, वह चून भी देता है, देगा! हम अपनी चोंच को हिलाते फिरेंगे सारी दुनिया में कि चून दो, क्योंकि क्यों हमें पैदा किया है? और जो हमें भीख देंगे, उनको हम गालियां देंगे कि तुम भौतिकवादी हो।। यू मैटीरियलिस्ट! तुम भौतिकवाद में मरे जा रहे हो, हम आध्यात्मिक लोग हैं! हम इतने आध्यात्मिक हैं कि हम पैदा भी नहीं करते; सिर्फ खाते हैं। खाना आध्यात्मिक काम है, पैदा करना भौतिक काम है। भोगना आध्यात्मिक काम है। श्रम करना? श्रम आध्यात्मिक लोग कभी नहीं करते। महात्मा कभी श्रम करते हैं? महात्मा कभी श्रम नहीं करते, हीन आत्माएं श्रम करती हैं। महात्मा भोग करते हैं। पूरा देश महात्मा हो गया है!

उन्नीस सौ बासठ में चीन में अकाल की हालत थी। ब्रिटेन के कुछ भलेमानुसों ने एक बड़े जहाज पर बहुत सा सामान, बहुत सा भोजन, कपड़े, दवाइयां भर कर वहां भेजे।

हम अगर होते तो चंदन-तिलक लगा कर, फूलमालाएं पहना कर उस जहाज की पूजा करते। लेकिन चीन ने उसको वापस भेज दिया और जहाज पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दियाः हम मर जाना पसंद करेंगे, लेकिन भीख स्वीकार नहीं कर सकते।

शक होता है कि यहां कुछ जवान लोग होंगे!

जवान ही यह हिम्मत कर सकता है कि भूखे मरते देश में, आया हो भोजन बाहर से, और लिख दे जहाज पर कि हम भूखों मर सकते हैं, लेकिन भीख नहीं मांग सकते।

भूखा मरना इतना बुरा नहीं है, भीख मांगना बहुत बुरा है।

लेकिन जवानी हो तो बुरा लगे, भीतर जवान खून हो तो चोट लगे, अपमान हो। हमारा अपमान ही नहीं होता! हम तो शांति से अपमान को झेलते चले जाते हैं। हम बड़े तटस्थ हैं अपमान को झेलने में, कुछ भी हो जाए, हम आंख बंद करके झेल लेते हैं। यही तो संतोष का, शांति का लक्षण है कि जो भी हो, उसको झेलते रहो,

बैठे रहो चुपचाप और झेलते रहो। हजारों साल से देश झेल-झेल कर मर गया है। तो कैसे हम स्वीकार कर लें कि देश के पास जवान आदमी हैं, युवक हैं? युवक देश के पास नहीं हैं।

और इसलिए पहला काम तथाकथित युवकों के लिए।। जो उम्र से युवक दिखाई पड़ते हैं।। वह यह है कि वे मानसिक यौवन को पैदा करने की देश में चेष्टा करें। वे शरीर के यौवन को मान कर तृप्त न हो जाएं। आत्मिक यौवन, वह स्प्रिचुअल यंगनेस पैदा करने का एक आंदोलन सारे देश में चलना चाहिए। हम इससे राजी नहीं होंगे कि एक आदमी शक्ल-सूरत से जवान दिखाई पड़ता है तो हम उसे जवान मान लें। हम इसकी फिक्र करेंगे कि हिंदुस्तान के पास जवान आत्मा हो।

स्वामी राम भारत के बाहर यात्रा को पहली दफा गए थे। जिस जहाज पर वे यात्रा कर रहे थे, उस पर एक बूढ़ा जर्मन था, जिसकी उम्र कोई नब्बे वर्ष होगी। उसके सारे बाल सफेद हो चुके थे, उसकी आंखों में नब्बे साल की स्मृतियों ने गहराइयां भर दी थीं, उसके चेहरे पर झुर्रियां थीं लंबे अनुभवों की। लेकिन वह जहाज के डेक पर बैठ कर चीनी भाषा सीख रहा था!

चीनी भाषा सीखनी साधारण मामला नहीं है, क्योंकि चीनी भाषा के पास कोई वर्णमाला नहीं है, कोई अ ब स नहीं होता चीनी भाषा के पास। वह पिक्टोरियल लैंग्वेज है, उसके पास तो चित्र हैं। साधारण आदमी को साधारण ज्ञान के लिए भी कम से कम पांच हजार चित्रों का ज्ञान चाहिए। और विशेष ज्ञान के लिए तो एक लाख चित्रों का ज्ञान हो, तब कोई आदमी चीनी भाषा का पंडित हो सकता है। दस वर्ष, पंद्रह वर्ष का श्रम मांगती है वह भाषा। नब्बे साल का बूढ़ा सुबह से बैठ कर सांझ तक चीनी भाषा सीख रहा है!

रामतीर्थ बेचैन हो गए। यह आदमी पागल है! नब्बे साल की उम्र में चीनी भाषा सीखने बैठे हो, कब सीख पाओगे? आशा नहीं है कि मरने के पहले सीख जाओ। और अगर कोई दूर की कल्पना भी करे कि यह आदमी जी जाएगा दस-पंद्रह साल, सौ साल पार कर जाएगा, जो कि भारतीय कभी कल्पना नहीं कर सकता कि सौ कैसे पार कर जाओगे। पैंतीस साल पार करना तो मुश्किल हो जाता है, सौ कैसे पार करोगे? लेकिन समझ लें भूल-चूक से भगवान की, यह सौ साल के पार निकल जाए, तो भी फायदा क्या है? जिस भाषा को सीखने में पंद्रह वर्ष खर्च हों, उसका उपयोग भी तो दस-पच्चीस वर्ष करने का मौका मिलना चाहिए। सीख कर भी फायदा क्या होगा? दो-तीन दिन देख कर रामतीर्थ की बेचैनी बढ़ गई। वह बूढ़ा तो आंख उठा कर भी नहीं देखता था कि कहां क्या हो रहा है, वह तो अपना सीखने में लगा था। तीसरे दिन उन्होंने जाकर उसे हिलाया और कहा कि महाशय, क्षमा करिए, मैं यह पूछना चाहता हूं कि आप यह क्या कर रहे हैं? इस उम्र में चीनी भाषा सीखने बैठे हैं? कब सीख पाइएगा? और सीख भी लिया तो इसका उपयोग कब करिएगा? आपकी उम्र क्या है?

तो उस बूढ़े ने कहा, उम्र? मैं काम में इतना व्यस्त रहा कि उम्र का हिसाब रखने का मुझे मौका नहीं मिला। उम्र अपना हिसाब रखती होगी। हमें फुर्सत कहां है कि हम उम्र का हिसाब रखें! और फायदा क्या है उम्र का हिसाब रखने में? मौत जब आनी है, तब आनी है। तुम चाहे कितना ही हिसाब रखो, कि कितने हो गए, कितने हो गए, उससे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। मुझे फुर्सत नहीं मिली उम्र का हिसाब रखने की। लेकिन जरूर नब्बे तो पार कर गया हूं।

रामतीर्थ ने कहा, फिर यह सीख कर क्या फायदा? बूढ़े हो गए हो। अब कब सीख पाओगे?

उस बूढ़े आदमी ने क्या कहा? उस बूढ़े आदमी ने कहा, मरने का मुझे खयाल नहीं आता जब तक मैं सीख रहा हूं; जब सीखना खत्म हो जाएगा तब सोचूंगा मरने की बात। अभी तो सीखने में जिंदगी लगी है। अभी तो

मैं बच्चा हूं, क्योंकि मैं सीख रहा हूं। बच्चे सीखते हैं। लेकिन उस बूढ़े ने कहा कि मैं चूंकि सीख रहा हूं, इसलिए बच्चा हूं।

यह आध्यात्मिक जगत में परिवर्तन हो गया। उसने कहा कि चूंकि अभी मैं सीख रहा हूं और अभी सीख नहीं पाया, अभी तो जिंदगी की पाठशाला में प्रवेश किया है, अभी तो बच्चा हूं, अभी मरने का कैसे सोचूं? जब सब सीख लूंगा, तो सोचूंगा मरने की बात।

फिर उस बूढ़े ने कहा, मौत तो हर रोज सामने खड़ी है। जिस दिन पैदा हुआ था, उस दिन भी इतनी ही सामने खड़ी थी, जितनी अभी खड़ी है। अगर मौत से डर जाता तो उसी दिन सीखना बंद कर देता। सीखने का क्या फायदा था, मौत आ सकती थी कल। लेकिन नब्बे साल का अनुभव मेरा कहता है कि मैं नब्बे साल मौत को जीता हूं। रोज मौत का डर रहा है कि कल आ जाएगी, लेकिन आई नहीं। नब्बे साल तक मौत नहीं आई तो मुझे विश्वास पड़ता है कि नब्बे साल के अनुभव को मानूं, कल भी कैसे आ पाएगी? नब्बे साल का अनुभव कहता है कि अब तक नहीं आई तो कल भी कैसे आ पाएगी? अनुभव को मानता हूं। नब्बे साल तक डर फिजूल था।

वह बूढ़ा पूछने लगा रामतीर्थ से कि आपकी उम्र क्या है?

रामतीर्थ तो घबरा ही गए थे उसकी बात सुन कर। उनकी उम्र केवल तीस वर्ष थी।

उस बूढ़े ने कहा, तुम्हें देख कर, तुम्हारे भय को देख कर मैं कह सकता हूं कि भारत बूढ़ा क्यों हो गया है। तीस साल का आदमी मौत की सोच रहा है! मर गया। मौत की सोचता ही कोई तब है, जब मर जाता है। तीस साल का आदमी सोचता है कि सीखने से क्या फायदा, मौत करीब आ रही है! यह आदमी जवान नहीं रहा।

उस बूढ़े ने कहा, मैं समझ गया कि भारत बूढ़ा क्यों हो गया है। इन्हीं गलत धारणाओं के कारण।

भारत को एक युवा अध्यात्म चाहिए। युवा अध्यात्म! बूढ़ा अध्यात्म हमारे पास बहुत है। हमारे पास ऐसा अध्यात्म है, जो बूढ़ा करने की कीमिया है, केमिस्ट्री है। हमारे पास ऐसी आध्यात्मिक तरकीबें हैं कि किसी भी जवान के आस-पास उन तरकीबों का उपयोग करो, वह फौरन बूढ़ा हो जाएगा। हमने बूढ़े होने का राज खोज लिया है, सीक्रेट खोज लिया है।

बूढ़े होने के राज क्या हैं?

बूढ़े होने का राज हैः जीवन पर ध्यान मत रखो, मौत पर ध्यान रखो। पहला सीक्रेट। जिंदगी पर ध्यान मत देना, ध्यान रखना मौत का। जिंदगी की खोज मत करना, खोज करना मोक्ष की। इस पृथ्वी की फिक्र मत करना, फिक्र करना परलोक की, स्वर्ग की। यह बूढ़े होने का पहला सीक्रेट है। जिन-जिन को बूढ़ा होना हो, इसको नोट कर लें। कभी जिंदगी की तरफ मत देखना। अगर फूल खिल रहा हो, तो तुम खिलते फूल की तरफ मत देखना, तुम बैठ कर सोचना कि जल्दी ही यह मुरझा जाएगा। यह तरकीब है।

अगर एक गुलाब के पौधे के पास खड़े हो, तो फूलों की गिनती मत करना, कांटों की गिनती कर लेना।। कि सब असार है, कांटे ही कांटे पैदा होते हैं। एक फूल खिलता है मुश्किल से हजार कांटों में। हजार कांटों की गिनती कर लेना। उससे जिंदगी असार सिद्ध करने में बड़ी आसानी मिलेगी।

अगर दिन और रात को देखो, तो ऐसा कभी मत देखना कि दो दिनों के बीच में एक रात है; हमेशा ऐसा देखना कि दो रातों के बीच में एक छोटा सा दिन है। बूढ़े होने की तरकीब कह रहा हूं। जिंदगी में जहां-जहां अंधेरा हो, उसको मैग्नीफाई करना। बड़ा दिखाने वाला कांच अपने पास रखना, जहां अंधेरा दिखाई पड़े, फौरन मैग्नीफाई ग्लास लगा देना, बड़ा भारी अंधेरा देखना। और जहां रोशनी दिखाई पड़े, वहां छोटा कर देने वाला ग्लास अपने पास रखना, जो जल्दी से रोशनी को छोटा कर दे। जहां फूल दिखाई पड़ें, गिनती मत करना, फौरन

सोच लेना कि फूल! क्या रखा है फूल में? क्षणभंगुर है, अभी खिला है, अभी मुरझा जाएगा। कांटा! कांटा स्थायी है, शाश्वत है, सनातन है; न कभी खिलता है, न कभी मुरझाता है। हमेशा है, इन बातों पर ध्यान देने से आदमी बड़ी जल्दी बूढ़ा हो जाता है।

मैंने सुना है कि न्यूयार्क की एक सौवीं मंजिल से एक आदमी गिर रहा था। सौवीं मंजिल से वह आदमी गिर रहा था, जब वह पचासवीं मंजिल के पास से गुजर रहा था खिड़की के, तो एक आदमी ने झांक कर उससे चिल्ला कर पूछा कि दोस्त क्या हाल हैं?

उसने कहा, अभी तक तो सब ठीक है।

यह आदमी गड़बड़ आदमी है। यह आदमी जवान होने का ढंग जानता है। लेकिन यह ठीक नहीं है। उस आदमी ने कहा, अभी तक सब ठीक है। अभी जमीन तक पहुंचे नहीं हैं, जब पहुंचेंगे तब देखेंगे। अभी पचासवीं खिड़की तक सब ठीक चल रहा है।। ओ के! यह आदमी जवान होने की तरकीब जानता है।

लेकिन हमको ऐसी तरकीबें कभी नहीं सीखनी चाहिए। हमें तो बूढ़े होने के रास्ते पर चलना चाहिए। बूढ़े होने का रास्ता।। पहली बात, कभी जिंदगी में जो सुंदर हो उसकी तरफ ध्यान मत देना, जो असुंदर हो उसको खोजबीन करना। अगर किसी गांव में आप जाएं और कोई आदमी आकर कहे कि फलां आदमी बहुत बड़ा संगीतज्ञ है, इतनी अदभुत बांसुरी बजाता है! तो फौरन उससे कहना कि वह बांसुरी क्या खाक बजाएगा। वह आदमी चोर है, बेईमान है, बांसुरी कैसे बजा सकता है! आप धोखे में पड़ गए होंगे, वह आदमी पक्का चोर-बेईमान है, वह बांसुरी नहीं बजा सकता।

यह बूढ़े होने की तरकीब है।

अगर जवान आदमी उस गांव में जाएगा और कोई उससे कहेगा, उस आदमी को जानते हैं? वह बड़ा चोर-बेईमान है। तो वह जवान आदमी कहेगा, यह कैसे हो सकता है कि वह चोर और बेईमान हो! मैंने उसे बड़ी सुंदर बांसुरी बजाते देखा है। इतनी अदभुत जो बांसुरी बजाता है, वह चोर नहीं हो सकता।

बूढ़े के जिंदगी को देखने का ढंग है।। दुखद को देखना, अंधेरे को देखना, मौत को देखना, कांटे को देखना। हिंदुस्तान हजारों साल से दुखद को देख रहा है। जन्म भी दुख है, जीवन भी दुख है, मरण भी दुख है! प्रियजन का बिछुड़ना दुख है, अप्रियजन का मिलना दुख है, सब दुख है! मां के पेट में दुख झेलो, फिर जन्म का दुख झेलो, फिर बड़े होने का दुख झेलो, फिर जिंदगी के गृहस्थी के चक्कर झेलो, फिर बुढ़ापे की बीमारियां झेलो, फिर मौत झेलो, फिर जलने की आग में अंतिम पीड़ा झेलो! ऐसा जीवन एक दुख की लंबी कथा है। बूढ़ा होना है तो इसका स्मरण करना चाहिए।

बूढ़ा होना है तो बगीचों में कभी नहीं जाना चाहिए, हमेशा मरघट पर बैठ कर ध्यान करना चाहिए, जहां आदमी जलाए जाते हों। सुंदर से बचना चाहिए, असुंदर को देखना चाहिए। विकृत को देखना चाहिए, स्वस्थ को छोड़ना चाहिए। सुख मिले तो कहना चाहिए।। क्षणभंगुर है; अभी है, अभी खत्म हो जाएगा। दुख मिले तो छाती से लगा कर बैठ जाना चाहिए। और सदा आंखें रखनी चाहिए जीवन के उस पार, कभी इस जीवन पर नहीं। इस जीवन को समझना चाहिए एक वेटिंग रूम है।

जैसे बड़ौदा के स्टेशन पर वेटिंग रूम हो, उसमें बैठे हैं आप थोड़ी देर। वहीं छिलके फेंक रहे हैं, वहीं पान थूक रहे हैं। क्योंकि हमको क्या करना है, अभी थोड़ी देर में हमारी ट्रेन आएगी और हम चले जाएंगे! तुमसे पहले जो बैठा था, वह भी वेटिंग रूम के साथ यही सदव्यवहार कर रहा था, तुम भी वही सदव्यवहार करो, तुम्हारे

बाद वाला भी वही करेगा। वेटिंग रूम गंदगी का एक घर बन जाएगा। क्योंकि किसी को क्या मतलब है! हमको तो थोड़ी देर रुकना है तो आंख बंद करके राम-राम जप कर गुजार देंगे। अभी ट्रेन आती है, चले जाएंगे।

जिंदगी के साथ जिन लोगों की आंखें मौत के पार लगी हैं, उनका व्यवहार वेटिंग रूम का व्यवहार है। वे कहते हैं, क्षण भर की जिंदगी है; अभी जाना है। क्या करना है हमें! हिंदुस्तान के संत-महात्मा यही समझा रहे हैं लोगों को।। क्षणभंगुर है जिंदगी, इसके माया-मोह में मत पड़ना। ध्यान वहां रखना।। मौत पर, आगे, मौत के बाद। इस छाया में सारा देश बूढ़ा हो गया है।

अगर जवान होना है तो जिंदगी को देखना, मौत को लात मार देना। मौत से क्या प्रयोजन है? जब तक जिंदा हैं, तब तक जिंदा हैं। तब तक मौत नहीं है।

सुकरात मर रहा था। ठीक मरते वक्त, जब उसके लिए बाहर जहर घोला जा रहा है। वह जहर घोलने वाला जो है वह धीरे-धीरे घोल रहा है। वह यह सोचता है कि जितनी देर सुकरात और जिंदा रह ले तो अच्छा, जितनी देर लग जाए। वक्त हो गया है, जहर आना चाहिए। सुकरात उठ-उठ कर बाहर जाता है और उससे पूछता है, मित्र, कितनी देर और है?

उस आदमी ने कहा, तुम पागल हो गए हो सुकरात? मैं देर लगा रहा हूं इसलिए कि थोड़ी देर तुम और जिंदा रह लो, थोड़ी देर सांस तुम्हारे भीतर और जाए, थोड़ी देर सूरज की रोशनी और देख लो, थोड़ी देर खिलते फूलों को, आकाश को, मित्रों की आंखों में झांक लो, बस थोड़ी देर और। नदी भी समुद्र में गिरने के पहले पीछे लौट कर देख लेती है। तुम थोड़ी देर लौट कर देख लो। मैं थोड़ी देर लगाता हूं। तुम जल्दी क्यों कर रहे हो? तुम इतने दीवाने क्यों हुए जा रहे हो?

सुकरात ने कहा कि मैं जल्दी क्यों कर रहा हूं! मेरे प्राण तड़पे जा रहे हैं मौत को जानने को। नई चीज को जानने की मेरी हमेशा से इच्छा रही है। मौत बड़ी नई चीज है; सोचता हूं, देखूं क्या है!

यह आदमी जवान है, यह आदमी बूढ़ा नहीं है। यह मौत को भी देखने के लिए इसकी आतुरता।। नये को!

मित्र कहने लगे कि थोड़ी देर और जी लो।

सुकरात ने कहा, जब तक मैं जिंदा हूं जिंदा हूं। मैं यह देखना चाहता हूं कि जहर पीने पर मरता हूं कि जिंदा ही रहता हूं!

लोगों ने कहा, अगर मर गए?

तो उसने कहा, जब मर ही गए तो फिक्र ही खत्म हो गई। क्योंकि हम हैं ही नहीं, चिंता का कोई कारण न रहा। और जब तक जिंदा हैं, तब तक जिंदा हैं। जब मर गए तो मर ही गए, चिंता की कोई बात नहीं है, खत्म हो गई बात। लेकिन जब तक मैं जिंदा हूं, जिंदा हूं! तब तक मैं मरा हुआ नहीं हूं! और तब मैं पहले से क्यों मर जाऊं?

मित्र सब मरे हुए बैठे हैं पास, रो रहे हैं, जहर की घबराहट पकड़ रही है। वह सुकरात प्रसन्न है! वह कहता है, जब तक मैं जिंदा हूं, तब तक मैं जिंदा हूं, तब तक जिंदगी को जानूं। और मैं सोचता हूं कि शायद मौत भी जिंदगी में एक घटना होगी तो उसको भी जानूं।

सुकरात को बूढ़ा नहीं किया जा सकता। मौत सामने खड़ी हो जाए तो भी वह बूढ़ा नहीं होता।

और हम? जिंदगी सामने खड़ी रहती है और बूढ़े हो जाते हैं। यह रुख भारत में युवा मस्तिष्क को पैदा नहीं होने देता है। जीवन का दुखद, जीवन का विषादपूर्ण चित्र फाड़ कर फेंक दो! आग लगा दो उसमें! और जो

भी जिंदगी के दुख और जिंदगी के विषाद को बढ़ा-चढ़ा कर बतलाते हैं, जिंदगी के दुश्मन हैं, देश में युवा को पैदा होने देने में दुश्मन हैं। वे युवक को पैदा होने के पहले बूढ़ा बना देते हैं।

अभी मैं कुछ दिन पहले भावनगर था। एक छोटी सी लड़की ने, तेरह-चौदह साल की उम्र उसकी, उसने मुझे आकर कहा कि मुझे आवागमन से छुटकारे का रास्ता बताइए!

तेरह-चौदह साल की लड़की कहती है कि मैं आवागमन से कैसे छूटूं! फिर इस मुल्क में कैसे जवानी पैदा होगी? तेरह-चौदह साल की लड़की बूढ़ी हो गई! वह कहती है कि मैं मुक्त कैसे होऊं? जीवन से छूटने का विचार करने लगी है! अभी जीवन के द्वार पर उसने थपकी भी नहीं दी, अभी जीवन की खिड़की भी नहीं खुली, अभी जीवन की वीणा भी नहीं बजी, अभी जीवन के फूल भी नहीं खिले। वह द्वार के बाहर ही पूछने लगी।। छुटकारा, मुक्ति, मोक्ष कैसे मिलेगा?

जहर डाल दिया होगा किसी ने उसके दिमाग में। मां-बाप ने, गुरुओं ने, शिक्षकों ने उसको पाय.जनस किया। उसकी जवानी पैदा नहीं होगी अब। अब वह बूढ़ी ही जीएगी। उसका विवाह भी होगा तो वह एक बूढ़ी औरत का विवाह है, एक जवान लड़की का नहीं। उसके घर के द्वार पर शहनाइयां बजेंगी तो एक बूढ़ी औरत सुनेगी उन शहनाइयों को, एक जवान लड़की नहीं। उन शहनाइयों से भी मौत की आवाज सुनाई पड़ेगी, जीवन का संगीत नहीं। वह बूढ़ी हो गई!

पहली बात, अगर बूढ़े होना है तो मौत पर ध्यान रखना, जीवन पर नहीं। और अगर जवान होना है तो मौत को लात मार देना। वह जब आएगी, तब मुकाबला कर लेंगे उससे। जब तक जीते हैं, तब तक पूरी तरह से जीएंगे, उसकी टोटैलिटी में जीवन के रस को खोजेंगे, जीवन के आनंद को खोजेंगे।

रवींद्रनाथ मर रहे थे। एक मित्र, बूढ़े मित्र आए और उन्होंने कहा कि अब मरते वक्त तो भगवान से प्रार्थना कर लो कि अब दुबारा जीवन में न भेजे। अब आखिरी वक्त प्रार्थना कर लो कि अब आवागमन से छुटकारा हो जाए। अब इस पाप, इस गंदगी में चक्कर में न आना पड़े।

रवींद्रनाथ ने कहा, क्या कहते हैं आप? मैं और यह प्रार्थना करूं? मैं तो मन ही मन यह कह रहा हूं कि हे प्रभु, अगर तूने मुझे योग्य पाया हो, तो बार-बार तेरी पृथ्वी पर भेज देना। बड़ी रंगीन थी, बड़ी सुंदर थी! ऐसे फूल मैंने देखे, ऐसे चांद, ऐसे तारे, ऐसी आंखें, ऐसे सुंदर चेहरे।। कि मैं दंग रह गया हूं, मैं हैरान हो गया हूं, मैं आनंद से भर गया हूं। अगर तूने मुझे योग्य पाया हो, तो हे परमात्मा, बार-बार इस दुनिया में मुझे भेज देना। मैं तो यह प्रार्थना कर रहा हूं! मैं तो डरा हुआ हूं कि कहीं मैं अपात्र न सिद्ध हो जाऊं कि मुझे दोबारा न भेजा जाए।

रवींद्रनाथ को बूढ़ा बनाना बहुत मुश्किल है। शरीर बूढ़ा हो जाएगा, लेकिन इस आदमी के भीतर जो आत्मा है वह जवान है, वह जीवन की मांग कर रही है।

रवींद्रनाथ ने मरने के कुछ ही घड़ी पहले कुछ कड़ियां लिखवाईं। उनमें दो कड़ियां हैं। देखा तो मैं नाचने लगा! क्या प्यारी बात कही है!

किसी मित्र ने रवींद्रनाथ को कहा कि तुम तो महाकवि हो, तुमने छह हजार गीत लिखे जो संगीत में बांधे जा सकते हैं! शेली को लोग पश्चिम में कहते हैं महाकवि, उसके तो सिर्फ दो हजार गीत संगीत में बंध सकते हैं। तुम्हारे तो छह हजार गीत! तुमसे बड़ा कोई कवि दुनिया में कभी नहीं हुआ।

रवींद्रनाथ की आंखों से आंसू बहने लगे। और रवींद्रनाथ ने कहा, क्या कहते हो? मैं तो भगवान से कह रहा हूं कि अभी मैंने गीत गाया कहां था, अभी तो साज बिठा पाया था और विदा का क्षण आ गया! अभी तो ठोंक-पीट कर तंबूरा ठीक किया था सिर्फ, अभी मैंने गीत गाया कहां था! अभी तो तंबूरे की तैयारी की थी। अब

ठोंक-पीट कर तैयार हो गया था, साज बैठ गया था, अब मैं गाने की चेष्टा करता, और यह तो विदा का क्षण आ गया! और मेरे तंबूरे के ठोंकने-पीटने को लोगों ने समझ लिया कि यह महाकवि हो गया है। भगवान से कह रहा हूं कि संगीत का साज तैयार हो गया और मुझे विदा कर रहे हो? अब तो मौका आया था कि मैं गीत गाऊं।

मरता हुआ रवींद्रनाथ कहता है कि अभी तो मौका आया था कि मैं गीत गाऊं। वह यह कह रहा है कि अभी तो मौका आया था कि मैं जवान हुआ था। वह यह कह रहा है कि अब तो मौका आया था कि वीणा तैयार हो गई थी और मुझे विदा कर रहे हो! बूढ़ा आदमी यह कह सकता है? तो फिर वह आदमी बूढ़ा नहीं है।

अगर जवान होना है, तो जिंदगी को उसको सामने से पकड़ लेना पड़ेगा। एक-एक क्षण जिंदगी भागी चली जा रही है, उसे मुट्ठी में पकड़ लेना पड़ेगा, उसे जीने की पूरी चेष्टा करनी पड़ेगी। और जी केवल वे ही सकते हैं, जो उसमें रस का दर्शन करते हैं। और वहां दोनों चीजें हैं जिंदगी के रास्ते पर।। कांटे भी हैं और फूल भी। जिन्हें बूढ़ा होना हो वे कांटों की गिनती कर लें। जिन्हें जवान होना हो वे फूलों को गिन लें।

और मैं कहता हूं कि करोड़-करोड़ कांटे भी फूल की एक पंखुड़ी के मुकाबले क्या हैं? एक गुलाब के फूल की छोटी सी पंखुड़ी इतना बड़ा मिरेकल है, इतना बड़ा चमत्कार है कि करोड़ों कांटे भी इकट्ठे कर लो, उससे क्या सिद्ध होता है? उससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता। उससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि बड़ी अदभुत है यह दुनिया, जहां इतने कांटे हैं वहां भी मखमल जैसा गुलाब का फूल पैदा हो सकता है। उससे सिर्फ इतना सिद्ध होता है, और कुछ भी सिद्ध नहीं होता।

लेकिन यह देखने की दृष्टि पर निर्भर है कि हम कैसे देखते हैं।

पहली बात, जिंदगी पर ध्यान चाहिए।। मेडिटेशन ऑन लाइफ।। मौत पर नहीं। तो आदमी जवान से जवान होता चला जाता है। बुढ़ापे के अंतिम क्षण तक मौत के द्वार पर खड़ा होकर भी वैसा आदमी जवान होता है। दूसरी बात, जो आदमी जीवन में सुंदर को देखता है, जो आदमी जवान है, वह आदमी असुंदर को मिटाने के लिए लड़ता भी है। जवानी फिर देखती नहीं, जवानी लड़ती भी है। जवानी स्पेक्टेटर नहीं है, जवानी तमाशबीन नहीं है कि तमाशा देख रहे हैं खड़े होकर। जवानी का मतलब है जीना, तमाशगिरी नहीं। जवानी का मतलब है सृजन। जवानी का मतलब है सम्मिलित होना।

तो पार्टिसिपेशन दूसरा सूत्र है। खड़े होकर रास्ते के किनारे अगर देखते हो जवानी की यात्रा को, जीवन की यात्रा को, तो तुम तमाशबीन हो, तुम जवान नहीं हो; पैसिव ऑनलुकर, एक निष्क्रिय देखने वाले। निष्क्रिय देखने वाला आदमी जवान नहीं हो सकता। जवान सम्मिलित होता है जीवन में।

और जिस आदमी को सौंदर्य से प्रेम है, जिस आदमी को जीवन के रस और आनंद से प्रेम है, जिस आदमी को जीवन का आह्लाद है, वह जीवन को आह्लादित बनाने के लिए श्रम करता है, सुंदर बनाने के लिए श्रम करता है। वह जीवन की कुरूपता से लड़ता है, वह जीवन को कुरूप करने वालों के खिलाफ विद्रोह करता है। कितनी अग्लीनेस है! कितनी कुरूपता है समाज में और जिंदगी में!

अगर तुम्हें प्रेम है सौंदर्य से, तो एक युवक एक सुंदर लड़की की तस्वीर लेकर बैठ जाए और पूजा करने लगे, एक युवती एक सुंदर युवक की तस्वीर लेकर बैठ जाए और कविताएं करने लगे, इतने से जवानी का काम पूरा नहीं हो जाता। सौंदर्य के प्रेम का मतलब हैः सौंदर्य को पैदा करो, क्रिएट करो; जिंदगी को सुंदर बनाओ। आनंद की उपलब्धि और आनंद की आकांक्षा का अर्थ हैः आनंद को बिखराओ। फूलों को चाहते हो तो फूलों को पैदा करने की चेष्टा में संलग्न हो जाओ। जैसा तुम चाहते हो जिंदगी को वैसा जिंदगी को बनाओ। जवानी मांग करती है कि तुम कुछ करो, खड़े होकर देखते मत रहो।

हिंदुस्तान की जवानी तमाशबीन है। हम देखते रहते हैं खड़े होकर, जीवन का जैसे कोई जुलूस जा रहा है। पैसिव, रुके हैं, देख रहे हैं; कुछ भी हो रहा है! सारे मुल्क में कुछ भी हो रहा है। शोषण हो रहा है, जवान खड़ा हुआ देख रहा है! अन्याय हो रहा है, जवान खड़ा हुआ देख रहा है! बेवकूफियां हो रही हैं, जवान खड़ा देख रहा है! बुद्धिहीन लोग देश को नेतृत्व दे रहे हैं, जवान खड़ा हुआ देख रहा है! जड़ता धर्मगुरु बन कर बैठी है, जवान खड़ा हुआ देख रहा है! सारे मुल्क के हितों को नष्ट किया जा रहा है, और जवान खड़ा हुआ देख रहा है! यह कैसी जवानी है?

कुरूपता से लड़ना पड़ेगा, असौंदर्य से लड़ना पड़ेगा, शोषण से लड़ना पड़ेगा, जिंदगी को विकृत करने वाले तत्वों से लड़ना पड़ेगा, जिंदगी के खून को पीने वाले तत्वों से लड़ना पड़ेगा। तो आदमी जवान होता है। वह सागर की लहरों पर जीता है फिर। फिर तूफानों में जीता है। फिर आकाश में उसकी उड़ान होनी शुरू होती है। लेकिन क्या लड़ोगे तुम? व्यक्तिगत लड़ाई ही नहीं है कोई, सामूहिक लड़ाई की तो बात अलग है। कोई फाइट नहीं है! और बिना फाइट के, बिना लड़ाई के जवानी निखरती नहीं। जवानी सदा लड़ती है और निखरती है। जितना लड़ती है, उतना निखरती है। सुंदर के लिए, सत्य के लिए, शिव के लिए जवानी जितनी लड़ती है, उतनी निखरती है। लेकिन क्या लड़ोगे?

तुम्हारे पिता आ जाएंगे, तुम्हारी गर्दन में रस्सी डाल कर कहेंगे।। इस लड़की से विवाह कर लो! और तुम घोड़े पर बैठ जाओगे। तुम जवान हो? और तुम्हारे बाप जाकर कहेंगे कि दस हजार रुपया लेंगे इस लड़की से! और तुम मजे से मन में गिनती करोगे कि दस हजार में स्कूटर खरीदें कि क्या करें? तुम जवान हो? ऐसी जवानी दो कौड़ी की जवानी है। जिस लड़की को तुमने कभी चाहा नहीं, जिस लड़की को तुमने कभी प्रेम नहीं किया, जिस लड़के को तुमने कभी नहीं चाहा और जिस लड़के को तुमने कभी छुआ नहीं, उस लड़के से विवाह करने के लिए या उस लड़की से विवाह करने के लिए तुम पैसे के लिए राजी हो रहे हो? समाज की व्यवस्था के लिए राजी हो रहे हो? तो तुम जवान नहीं हो। तुम्हारी जिंदगी में कभी भी वे फूल नहीं खिलेंगे जो युवा मस्तिष्क जानता है। तुम कभी उन आकाश को नहीं छुओगे जो युवा मस्तिष्क छूता है। तुम हो ही नहीं; तुम एक मिट्टी के लोंदे हो, जिसको कहीं भी सरकाया जा रहा है और कहीं भी लिया जा रहा है। तुम चुपचाप मानते चले जा रहे हो कुछ भी! न तुम्हारे मन में संदेह है, न जिज्ञासा है, न संघर्ष है, न पुकार है, न पूछ है, न इंक्वायरी है।। कि यह क्या हो रहा है? कुछ भी हो रहा है, हम देख रहे हैं खड़े होकर! नहीं, ऐसे नहीं जवानी पैदा होती है।

इसलिए दूसरा सूत्र तुमसे कहता हूं और वह यह कि जवानी संघर्ष से पैदा होती है। जवानी संघर्ष से पैदा होती है। संघर्ष गलत के लिए भी हो सकता है, और तब जवानी कुरूप हो जाती है। संघर्ष बुरे के लिए भी हो सकता है, तब जवानी विकृत हो जाती है। संघर्ष अंधेरे के लिए भी हो सकता है, तब जवानी आत्मघात कर लेती है। लेकिन संघर्ष जब सत्य के लिए, सुंदर के लिए, श्रेष्ठ के लिए होता है, संघर्ष जब परमात्मा के लिए होता है, संघर्ष जब जीवन के लिए होता है, तब जवानी सुंदर, स्वस्थ, सत्य होती चली जाती है।

हम जिसके लिए लड़ते हैं, वही हम हो जाते हैं। इसे ध्यान में रख लेनाः हम जिसके लिए लड़ते हैं, अंततः हम वही हो जाते हैं। लड़ो सुंदर के लिए, और तुम सुंदर हो जाओगे। लड़ो सत्य के लिए, और तुम सत्य हो जाओगे। लड़ो श्रेष्ठ के लिए, और तुम श्रेष्ठ हो जाओगे। और मत लड़ो।। तुम खड़े-खड़े सड़ोगे और मर जाओगे और कुछ भी नहीं होओगे। जिंदगी संघर्ष है और जिंदगी संघर्ष से ही पैदा होती है। फिर जैसा हम संघर्ष करते हैं, हम वैसे ही हो जाते हैं।

हिंदुस्तान में कोई लड़ाई नहीं है, कोई फाइट नहीं है! हिंदुस्तान के मन में कोई भी लड़ाई नहीं है! सब कुछ हो रहा है, अजीब हो रहा है। हम सब जानते हैं, देखते हैं।। सब हो रहा है। और होने दे रहे हैं! अगर हिंदुस्तान की जवानी खड़ी हो जाए तो हिंदुस्तान में फिर ये सब नासमझियां नहीं हो सकतीं जो हो रही हैं। एक आवाज में टूट जाएंगी। चूंकि जवान नहीं है, इसलिए कुछ भी हो रहा है।

तो मैं यह दूसरी बात कहता हूंः लड़ाई के मौके खोजना।। सत्य के लिए, सच्चाई के लिए, ईमानदारी के लिए। अगर अभी नहीं लड़ सकोगे तो बुढ़ापे में कभी नहीं लड़ सकोगे। अभी तो मौका है कि ताकत है, अभी मौका है कि शक्ति है, अभी मौका है कि अनुभव ने तुम्हें बेईमान नहीं बनाया है। अभी तुम निर्दोष हो, अभी तुम लड़ सकते हो, अभी तुम्हारे भीतर आवाज उठ सकती है कि यह गलत है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ेगी, अनुभव बढ़ेगा, चालाकी बढ़ेगी।

अनुभव से ज्ञान नहीं बढ़ता, सिर्फ कनिंगनेस बढ़ती है, सिर्फ चालाकी बढ़ती है।

अनुभवी आदमी चालाक हो जाता है। उसकी लड़ाई कमजोर पड़ जाती है, वह अपना हित देखने लगता है।। कि हमें क्या मतलब है! अपनी फिक्र करो, इतनी बड़ी दुनिया की झंझट में मत पड़ो।

जवान आदमी जूझ सकता है, अभी उसे कुछ पता नहीं। अभी उसे अनुभव नहीं है चालाकियों का।

इसके पहले कि चालाकियों में तुम दीक्षित हो जाओ और तुम्हारे उपकुलपति और तुम्हारे शिक्षक और तुम्हारे मां-बाप दीक्षांत समारोह में तुम्हें चालाकियों का सर्टिफिकेट दे दें, उसके पहले लड़ना। शायद लड़ाई तुम्हारी जारी रहे, तो तुम चालाकियों में नहीं, जीवन के अनुभवों में दीक्षित हो जाओ। और शायद लड़ाई तुम्हारी जारी रहे, तो वह जो छिपी है भीतर आत्मा, वह निखर आए, वह प्रकट हो जाए, उसके दर्शन तुम्हें हो जाएं। और जिस दिन कोई आदमी अपने भीतर छिपे हुए जीवन का पूरा अनुभव करता है, उसी दिन पूरे अर्थों में जीवित होता है।

और मैं कहता हूं, जो आदमी एक दफे एक क्षण को भी पूरे अर्थों में जीवन का रस जान लेता है, उसकी फिर कोई मृत्यु कभी नहीं होती। वह अमृत से संबंधित हो जाता है।

युवा होना अमृत से संबंधित होने का मार्ग है।

युवा होना आत्मा की खोज है।

युवा होना परमात्मा के मंदिर पर प्रार्थना है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में तुम सबके भीतर बैठे परमात्मा के लिए प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सातवां प्रवचन

युवा चित्त का जन्म

मेरे प्रिय आत्मन्!

सोरबोर्न विश्वविद्यालय की दीवालों पर जगह-जगह एक नया ही वाक्य लिखा हुआ दिखाई पड़ता है। जगह-जगह दीवालों पर, द्वारों पर लिखा हैः प्रोफेसर्स, यू आर ओल्ड! अध्यापकगण, आप बूढ़े हो गए हैं!

सोरवान विश्वविद्यालय की दीवालों पर जो लिखा है, वह मनुष्य की पूरी संस्कृति, पूरी सभ्यता की दीवालों पर लिखा जा सकता है। सब कुछ बूढ़ा हो गया है, अध्यापक ही नहीं। मनुष्य का मन भी बूढ़ा हो गया है।

मैंने सुना है कि लाओत्से के संबंध में एक कहानी है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ। यह कहानी कैसे सच होगी, कहना मुश्किल है। सुना नहीं कि कभी कोई आदमी बूढ़ा ही पैदा हुआ हो। शरीर से तो कभी नहीं सुना है कि कोई आदमी बूढ़ा पैदा हुआ हो!

लेकिन ऐसा हो सकता है कि मन से आदमी पैदा होते ही बूढ़ा हो जाए। और लाओत्से भी अगर बूढ़ा पैदा हुआ होगा, तो इसी अर्थ में कि वह कभी बच्चा नहीं रहा होगा, कभी जवान नहीं हुआ होगा। चित्त के जो वार्धक्य के, ओल्डनेस के जो लक्षण हैं, वे पहले दिन से ही उसमें प्रविष्ट हो गए होंगे।

लेकिन लाओत्से बूढ़ा पैदा हुआ हो या न हुआ हो, आज जो मनुष्यता हमारे सामने है, वह बूढ़ी ही पैदा होती है। हमने बूढ़े होने के सूत्र पकड़ रखे हैं। और इसके पहले मैं कहूं कि युवा चित्त का जन्म कैसे हो, मैं इस बाबत में कहूंगा कि चित्त बूढ़ा कैसे हो जाता है। क्योंकि बहुत गहरे में चित्त का बूढ़ा होना, मनुष्य की चेष्टा से होता है। चित्त अपने आप में सदा जवान है। शरीर की तो मजबूरी है कि वह बूढ़ा हो जाता है; लेकिन चेतना की कोई मजबूरी नहीं है कि वह बूढ़ी हो जाए। चेतना युवा ही है। माइंड तो यंग ही है, वह कभी बूढ़ा नहीं होता। लेकिन अगर हम व्यवस्था करें तो उसे भी बूढ़ा बना सकते हैं।

इसलिए जवान चित्त कैसे पैदा हो, यंग माइंड कैसे पैदा हो, यह सवाल उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना गहरे में सवाल यह है कि चित्त को बूढ़ा बनाने की तरकीबों से कैसे बचा जाए। अगर हम चित्त को बूढ़ा बनाने की तरकीबों से बच जाते हैं, तो जवान चित्त अपने आप पैदा हो जाता है।

चित्त जवान है ही। चित्त कभी बूढ़ा होता ही नहीं। वह सदा ताजा है। चेतना सदा ताजी है। चेतना नई है, रोज नई है। लेकिन हमने जो व्यवस्था की है, वह उसे रोज बूढ़ा और पुराना करती चली जाती है। तो पहले मैं समझाना चाहूंगा कि चित्त के बूढ़ा होने के सूत्र क्या हैं।

पहला सूत्र हैः फियर, भय। जिस चित्त में जितना ज्यादा भय प्रविष्ट हो जाएगा, वह उतना ही पैरालाइज्ड और क्रिपिल्ड हो जाएगा। वह उतना ही बूढ़ा हो जाएगा।

और हमारी पूरी संस्कृति।। आज तक के मनुष्य की पूरी संस्कृति।। भय पर खड़ी हुई है। हमारा तथाकथित सारा धर्म भय पर खड़ा हुआ है। हमारे भगवान की मूर्तियां हमने भय के कारखाने में ढाली हैं। वहीं वे निर्मित हुई हैं। हमारी प्रार्थनाएं, हमारी पूजाएं।। थोड़ा हम भीतर प्रवेश करें, तो भय की आधारशिलाओं पर खड़ी हुई मिल जाएंगी। हमारे संबंध, हमारा परिवार, हमारे राष्ट्र, बहुत गहरे में, भय पर खड़े हैं। परिवार निर्मित हो गए हैं; लेकिन पति भयभीत है! पुरुष भयभीत है! स्त्री भयभीत है! बच्चे भयभीत हैं! साथ खड़े हो जाने से भय थोड़ा

कम मालूम होता है। संप्रदाय, संगठन खड़े हो गए हैं भय के कारण। राष्ट्र, देश खड़े हैं भय के कारण! हमारी जो भी आज तक की व्यवस्था है, वह सारी व्यवस्था भय पर खड़ी है। एक-दूसरे से हम भयभीत हैं। दूसरे से ही नहीं, हम अपने से भी भयभीत हैं।

इस भय के कारण चित्त का युवा होना कभी संभव नहीं है। क्योंकि चित्त तभी युवा होता है जब अभय हो, खतरे और जोखिम उठाने में समर्थ हो। जो जितना ही भयभीत है, वह खतरे में उतना ही प्रवेश नहीं करता है। वह सुरक्षा का रास्ता लेता है, सिक्योरिटी का रास्ता लेता है। जहां कोई खतरे न हों, वह रास्ता लेता है। और सिर्फ उन्हीं रास्तों पर खतरा नहीं मालूम होता है, जो हमारे परिचित हैं, जिन पर हम बहुत बार गुजर कर गए हैं।

तो बूढ़ा मनुष्य, कोल्हू के बैल की तरह एक ही रास्ते पर घूमता रहता है। रोज सुबह वहीं उठता है जहां कल सांझ सोया था! रोज वही करता है जो कल किया था! रोज वही।। जो कल था, उसी में जीने की कोशिश करता है। नये से डरता है। नये में खतरा भी हो सकता है। भयभीत चित्त बूढ़ा होता है। और भय हमारे पूरे प्राणों को किस बुरी तरह मार डालता है, यह हमें पता नहीं है।

मैंने सुना है, एक गांव के बाहर एक फकीर का झोपड़ा था। एक सांझ अंधेरा उतरता था, फकीर झोपड़े के बाहर बैठा है, एक काली छाया उसे गांव की तरफ भागती जाती मालूम पड़ी। रोका उसने उस छाया को। पूछा, तुम कौन हो और कहां जाती हो? उस छाया ने कहा, मुझे पहचाना नहीं! मैं मौत हूं, और गांव में जा रही हूं। प्लेग आने वाला है। गांव में मेरी जरूरत पड़ गई है।

उस फकीर ने पूछा, कितने लोग मर गए हैं? कितने लोगों के मरने का इंतजाम है? कितने की योजना है?

उस मौत की काली छाया ने कहा, बस हजार लोग ले जाने हैं।

मौत चली गई। महीना भर बीत गया। गांव में प्लेग फैल गया। कोई पचास हजार आदमी मरे। दस लाख की नगरी थी, कुल पचास हजार आदमी मर गए। फकीर बहुत हैरान हुआ कि आदमी धोखा देता था, यह मौत भी धोखा देने लगी! मौत भी झूठ बोलने लगी! और मौत क्यों झूठ बोले? क्योंकि आदमी झूठ बोलता है डर के कारण। मौत किससे डरती होगी कि झूठ बोले। मौत को तो डरने का कोई कारण नहीं, क्योंकि मौत ही डरने का कारण है। तो मौत को क्या डर हो सकता है? फकीर बैठा रहा कि मौत वापस लौटे तो पूछ लूं। महीने भर के बाद मौत वापस लौटी। फिर रोका और कहा कि बड़ा धोखा दिया। कहा था, हजार लोग मरेंगे। पचास हजार लोग मर चुके हैं!

मौत ने कहा, मैंने हजार ही मारे हैं, बाकी भय से मर गए हैं। उनसे मेरा कोई संबंध नहीं है। वे अपने आप मर गए हैं।

और भय से कोई आदमी बिल्कुल मर जाए, बड़ा खतरा नहीं है। लेकिन भय से हम भीतर मर जाते हैं, और बाहर जीते चले जाते हैं। भीतर लाश हो जाती है, बाहर जिंदा रह जाते हैं। भीतर सब डेड वेट हो जाता है।। मुर्दा, मरा हुआ। और बाहर हमारी आंखें, हाथ-पैर चलते हुए मालूम पड़ते हैं।

बूढ़े होने का मतलब यह है कि जो आदमी भीतर से मर गया है, सिर्फ बाहर से जी रहा है। जिसकी जिंदगी सिर्फ बाहर है, भीतर जो मर चुका है, वह आदमी बूढ़ा है।

यह हो सकता है कि एक आदमी बाहर से बूढ़ा हो जाए।। शरीर पर झुर्रियां पड़ गई हैं, और मृत्यु के चरण-चिह्न दिखाई पड़ने लगे हैं, मृत्यु की पगध्वनियां सुनाई पड़ने लगी हैं।। और भीतर से जिंदा हो, जवान

हो। उस आदमी को बूढ़ा कहना गलत है। बूढ़ा, शारीरिक मापदंड से नहीं तौला जा सकता है। बुढ़ापा तौला जाता है, भीतर कितना मृत हो गया है, उससे।

कुछ लोग बूढ़े ही जीते हैं, जन्मते हैं, और मरते हैं! कुछ थोड़े से सौभाग्यशाली लोग युवा जीते हैं। और जो युवा होकर जी लेता है, वह युवा ही मरता है। वह मौत के आखिरी क्षण में भी युवा होता है। मृत्यु उसे छीन नहीं पाती। क्योंकि जिसे बुढ़ापा ही नहीं छू पाता है, उसे मृत्यु कैसे छू पाएगी!

लेकिन संस्कृति हमारी भय को ही प्रचारित करती है, हजार तरह के भय खड़े करती है।

सारे पुराने धर्मों ने ईश्वर का भय सिखाया है। और जिसने भी ईश्वर का भय सिखाया है, उसने पृथ्वी पर अधर्म के बीज बोए हैं। क्योंकि भयभीत आदमी धार्मिक हो ही नहीं सकता। भयभीत आदमी धार्मिक दिखाई पड़ सकता है।

भय से कभी किसी व्यक्ति के जीवन में क्रांति हुई है? रूपांतरण हुआ है?

पुलिसवाला चौरास्ते पर खड़ा है, इसलिए मैं चोरी न करूं, तो मैं अच्छा आदमी हूं। पुलिसवाला हट जाए, तो मेरी चोरी अभी शुरू हो जाए।

अगर पक्का पता चल जाए कि ईश्वर मर गया है।। उसकी खबरें तो बहुत आती हैं, लेकिन पक्का नहीं हो पाता कि ईश्वर मर गया है।। तो जिसको हम धार्मिक आदमी कहते हैं, वह एक क्षण में अधार्मिक हो जाए। अगर इसकी गारंटी हो जाए कि ईश्वर मर गया है, तो जिसको हम धार्मिक आदमी कहते हैं, मंदिर कभी न जाए। फिर सच्चाई, सत्य और गीता और कुरान और बाइबिल की बातें वह भूल कर भी न करे। वह फिर टूट पड़े जीवन पर पागल की तरह! उसने भगवान को एक बहुत बड़ा सुप्रीम कांस्टेबल की तरह समझा हुआ है।। हेड कांस्टेबल, सबके ऊपर बैठा हुआ पुलिसवाला।। वह उसको डराए हुए है।

पुराना शब्द हैः गॉड फियरिंग, ईश्वर-भीरु! धार्मिक आदमी को हम कहते हैंः ईश्वर-भीरु!

परसों मैं एक मित्र के घर था बड़ौदा में। उन्होंने कहा, मेरे पिता बहुत गॉड फियरिंग हैं, बड़े धार्मिक आदमी हैं।

सुन लिया मैंने। लेकिन गॉड फियरिंग धार्मिक कैसे हो सकता है? गॉड लविंग, ईश्वर को प्रेम करने वाला धार्मिक हो सकता है। ईश्वर से डरने वाला कैसे धार्मिक हो सकता है?

और ध्यान रहे, जो डरता है, वह प्रेम कभी नहीं कर सकता है। जिससे हम डरते हैं, उसको हम प्रेम कर सकते हैं? उसको हम घृणा कर सकते हैं, प्रेम नहीं कर सकते! हां, प्रेम दिखा सकते हैं। भीतर होगी घृणा, बाहर दिखाएंगे प्रेम! प्रेम एक्टिंग होगा, अभिनय होगा!

जो भगवान से डरा हुआ है, उसकी प्रार्थना झूठी है, उसके प्रेम की सब बातें झूठी हैं। क्योंकि जिससे हम डरे हैं, उससे प्रेम असंभव है, उससे प्रेम का संबंध पैदा ही नहीं होता है। कभी आपको खयाल है, जिससे आप डरे हैं, उसे आपने प्रेम किया है? लेकिन यह भ्रांति गहरी है। वह ऊपर बैठा हुआ पिता भी इस तरह पेश किया गया है कि उससे हम डरे हैं। नीचे भी जिसको हम पिता कहते हैं, मां कहते हैं, गुरु कहते हैं, वे सब डरा रहे हैं। और सब सोचते हैं कि डर से प्रेम पैदा हो जाए।

बाप बेटे को डरा रहा है। डरा कर सोच रहा है कि प्रेम पैदा होता है। नहीं! दुश्मनी पैदा हो रही है। हर बेटा बाप का दुश्मन हो जाएगा। जो बाप भी बेटे को डराएगा, दुश्मनी पैदा हो जाना निश्चित है। और बेटा आज नहीं कल, बदले में बाप को डराएगा। थोड़ा वक्त लगेगा, थोड़ा समय लगेगा। बाप जब बूढ़ा हो जाएगा, बेटा

जब जवान होगा, तो बाप ने जब जवान था और बेटा जब बच्चा था, जिस भांति डराया था, पहलू बदल जाएगा, अब बेटा बाप को डराएगा! और बाप चिल्लाएगाः बेटे बिल्कुल बिगड़ गए हैं!

बेटे कभी नहीं बिगड़ते। पहले बाप को बिगड़ना पड़ता है। तब बेटे बिगड़ते हैं।

बाप पहले बिगड़ गया। उसने बचपन में बेटे के साथ वह सब कर लिया है, जो बेटे को बुढ़ापे में उसके साथ करना पड़ेगा। सब चक्के घूम कर अपनी जगह आ जाते हैं।

अगर भय हमने पैदा किया है, तो परिणाम में भय लौटेगा, घृणा लौटेगी, दुश्मनी लौटेगी। प्रेम नहीं लौटता।

और हमने जो ईश्वर बनाया था, वह भय का साकार रूप था। भय ही भगवान था। स्वाभाविक रूप से आदमी उससे डरा। डर कर धार्मिक बना, तो धार्मिकता झूठी ही थोपी! एकदम ऊपरी। भीतर भय था, भीतर डर था।

आज एक युवती ने मुझे आकर कहा कि बचपन से मुझे ऐसा लगता है कि ईश्वर मुझे मिल जाए तो उसे मार डालूं। मैंने कहा, यह सब खयाल है तेरे मन में?

लेकिन जो भी डराने वाला है, उसको मारने का खयाल हमारे मन में पैदा होगा ही। उस युवती को ठीक ही खयाल पैदा हुआ है। हिम्मत है, उसने कह दिया है। हममें हिम्मत नहीं है, हम नहीं कहते। वैसे हर आदमी इस खोज में है कि ईश्वर को कैसे खत्म कर दें, कैसे मार डालें।

दोस्तोवस्की ने अपने उपन्यास में कहा है कि अगर ईश्वर न हो, देन एवरीथिंग इ.ज परमिटेड। एक बार पक्का हो जाए, ईश्वर नहीं है, तो हर चीज की आज्ञा मिल जाए। फिर हमें जो करना है, हम कर सकते हैं। फिर कोई डर न रह जाए। वही तो निश्चित है। बाद में उसने कहा कि तुम छोड़ दो भय। खबर नहीं मिली तुम्हें।। गॉड इ.ज नाउ डेड, मैन इ.ज फ्री! ईश्वर मर चुका है और आदमी मुक्त है!

ईश्वर बंधन था कि उसके मरने से आदमी मुक्त होगा? इसमें ईश्वर का कसूर नहीं है। इसमें धर्म के नाम पर जो परंपराएं बनीं, उन्होंने भय का बंधन बना दिया था। जरूरी हो गया था कि ईश्वर के बेटे किसी दिन उसे कत्ल कर दें।

आज दुनिया भर के बेटे ईश्वर का कत्ल कर दे रहे हैं। रूस ने कत्ल किया है, चीन ने कत्ल किया है; हिंदुस्तान में भी कत्ल करेंगे। बचाना बहुत मुश्किल है। नक्सलवादी ने शुरू किया है, बंगाल में शुरू किया है। गुजरात थोड़ा पीछे जाएगा। थोड़ा गणित बुद्धि का है, थोड़ी देर में; लेकिन आएगा, बच नहीं सकता। ईश्वर पृथ्वी के कोने-कोने में कत्ल किया जाएगा। उसका जिम्मा नास्तिकों का नहीं होगा, गौर रखना। उसका जिम्मा उनका होगा, जिन्होंने ईश्वर के साथ भय को जोड़ा है, प्रेम को नहीं। इसके लिए जिम्मेवार तथाकथित धार्मिक लोग होंगे।। वे चाहे हिंदू हों, चाहे मुसलमान हों, चाहे ईसाई हों; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिन्होंने भी मनुष्य-जाति के मन में ईश्वर और भय का एसोसिएशन करवा दिया है, दोनों को जुड़वा दिया है, उन्होंने इतनी खतरनाक बात पैदा की है कि आदमी के धार्मिक होने में सबसे बड़ी बाधा बन गई है। या तो ईश्वर को भय से मुक्त करो।। या ईश्वर आदमी को बूढ़ा करने और मारने का कारण हो गया है।। क्योंकि भय बूढ़ा करता है और मारता है।

और ध्यान रहे, चीजें संयुक्त हो जाती हैं। विपरीत चीजें भी संयुक्त हो सकती हैं। मन के नियम हैं। अब भय से भगवान का कोई संबंध नहीं है। अगर इस पृथ्वी पर, इस जगत में, इस जीवन में कोई एक चीज है, जिससे निर्भय हुआ जा सकता है, तो वह भगवान है। कोई एक तत्व है, जिससे निर्भय हुआ जा सकता है पूरा,

तो वह परमात्मा है। क्योंकि बहुत गहरे में हम उसकी ही किरणें हैं, उसके ही हिस्से हैं, उसके ही भाग हैं, उससे ही लगे हैं। उससे भय का सवाल क्या है? उससे भयभीत होना अपने से भयभीत होने का मतलब रखेगा। लेकिन हम जोड़ सकते हैं चीजों को।

पावलव ने रूस में बहुत प्रयोग किए हैं एसोसिएशन पर, संयोग पर। एक कुत्ते को पावलव रोज रोटी खिलाता है। रोटी सामने रखता है, कुत्ते की लार टपकने लगती है। फिर रोटी के साथ वह घंटी बजाता है। रोज रोटी देता है, घंटी बजाता है। रोटी देता है, घंटी बजाता है। पंद्रह दिन बाद रोटी नहीं देता है, सिर्फ घंटी बजाता है। और कुत्ते की लार टपकनी शुरू हो जाती है! अब घंटी से लार टपकने का कोई भी संबंध कभी सुना है? घंटी बजने से कुत्ते की लार टपकने का क्या संबंध है? कोई भी संबंध नहीं है। तीन काल में कोई संबंध नहीं है। लेकिन एसोसिएशन हो जाता है। रोटी के साथ घंटी जुड़ गई। जब रोटी मिली तब घंटी बजी, जब घंटी बजी तब रोटी मिली। रोटी और घंटी मन में कहीं एक साथ हो गईं। अब सिर्फ घंटी बज रही है, लेकिन रोटी का खयाल साथ में आ रहा है और तकलीफ शुरू हो गई है।

मनुष्य कुछ खतरनाक संयोग भी बना सकता है। भगवान और भय का संयोग ऐसा ही खतरनाक है। पावलव का प्रयोग बहुत खतरनाक नहीं है। घंटी और रोटी में संबंध हो जाए, हर्ज क्या है? लेकिन भगवान और भय में संबंध हो जाए तो मनुष्यता बूढ़ी हो जाएगी।

अतीत का मनुष्य बूढ़ा मनुष्य था। अतीत का इतिहास वृद्ध मनुष्यता का इतिहास है, ओल्ड माइंड का, बूढ़े मन का इतिहास है, क्योंकि वह भय पर खड़ा हुआ है।

धर्म... भय पर खड़े हुए मंदिर हैं, हाथ जोड़े हुए भयभीत लोग! यह फासला, भय, डर, कि भगवान मिटा देगा! वह तो तैयार बैठा हुआ है। भगवान तैयार बैठा हुआ है आदमियों को सताने को, डराने को। आदमी जरा ही इनकार करेगा, और भगवान बर्बाद कर देगा, और नर्कों में सड़ा देगा।

नरक के कैसे-कैसे भय पैदा हमने किए हैं भगवान के साथ? कैसे अदभुत भय पैदा किए हैं? क्रिमिनल माइंड भी, अपराधी से अपराधी आदमी भी ऐसी योजना नहीं बना सकता है जैसी, जिन्हें हम ऋषि-मुनि कहते हैं, उन्होंने नरक की योजना बनाई है! नरक की योजना देखने लायक है।

और ध्यान रहे, नरक की योजना कोई बहुत सौंदर्य को, सत्य को, प्रेम को, परमात्मा को खयाल में रखने वाला बना नहीं सकता है। यह असंभव है कि अगर वास्तव में परमात्मा हो तो नरक भी हो सके। ये दोनों बातें एक साथ संभव नहीं हैं। या तो परमात्मा नहीं होगा, तो नरक हो सकता है। और अगर नरक है, तो फिर परमात्मा को विदा करो। वह नहीं हो सकता है। ये दोनों चीजें एक साथ संभव नहीं हैं। उनका को-एक्झिस्टेंस नहीं हो सकता है। उनका सह-अस्तित्व संभव नहीं है।

नरक की क्या-क्या योजना है, सोचा है आपने कभी? कितना डराया होगा आदमी को?

और आदमी इतना कम जानता था कि डराया जा सकता है। इतना कम जानता था कि घबड़ाया जा सकता है। आदमी एक अर्थ में अबोध था। वह बहुत भयभीत किया जा सकता था।

हर मुल्क को नरक की अलग-अलग कल्पना करनी पड़ी। क्यों? क्योंकि हर मुल्क में भय का अलग-अलग उपाय खोजा गया है। स्वाभाविक था। कुछ चीजें, जिनसे हम भयभीत हैं, दूसरे लोग भयभीत नहीं हैं।

जैसे तिब्बत में ठंड भय पैदा करती है, हिंदुस्तान में पैदा नहीं करती, ठंड अच्छी लगती है। तो हमारे नरक में ठंड का बिल्कुल इंतजाम नहीं है। हमारे नरक में आग जल रही है। और धूप और गरमी हमें परेशान करती है, भयभीत करती है। और हमने नरक में आग के अखंड कुंड जला रखे हैं! यज्ञ ही यज्ञ हो रहे हैं नरक में!

आग ही आग जल रही है। और अनंत काल से उसमें घी डाला जा रहा होगा! भड़कती ही चली जा रही है। और उस आग का कभी बुझना नहीं होगा। वह इटरनल फायर है। और वह कभी बुझती नहीं है, अनंत आग है। और उसमें पापियों को डाला जा रहा है, सड़ाया जा रहा है।

मजा एक है कि कोई मरेगा नहीं उस आग में डालने से, क्योंकि मर गए तो दुख खत्म हो जाएगा। इंतजाम यह है, आग में डाले जाएंगे।। जलेंगे, सड़ेंगे, गलेंगे।। मरेंगे भर नहीं। जिंदा तो रहना ही पड़ेगा। नरक में कोई मरता नहीं है, खयाल रखना! क्योंकि मरना भी एक राहत हो सकती है किसी स्थिति में, मरना भी कंफर्टेबल हो सकता है किसी हालात में। किसी क्षण में आदमी चाह सकता है, मर जाऊं।

वहां कोई आत्महत्या नहीं कर सकता है। पहाड़ से गिरो, गर्दन टूट जाएगी, आप बच जाओगे। फांसी लगाओ, गला कट जाएगा, आप बच जाओगे। छुरा मारो, छुरा घुप जाएगा, आप बच जाओगे। जहर पीओ, फोड़े-फुंसियां पैदा हो जाएंगी, जहर उगाने लगेगा शरीर, लेकिन आप नहीं मरोगे। नरक में आत्महत्या का उपाय नहीं है! आग जल रही है, जिसे हम जला रहे हैं।

तिब्बत में... और तिब्बत के नरक में आग नहीं जलती, क्योंकि तिब्बत में आग बड़ी सुखद है। तो तिब्बत में आग की जगह शाश्वत बर्फ जमा हुआ है, जो कभी नहीं पिघलता है! वह बर्फ में दबाए जाएंगे तिब्बत के पापी। वह बर्फ में दबाया जाएगा। तिब्बत के स्वर्ग में आग है। सूरज चमकता है, तेज धूप है, बर्फ बिल्कुल नहीं जमती।

हिंदुस्तान के स्वर्ग बिल्कुल एयरकंडीशंड हैं, वातानुकूलित हैं। शीतल मंद पवन हमेशा बहती रहती है। कभी ऐसा नहीं होता कि ठंडक में कमी आती हो। ठंडक ही बनी रहती है। सूरज भी निकलता है तो किरणें तपाने वाली नहीं हैं, बड़ी शीतल हैं।

दुख, भय, आदमी को नरक का, पापों का, पापों के कर्मों का... लंबे-लंबे भय हमने मनुष्य के मानस में निर्धारित किए हैं! और किसलिए? यह आदमी धार्मिक है? यह आदमी धार्मिक नहीं हुआ, सिर्फ बूढ़ा हो गया है, सिर्फ वृद्ध हो गया है। इतना भयभीत हो गया है कि वृद्ध हो गया है।

भय बड़ी तेजी से वार्धक्य लाता है।

यहां तक घटनाएं संगृहीत की गई हैं कि एक आदमी को कोई तीन सौ वर्ष पहले हालैंड में फांसी की सजा दी गई। वह आदमी जवान था। जिस दिन उसे फांसी की सजा सुनाई गई, सांझ वह जाकर अपनी कोठरी में सोया। सुबह उठ कर पहरेदार उसे पहचान न सके कि यह आदमी वही है। उसके सारे बाल सफेद हो गए हैं! उसके चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई हैं! वह आदमी बूढ़ा हो गया है!

ऐसी कुछ घटनाएं इतिहास में संगृहीत हैं, जब आदमी क्षण भर में बूढ़ा हो गया हो। इतनी तेजी से! भयभीत अगर हो गया होगा, तो हो सकता है। जो रस-स्रोत तीस वर्ष में सूखते, वे भय के क्षण में, एक ही क्षण में सूख गए हों, कठिनाई क्या है? निश्चित, बाल सफेद होंगे ही। तीस-चालीस वर्ष, पचास वर्ष का समय लगता है उनके बाल सफेद होने में। यह हो सकता है कि इतनी तीव्रता से भय ने पकड़ा हो कि भीतर के जिन रस-स्रोतों से बालों में कालिख आती हो, वे एक ही भय के धक्के में सूख गए हों। बाल सफेद हो गए हों।

आदमी एक क्षण में बूढ़ा हो सकता है, भय से।

और अगर दस हजार साल की पूरी संस्कृति भय पर ही खड़ी है, सिवाय भय के कोई आधार ही न हो, तो अगर आदमी का मन बूढ़ा हो जाए तो आश्चर्य नहीं है। जिसे बूढ़ा होना हो, उसे भय में दीक्षा लेनी चाहिए, उसे भय सीखना चाहिए, उसे भयभीत होना चाहिए।

यूरोप में ईसाइयों के दो संप्रदाय थे। एक तो अब भी जिंदा है, क्वेकर। क्वेक का मतलब होता है।। कंप जाना। जमीन कंप जाती है। क्वेकर का मतलब होता है।। कंप जाना। क्वेकर संप्रदाय का जन्म ऐसे लोगों से हुआ है, जिन्होंने लोगों को इतना भयभीत कर दिया कि उनकी सभा में लोग कंपने लगते हैं, गिर जाते हैं और बेहोश हो जाते हैं। इसलिए इस संप्रदाय का नाम क्वेकर हो गया।

एक और संप्रदाय था, जिसका नाम था शेकर। वह भी कंपा देता था। जॉन बर्कले जब बोलता था तो स्त्रियां बेहोश हो जाती थीं, आदमी गिर पड़ते थे, लोग कंपने लगते थे, लोगों के नथुने फूल जाते थे। क्या बोलता था? नरक के चित्र खींचता था। साफ चित्र। और लोगों के मन में चित्र बिठा देता था। और डर बिठा देता था। वे सारे लोग हाथ जोड़ कर कहते थे कि हमें प्रभु ईसा के धर्म में दीक्षित कर दो। डर गए।

इसलिए जितने दुनिया में धर्म नये पैदा होते हैं, वे घबड़ाते हैं कि दुनिया का अंत जल्दी होने वाला है। बहुत शीघ्र दुनिया का अंत आने वाला है। सब नष्ट हो जाएगा। जो हमें मान लेंगे, वही बच जाएंगे। घबड़ाहट में लोग उन्हें मानने लगते हैं। अभी भी इस मुल्क में कुछ संप्रदाय ऐसे चलते हैं, जो लोगों को घबड़ाते हैं कि जल्दी सब अंत होने वाला है। सब खतम हो जाएगा। और जो हमारे साथ होंगे वे बच जाएंगे, शेष सब नरक में पड़ जाएंगे।

सब धर्म यही कहते हैं कि जो हमारे साथ होंगे वे बच जाएंगे, बाकी सब नरक में पड़ जाएंगे। अगर उन सब की बातें सही हैं तो एक भी आदमी के बचने का उपाय नहीं दिखता है। जीसस को नरक में जाना पड़ेगा, क्योंकि जीसस हिंदू नहीं हैं, जैन नहीं हैं, बौद्ध नहीं हैं। महावीर को भी नरक में पड़ना पड़ेगा, क्योंकि महावीर ईसाई नहीं हैं, बौद्ध नहीं हैं, हिंदू नहीं हैं, मुसलमान नहीं हैं। बुद्ध को भी नरक में पड़ना पड़ेगा, क्योंकि वे हिंदू नहीं हैं, ईसाई नहीं हैं, जैन नहीं हैं। दुनिया के सब धर्म कहते हैं कि हम सिर्फ बचा लेंगे, बाकी सब डुबा देंगे। उस घबड़ाहट में ठीक से।। भय शोषण का उपाय बन गया है।

भयभीत करो, आदमी शोषित हो जाता है। भयभीत कर दो आदमी को, फिर वह होश में नहीं रह जाता है। फिर वह कुछ भी स्वीकार कर लेता है। डर में वह इनकार नहीं करता। भयभीत आदमी कभी संदेह नहीं करता। और जो संदेह नहीं करता है, वह बूढ़ा हो जाता है।

जो आदमी संदेह कर सकता है, वह सदा जवान है।

जो आदमी भयभीत होता है, वह विश्वास कर लेता है, बिलीव कर लेता है, मान लेता है कि जो है वह ठीक है। क्योंकि इतनी हिम्मत जुटानी कठिन है कि गलत है। बूढ़ा आदमी विश्वासी होता है। युवा चित्त निरंतर संदेह करता है, खोजता है, पूछता है, प्रश्न करता है।

यह ध्यान रहे, युवा चित्त से विज्ञान का जन्म होता है और बूढ़े चित्त से विज्ञान का जन्म नहीं होता है। जिन देशों में जितना भय और जितना वार्धक्य लादा गया है, उन देशों में विज्ञान का जन्म नहीं हो सका, क्योंकि विचार नहीं, संदेह नहीं, प्रश्न नहीं, जिज्ञासा नहीं!

क्या हम सब भयभीत नहीं हैं? क्या हम सब भयभीत होने के कारण सारी व्यवस्था को बांधे हुए, पकड़े हुए नहीं खड़े हैं? क्या हम सब डरे हुए नहीं हैं?

अगर हम डरे हुए हैं, तो यह संस्कृति और यह समाज सुंदर नहीं है, जिसने हमें डरा दिया है। संस्कृति और समाज तो तब सुंदर और स्वस्थ होगा, जब हमें भय से मुक्त करे, हमें अभय बनाए। अभय, फियरलेसनेस! निर्भय नहीं। निर्भय और अभय में बड़ा फर्क है। फर्क है, यह समझ लेना जरूरी है।

भयभीत आदमी, भीतर भयभीत है और बाहर से अकड़ कर अगर इनकार करने लगे, तो वह निर्भय होता है। भय शांत नहीं होता है उसके भीतर। वह बहादुरी दिखाएगा बाहर से, भीतर भय होगा। जिनके हाथ में भी तलवार है, वे कितने भी बहादुर हों, वे भयभीत जरूर रहे होंगे, क्योंकि बिना भय के हाथ में तलवार का कोई भी अर्थ नहीं है। जिनके भी हाथ में तलवार है।। चाहे उनकी मूर्तियां चौरस्ते पर खड़ी कर दी गई हों, और चाहे घरों में चित्र लगाए गए हों।। वे घोड़ों पर बैठे हुए, तलवारें हाथ में लिए हुए लोग भयभीत लोग हैं। भीतर भय है। तलवार उनकी सुरक्षा है।। भय की।

और ध्यान रहे, जो आदमी निर्भय हो जाएगा, वह दूसरे को भयभीत करने के उपाय शुरू कर देगा। क्योंकि भीतर उसके भय है, वह डरा हुआ है। मैक्यावेली ने कहा है, डिफेंस का, सुरक्षा का एक सबसे अच्छा उपाय आक्रमण है, अटैक है। प्रतीक्षा मत करो कि दूसरा आक्रमण करेगा तब हम उत्तर देंगे। आक्रमण कर दो! ताकि दूसरे को आक्रमण का मौका न रहे।

जितने लोग आक्रामक हैं, एग्रेसिव हैं, सब भीतर से भय से भरे हुए हैं। भयभीत आदमी हमेशा आक्रामक होगा, क्योंकि वह डरता है। इसके पहले कि कोई मुझ पर हमला करे, मैं हमला कर दूं। पहला मौका मुझे मिल जाए। हमला हो जाने के बाद कहा नहीं जा सकता है क्या हो! इसलिए भयभीत आदमी हमेशा तलवार लिए हुए है। वह कवच बांधे हुए मिलेगा। कवच बहुत तरह के हो सकते हैं। एक आदमी कह सकता है कि मैं तो भगवान में विश्वास करता हूं। मुझे कोई डर नहीं है। मैं तो भगवान का सहारा मांगता हूं। यह भी कवच बनाया है भगवान का, तलवार बना रहा है भगवान को।

भगवान की तलवारें मत ढालो। भगवान कोई लोहा नहीं है कि तलवारें ढाली जा सकें और कवच बनाया जा सके।

वह आदमी कहता है, मुझे कोई डर नहीं है, रोज मैं हनुमान चालीसा पढ़ता हूं।

वह हनुमान चालीसा को ढाल बना रहा है। और भीतर भयभीत है। और भयभीत आदमी कितना ही हनुमान चालीसा पढ़े... तो हनुमान फिर पूछते होंगे कि कई दिनों से यह पागल क्या कर रहा है? भयभीत आदमी कितने ही कवच उपलब्ध कर ले, भय नहीं मिटता है। निर्भय भी भय करने लगेगा और दिखाने की कोशिश करेगा कि मैं किसी से भयभीत नहीं हूं। जो भी आदमी दिखाने की कोशिश करे कि मैं किसी से भयभीत नहीं हूं, जान लेना कि दिखाने की कोशिश में भीतर भय उपस्थित है।

अभय बिल्कुल और बात है। अभय का मतलब है, भय का विसर्जित हो जाना। अभय का मतलब है, भय का विसर्जन। निर्भय नहीं हो जाना है। अभय का मतलब है, भय का विसर्जित हो जाना।

सिर्फ अभय को जो उपलब्ध हुआ हो, वही व्यक्ति अहिंसक हो सकता है। निर्भय व्यक्ति अहिंसक नहीं हो सकता। भीतर भय काम करता ही रहेगा। और भय सदा हिंसा की मांग करता रहेगा। भय सदा सुरक्षा चाहेगा। सुरक्षा के लिए हिंसा का आयोजन करना पड़ेगा।

आज तक का पूरा समाज हमारा हिंसक समाज रहा है। अच्छे लोग भी हिंसक रहे हैं, बुरे लोग भी हिंसक रहे हैं। इस धर्म को मानने वाले भी हिंसक हैं, उस धर्म को मानने वाले भी हिंसक हैं। इस देश के, उस देश के।। सारी पृथ्वी हिंसक रही है। सारी पृथ्वी का पूरा इतिहास हिंसा और युद्धों का इतिहास है।

नाम हम कुछ भी देते हों, नाम गौण है। जैसे कोई आदमी अपने कोट को खूंटी पर टांग दे। खूंटी गौण है, असली सवाल कोट है। यह खूंटी न मिलेगी, दूसरी खूंटी पर टांगेगा। दूसरी न मिलेगी, तीसरी खूंटी पर टांगेगा। खूंटी से कोई मतलब नहीं है। हजार खूंटियों पर आदमी अपनी हिंसा टांगता रहा है। धर्म की खूंटी पर भी हिंसा

टांग देता है, आश्चर्य की बात है! हिंदू-मुसलमान लड़ पड़ते हैं, हिंसा हो जाती है। धर्म की खूंटी पर युद्ध टंगता है। धर्म की खूंटी पर युद्ध टंग सकता है। भाषा की खूंटी पर युद्ध टंगता रहता है। राष्ट्रों के चुनाव पर युद्ध टंग जाएगा। कोई भी बहाना चाहिए आदमी को लड़ने का। आदमी को लड़ने का बहाना चाहिए, क्योंकि आदमी भय से भरा है। और जब तक आदमी भय से भरा है, तब तक वह लड़ने से मुक्त नहीं हो सकता। लड़ना ही पड़ेगा। लड़ने से वह अपनी हिम्मत बढ़ाता है।

कभी देखा है, अंधेरी गली में कोई जाता हो तो जोर से गीत गाने लगता है! समझ मत रखना कि कोई गीत गा रहा है अंदर। सिर्फ गीत गाकर भुला रहा है अपने भय को। सीटी बजाने लगता है आदमी अंधेरे में! ऐसा लगता है कि सीटी से बहुत प्रेम है। सीटी बजा कर भुला रहा है भीतर के भय को। हजार उपाय हम उपयोग करते हैं भीतर के भय को भुलाने के, लेकिन भीतर का भय मिटता नहीं।

मैंने सुना है, चीन में एक बहुत बड़ा फकीर था। उसकी बड़ी ख्याति थी। दूर-दूर तक ख्याति थी कि वह अभय को उपलब्ध हो गया है, फियरलेसनेस को उपलब्ध हो गया है। वह भयभीत नहीं रहा है। यह सबसे बड़ी उपलब्धि है। क्योंकि जो आदमी अभय को उपलब्ध हो जाएगा, वह ताजा, जवान चित्त पा लेता है। और ताजा, जवान चित्त फौरन परमात्मा को जान लेता है, सत्य को जान लेता है।

सत्य को जानने के लिए चाहिए ताजगी, फ्रेशनेस, जैसे सुबह के फूल में होती है, जैसे सुबह की पहली किरण में होती है। और बूढ़े चित्त में सिर्फ सड़ गए, गिर गए फूलों की दुर्गंध होती है और विदा हो गई किरणों के पीछे का अंधेरा होता है। ताजा चित्त चाहिए!

तो खबर मिली, दूर-दूर तक खबर फैल गई कि फकीर अभय को उपलब्ध हो गया है। एक युवक संन्यासी उस फकीर की खोज में गया जंगल में। घने जंगल में, जहां बहुत भय था, वह फकीर वहां रहता था। जहां शेर दहाड़ करते थे, जहां पागल हाथी वृक्षों को उखाड़ देते थे, उनके ही बीच चट्टानों पर ही वह फकीर पड़ा रहता था। और रात जहां अजगर रेंगते थे, वहां वह सोया रहता था निश्चिंत। युवक संन्यासी उसके पास गया। उसी चट्टान के पास बैठ गया, उससे बात करने लगा। तभी एक पागल हाथी दौड़ता हुआ निकला पास से। उसकी चोटों से पत्थर हिल गए, वृक्ष नीचे गिर गए। वह युवक कंपने लगा खड़े होकर। उस बूढ़े संन्यासी के पीछे छिप गया, उसके हाथ-पैर कंप रहे हैं।

वह बूढ़ा संन्यासी खूब हंसने लगा और उसने कहा, तुम अभी डरते हो? तो संन्यासी कैसे हुए? क्योंकि जो डरता है, उसका संन्यास से क्या संबंध?

हालांकि अधिक संन्यासी डर कर ही संन्यासी हो जाते हैं। पत्नी तक से डर कर आदमी संन्यासी हो जाते हैं। और डर की बात दूर है, बड़े डर तो दूर हैं, बड़े छोटे डरों से डर कर संन्यासी हो जाता है।

उस बूढ़े संन्यासी ने कहा, तुम डरते हो? संन्यासी हो तुम? कैसे संन्यासी हो?

वह युवक कंप रहा है। उसने कहा, मुझे बहुत डर लग गया। सच में बहुत डर लग गया। अभी संन्यास वगैरह का कुछ खयाल नहीं आता। थोड़ा पानी मिल सकेगा? मेरे तो ओंठ सूख गए, बोलना मुश्किल है।

बूढ़ा उठा, वृक्ष के नीचे, जहां उसका पानी रखा था, पानी लेने गया। जब तक बूढ़ा लौटा, उस युवक संन्यासी ने एक पत्थर उठा कर उस चट्टान पर जिस पर बूढ़ा बैठा था, लेटता था, बुद्ध का नाम लिख दिया।। नमो बुद्धाय! बूढ़ा लौटा, चट्टान पर पैर रखने को था, नीचे दिखाई पड़ाः नमो बुद्धाय! पैर कंप गया, चट्टान से नीचे उतर गया!

वह युवक खूब हंसने लगा। उसने कहा, डरते आप भी हैं। डर में कोई फर्क नहीं है। और मैं तो एक हाथी से डरा, जो बहुत वास्तविक था। और एक लकीर से मैंने लिख दिया नमो बुद्धाय, तो पैर रखने में डर लगता है कि भगवान के नाम पर पैर न पड़ जाए! किसका डर ज्यादा है? वह युवा पूछने लगा। क्योंकि मैं खोजने आया था अभय। मैं पाता हूं, आप सिर्फ निर्भय हैं, अभय नहीं। निर्भय हैं सिर्फ। भय को मजबूत कर लिया है भीतर। चारों तरफ घेरा बना लिया है अभय का। सिंह नहीं डराता, पागल हाथी नहीं डराता, अजगर निकल जाते हैं; सख्त हैं बहुत आप। लेकिन जिसके आधार पर सख्ती होगी, वह आपका भय बना हुआ है। भगवान के आधार पर सख्त हो गए हैं। भगवान को सुरक्षा बना लिया है। तो भगवान के खड़िया से लिखे नाम पर पैर रखने में डर लगता है!

उस युवक ने कहा, डरते आप भी हैं। डर में कोई फर्क नहीं पड़ा। और ध्यान रहे, हाथी से डर जाना।। पागल से।। बुद्धिमत्ता भी हो सकती है। जरूरी नहीं कि डर हो, बुद्धिमानी भी हो सकती है। लेकिन भगवान के नाम पर पैर रखने से डर जाना तो बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती है। पहला डर बहुत स्वाभाविक हो सकता है। दूसरा डर बहुत साइकोलाजिकल, बहुत मानसिक और बहुत भीतरी है।

हम सब डरे हुए हैं। बहुत भीतरी डर है, सब तरफ से मन को पकड़े हुए है। और हमारे भीतरी डरों का आधार वही होगा जिसके आधार पर हमने दूसरे डरों को बाहर कर दिया है।

हम गाते हैं न कि निर्बल के बल राम! गा रहे हैं सुबह से बैठ कर कि हे भगवान, निर्बल के बल तुम्हीं हो!

किसी निर्बल का कोई बल राम नहीं है। जिसकी निर्बलता गई, वह राम हो जाता है। निर्बलता गई कि राम और श्याम में फासला ही नहीं रह जाता। निर्बलता ही फासला है, वही डिस्टेंस है।

तो निर्बल के बल राम नहीं होते। निर्बलता राम होती ही नहीं। निर्बलता सिर्फ राम की कल्पना है और निर्बलता को बचाने के लिए ढाल है। और सारी प्रार्थना-पूजा भय को छिपाने का उपाय है, सिक्योरिटी मेजरमेंट है, और कुछ भी नहीं है। इंतजाम है सुरक्षा का। कोई बैंक में इंतजाम करता है रुपये डाल कर, कोई राम-राम-राम जप कर इंतजाम करता है भगवान की पुकार करके। सब इंतजाम हैं।

लेकिन इंतजाम से भय कभी नहीं मिटता। ज्यादा से ज्यादा निर्भय हो सकते हैं आप, लेकिन भय कभी नहीं मिटता। निर्भय से कोई अंतर नहीं पड़ता, भय मौजूद रह जाता है। भय मौजूद ही रहता है, भीतर सरकता चला जाता है।

जिस व्यक्ति के भीतर भय की पर्त चलती रहती है, वह व्यक्ति कभी भी युवा चित्त का नहीं हो सकता। उसकी सारी आत्मा बूढ़ी हो जाती है। फियर जो है, वह क्रिपलिंग है, वह पंगु कर देता है, सब हाथ-पैर तोड़ डालता है, सब अपंग कर देता है।

और हम सब भयभीत हैं। क्या करें? अभय कैसे हों? फियरलेसनेस कैसे आए?

निर्भयता तो हम सब जानते हैं, आ सकती है। दंड-बैठक लगाने से भी एक तरह की निर्भयता आती है, क्योंकि आदमी जंगली जानवर की तरह हो जाता है। एक तरह की निर्भयता आती है। लोग ऊब जाते हैं दंड-बैठक लगाने से। एक तरह की निर्भयता आ जाती है। वह निर्भयता नहीं है अभय।

तलवार रख ले कोई। खुद के हाथ में न रख कर, दूसरे के हाथों में रख दे। पद पर पहुंच जाए कोई, तो एक तरह की निर्भयता आ जाती है। दुनिया भर के सब भयभीत लोग पदों की खोज करते हैं। पद एक सुरक्षा देता है। अगर मैं राष्ट्रपति हो जाऊं तो जितना सुरक्षित रहूंगा, बिना राष्ट्रपति हुए नहीं रह सकता। राष्ट्रपति के लिए, जितने भयभीत लोग हैं, सब दौड़ करते रहते हैं।

डर गए हैं। भय है अकेले होने का। सुरक्षा चाहिए, इंतजाम चाहिए। जिनको हम बहुत बड़े-बड़े पदों पर देखते हैं, यह मत सोचना कि ये किसी निर्भयता के बल पर वहां पहुंच जाते हैं। वे निर्भयता के अभाव में ही पहुंचते हैं, भीतर भय है।

हिटलर के संबंध में मैंने सुना है कि हिटलर अपने कंधे पर हाथ किसी को भी नहीं छुआ सकता है। इसीलिए शादी भी नहीं की, कम से कम पत्नी को तो छुआना ही पड़ेगा। शादी से डरता रहा कि शादी की, तो पत्नी तो कम से कम कमरे में सोएगी। लेकिन भरोसा क्या है कि पत्नी रात में गर्दन न दबा दे!

हिटलर दिखता होगा बहुत बहादुर आदमी। ये बहादुर आदमी सब दिखते हैं। यह सब बहादुरी बिल्कुल ऊपरी है, भीतर बहुत डरे हुए आदमी हैं। हिटलर किसी से ज्यादा दोस्ती नहीं करता था। क्योंकि दोस्त के कारण, जो सुरक्षा है, जो व्यवस्था है, वह टूट जाती है। दोस्तों के पास बीच के फासले टूट जाते हैं। हिटलर के कंधे पर कोई हाथ नहीं रख सकता था।। हिमलर या गोयबल्स भी नहीं। कंधे पर हाथ कोई भी नहीं रख सकता है। एक फासला चाहिए, एक दूरी चाहिए। कंधे पर हाथ रखने वाला आदमी खतरनाक हो सकता है। गर्दन पास ही है, कंधे से बहुत दूर नहीं है।

एक औरत हिटलर को बहुत प्रेम करती रही। लेकिन भयभीत लोग कहीं प्रेम कर सकते हैं? हिटलर उसे टालता रहा, टालता रहा, टालता रहा। आप जान कर हैरान होंगे, मरने के दो दिन पहले, जब मौत पक्की हो गई, जब बर्लिन पर बम गिरने लगे, तो हिटलर जिस तलघर में छिपा हुआ था, उसके सामने दुश्मन की गोलियां गिरने लगीं और दुश्मन के पैरों की आवाज बाहर सुनाई देने लगी, द्वार पर युद्ध होने लगा, और जब हिटलर को पक्का हो गया कि मौत निश्चित है, अब मरने से बचने का कोई उपाय नहीं है, तो उसने पहला काम यह किया कि एक मित्र को भेजा और कहा कि जाओ आधी रात को उस औरत को ले आओ। कहीं कोई पादरी सोया-जगा मिल जाए, उसे उठा लाओ। शादी कर लूं।

मित्रों ने कहा, यह कोई समय है शादी करने का?

हिटलर ने कहा, अब कोई भय नहीं है, अब कोई भी मेरे निकट हो सकता है, अब मौत बहुत निकट है। अब मौत ही करीब आ गई है, तब किसी को भी निकट लिया जा सकता है।

दो घंटे पहले हिटलर ने शादी की तलघर में! सिर्फ मरने के दो घंटे पहले! तो पुरोहित और सेक्रेटरी को बुलाया था। उनकी समझ के बाहर हो गया कि यह किसलिए शादी हो रही है? इसका प्रयोजन क्या है? हिटलर होश में नहीं है। पुरोहित ने किसी तरह शादी करवा दी है। और दो घंटे बाद उन्होंने जहर खाकर सुहागरात मना ली है और गोली मार ली है।। दोनों ने!

यह आदमी मरते वक्त तक विवाह भी नहीं कर सका, क्योंकि दूसरे आदमी का साथ रहना, पास लेना खतरनाक हो सकता है।

दुनिया के जिन बड़े बहादुरों की कहानियां हम इतिहास में पढ़ते हैं, बड़ी झूठी हैं। अगर दुनिया के बहादुरों के भीतरी मन में उतरा जा सके तो वहां भयभीत आदमी मिलेगा। चाहे नादिर हो, चाहे चंगीज हो, चाहे तैमूर हो, वहां भीतर भयभीत आदमी मिलेगा।

नादिर लौटता था आधी दुनिया जीत कर, और ठहरा है एक रेगिस्तान में। रात का वक्त है। रात को सो नहीं सकता था। कैसे सोता? डर सदा भीतर था। तंबू में सोया। चोर घुस गए तंबू में। नादिर को मारने नहीं आए हैं। कुछ संपत्ति मिल जाए, लेने को घुस गए हैं। नादिर घबड़ा कर बाहर निकला है। भागा है डर कर, तंबू की रस्सी में पैर फंस कर गिर पड़ा है और मर गया है।

वे जो बड़े पदों की खोज में, बड़े धन की खोज में, बड़े यश की खोज में लोग लगे हैं, वे सिर्फ सुरक्षा खोज रहे हैं। भीतर एक भय है। इंतजाम कर लेना चाहते हैं। भीतर एक दीवाल बना लेना चाहते हैं, कोई डर नहीं है। कल बीमारी आए, गरीबी आए, भिखमंगी आए, मृत्यु आए।। कोई डर नहीं है। सब इंतजाम किए लेते हैं।

कुछ लोग ऐसा इंतजाम करते हैं, कुछ लोग भीतरी इंतजाम करते हैं! रोज भगवान की प्रार्थना कर रहे हैं।। कि कुछ भी हो जाए, इतने दिन तक जो चिल्लाए हैं, वह वक्त पर काम पड़ेगा। इतने नारियल चढ़ाए, इतनी रिश्वत दी, वक्त पर धोखा दे गए हो?

भय में आदमी भगवान को भी रिश्वत देता रहा है!

और जिन देशों में भगवान को इतनी रिश्वत दी गई हो, उन देशों में मिनिस्टर रूपी भगवानों को रिश्वत दी जाने लगी हो तो कोई मुश्किल है, कोई हैरानी है? और जब इतना बड़ा भगवान रिश्वत ले लेता हो, तो छोटे-मोटे मिनिस्टर ले लेते हों तो नाराजगी क्या है?

भय है, भय की सुरक्षा के लिए हम सब उपाय कर रहे हैं। क्या ऐसे कोई आदमी अभय हो सकता है? कभी भी नहीं। अभय होने का क्या रास्ता है?

सुरक्षा की व्यवस्था अभय होने का रास्ता नहीं है। असुरक्षा की स्वीकृति अभय होने का रास्ता है, ए टोटल एक्सेप्टेंस ऑफ इनसिक्योरिटी। जीवन असुरक्षित है, इसकी परिपूर्ण स्वीकृति मनुष्य को अभय कर जाती है। मृत्यु है, उससे बचने का कोई उपाय नहीं है, उससे भागने का कोई उपाय नहीं है; वह है। वह जीवन का ही एक तथ्य है। वह जीवन का ही एक हिस्सा है। वह जन्म के साथ ही जुड़ा है।

जैसे एक डंडे में एक ही छोर नहीं होता, दूसरा छोर भी होता है। और वह आदमी पागल है, जो एक छोर को स्वीकारे और दूसरे को इनकार कर लेता है। सिक्के में एक ही पहलू नहीं होता है, दूसरा भी होता है। और वह आदमी पागल है, जो एक को खीसे में रखना चाहे और दूसरे से छुटकारा पाना चाहे। यह कैसे हो सकेगा?

जन्म के साथ मृत्यु का पहलू जुड़ा है। मृत्यु है, बीमारी है, असुरक्षा है; कुछ भी निश्चित नहीं है, सब अनसर्टेन है। जिंदगी ही एक अनसर्टेनटी है, जिंदगी ही एक अनिश्चय है।

सिर्फ मौत एक निश्चय है। मरे हुए को कोई डर नहीं रह जाता।

जिंदा में सब असुरक्षा है। कदम-कदम पर असुरक्षा है। जो क्षण भर पहले मित्र था, क्षण भर बाद मित्र होगा, यह तय नहीं है। इसे जानना ही होगा, मानना ही होगा। क्षण भर पहले जो मित्र था, वह क्षण भर बाद मित्र होगा, यह तय नहीं है। क्षण भर पहले जो प्रेम कर रहा था, वह क्षण भर बाद फिर प्रेम करेगा, यह निश्चित नहीं है। क्षण भर पहले जो व्यवस्था थी, वह क्षण भर बाद नहीं खो जाएगी, यह निश्चित नहीं है। सब खो सकता है, सब जा सकता है, सब विदा हो सकता है। जो पत्ता अभी हरा है, वह थोड़ी देर बाद सूखेगा और गिरेगा। जो नदी वर्षा में भरी रहती है, थोड़ी देर बाद सूखेगी और रेत ही रह जाएगी।

जीवन जैसा है उसे जान लेना, और जीवन में जो अनिश्चय है, उसका परिपूर्ण बोध और स्वीकृति मनुष्य को अभय कर देती है। फिर कोई भय नहीं रह जाता।

मैं भावनगर से आया। एक चित्रकार को उसके मां-बाप मेरे पास ले आए। योग्य, प्रतिभाशाली चित्रकार है, लेकिन एक अजीब भय से सारी प्रतिभा कुंठित हो गई है। एक भय पकड़ गया है, जो जान लिए ले रहा है। अमेरिका भी गया था वह, वहां भी चिकित्सा चली। मनोवैज्ञानिकों ने मनोविश्लेषण किए, साइकोएनालिसिस की। कोई फल नहीं हुआ। सब समझाया जा चुका है, कोई फल नहीं हुआ। मेरे पास लाए हैं, कहा कि हम

मुश्किल में पड़ गए हैं। कोई फल होता नहीं है। सब समझा चुके हैं, सब हो चुका है। इसे क्या हो गया है? यह एकदम भयभीत है!

मैंने पूछा, किस बात से भयभीत है? तो उन्होंने कहा कि रास्ते पर कोई लंगड़ा आदमी दिख जाए, तो यह इसको भय हो जाता है कि कहीं मैं लंगड़ा न हो जाऊं! अब बड़ी मुश्किल है। अंधा आदमी मिल जाए, तो घर आकर रोने लगता है कि कहीं मैं अंधा न हो जाऊं! हम समझाते हैं कि तू अंधा क्यों होगा? तू बिल्कुल स्वस्थ है, तुझे कोई बीमारी नहीं है। कोई आदमी मरता है रास्ते पर, बस यह बैठ जाता है। यह कहता है, कहीं मैं मर न जाऊं! हम समझाते हैं, समझाते-समझाते हार गए। डाक्टरों ने समझाया, चिकित्सकों ने समझाया, इसकी समझ में नहीं पड़ता है।

मैंने कहा, तुम समझाते ही गलत हो। वह जो कहता है, ठीक ही कहता है। गलत कहां कहता है? जो आदमी आज अंधा है, कल उसके पास भी आंख थी। और जो आदमी आज लंगड़ा है, हो सकता है कि उसके पास भी पैर रहे हों। और आज जिसके पास पैर हैं, कल वह लंगड़ा हो सकता है। और आज जिसके पास आंख है, कल वह अंधा हो सकता है। इसमें यह युवक गलत नहीं कह रहा है। गलत तुम समझा रहे हो। और तुम्हारे समझाने से इसका भय बढ़ता जा रहा है। तुम कितना ही समझाओ कि तू अंधा नहीं हो सकता है। गारंटी कराओ। कौन कह सकता है कि मैं अंधा नहीं हो सकता। सारी दुनिया कहे तो भी निश्चित नहीं है कि मैं अंधा नहीं हो सकता। अंधा मैं हो सकता हूं, क्योंकि आंखें अंधी हो सकती हैं। मेरी आंखों ने कोई ठेका लिया है कि अंधी नहीं हों! पैर लंगड़े हुए हैं। मेरा पैर लंगड़ा हो सकता है। आदमी पागल हुए हैं। मैं पागल हो सकता हूं। जो किसी आदमी के साथ कभी भी घटा है, वह मेरे साथ भी घट सकता है, क्योंकि सारी संभावना सदा है।

मैंने कहा, इस युवक को तुम गलत समझा रहे हो। तुम्हारे गलत समझाने से, यह कितनी ही कोशिश करे कि मैं अंधा नहीं हो सकता, लेकिन इसे दिखाई पड़ता है कि अंधे होने की संभावना।। तुम कितना ही कहो कि नहीं हो सकता है।। मिटती नहीं।

उस युवक ने कहा, यही मेरी तकलीफ है। ये जितना समझाते हैं, उतना मैं भयभीत हुए चला जा रहा हूं। मैंने उससे कहा कि ये बिल्कुल ही गलत समझाते हैं। मैं तुमसे कहता हूं कि तुम अंधे हो सकते हो, तुम लंगड़े हो सकते हो, तुम कल सुबह मर सकते हो, तुम्हारी पत्नी तुम्हें कल छोड़ सकती है, मां तुम्हारी दुश्मन हो सकती है, मकान गिर सकता है, गांव नष्ट हो सकता है, सब हो सकता है। इसमें कुछ इनकार करने जैसा जरा भी नहीं है। इसे स्वीकार करो। मैंने कहा, तुम जाओ, इसे स्वीकार करो। सुबह मेरे पास आना।

वह युवक गया है, तभी मैंने जाना है कि वह कुछ और ही होकर जा रहा है। अब कोई लड़ाई नहीं है। जो हो सकता है, और जिससे बचाव का कोई उपाय नहीं है, और जिसके बचाव का कोई अर्थ नहीं है, और जिससे लड़ने की मानसिक तैयारी बेमानी है। वह हलका होकर गया है।

वह सुबह आया है और उसने कहा कि तीन साल में मैं पहली दफे सोया हूं। आश्चर्य, कि यह बात स्वीकार कर लेने से हल हो जाती है कि मैं अंधा हो सकता हूं। ठीक है, हो सकता हूं।

मैंने कहा, तुम डरते क्यों हो अंधे होने से?

उसने कहा कि डरता इसलिए हूं कि फिर चित्र न बना पाऊंगा।

तो मैंने कहा, जब तक अंधे नहीं हो, चित्र बनाओ, व्यर्थ में समय क्यों खोते हो? जब अंधे हो जाओगे, नहीं बना पाओगे, पक्का है। इसलिए बना लो, जब तक आंख हाथ है, बना लो। जब आंख विदा हो जाए, तब कुछ और करना।

लेकिन आंख विदा हो सकती है। सारा जीवन ही विदा होगा एक दिन, सब विदा हो सकता है। किसी की सब चीजें इकट्ठी विदा होती हैं, किसी की फुटकर-फुटकर विदा होती हैं, इसमें झंझट क्या है? एक आदमी होलसेल चला जाता है, एक आदमी पार्ट-पार्ट में जाता है, टुकड़े-टुकड़े में जाता है। किसी की आंख चली गई तो कुछ और, फिर कुछ और गया। कोई आदमी इकट्ठे ही चला गया।

इकट्ठे जाने वाले समझते हैं कि जिनके थोड़े-थोड़े हिस्से जा रहे हैं, वे अभागे हैं। बड़ी मुश्किल बात है। इतना ही क्या कम सौभाग्य है कि सिर्फ आंख गई है, अभी पैर नहीं गया, अभी पूरा नहीं गया। इतना ही क्या कम सौभाग्य है कि सिर्फ पैर गए हैं, अभी पूरा आदमी नहीं गया है।

बुद्ध का एक शिष्य था... उस युवक से मैंने यह कहानी कही थी, वह मैं आपको अभी कहता हूं। उस युवक से मैंने कहा कि अब तू भय के बाहर हो गया है। इनसिक्योरिटी को जिसने स्वीकार कर लिया है, वह भय के बाहर हो जाता है, वह अभय हो जाता है। बुद्ध का एक शिष्य है पूर्ण। और बुद्ध ने उसकी शिक्षा पूरी कर दी है और उससे कहा है, अब तू जा और खबर पहुंचा लोगों तक।

पूर्ण ने कहा, मैं जाना चाहता हूं सूखा नाम के एक इलाके में।

बुद्ध ने कहा, वहां मत जाना, वहां के लोग बहुत बुरे हैं। मैंने सुना है वहां कोई भिक्षु कभी भी गया तो अपमानित होकर लौटा है, भाग आया है डर कर। बड़े दुष्ट लोग हैं, वहां मत जाना।

उस पूर्ण ने कहा, लेकिन वहां कोई नहीं जाएगा, तो उन दुष्टों का क्या होगा? बड़े भले लोग हैं, सिर्फ गालियां ही देते हैं, अपमानित ही करते हैं, मारते नहीं। मार भी सकते थे। कितने भले लोग हैं, कितने सज्जन हैं!

बुद्ध ने कहा, समझा। यह भी हो सकता है कि वे तुझे मारें भी, पीटें भी। पीड़ा भी पहुंचाएं, कांटे भी छेदें, पत्थर भी मारें। फिर क्या होगा?

तो पूर्ण ने कहा, यही होगा भगवान कि कितने भले लोग हैं कि सिर्फ मारते हैं, मार ही नहीं डालते हैं। मार भी डाल सकते थे।

बुद्ध ने कहा, आखिरी सवाल। वे तुझे मार भी डाल सकते हैं, तो मरते क्षण में तुझे क्या होगा?

पूर्ण ने कहा, अंतिम क्षण में धन्यवाद देते विदा हो जाऊंगा कि कितने अच्छे लोग हैं कि इस जीवन से मुक्ति दिला दी, जिसमें भूल-चूक हो सकती थी।

बुद्ध ने कहा, अब तू जा। अब तू अभय हो गया। अब तुझे कोई भय न रहा। तूने जीवन की सारी असुरक्षा को, सारे भय को स्वीकार कर लिया। तूने निर्भय बनने की कोशिश ही छोड़ दी।

ध्यान रहे, भयभीत आदमी निर्भय बनने की कोशिश करता है। उस कोशिश से भय कभी नहीं मिटता है। अभय उसको उपलब्ध होता है।। जो भय है, ऐसी जीवन की स्थिति है।। इसे जानता है, स्वीकार कर लेता है। वह भय के बाहर हो जाता है। और युवा चित्त उसके भीतर पैदा होता है, जो भय के बाहर हो जाता है।

एक सूत्र युवा चित्त के जन्म के लिए, भय के बाहर हो जाने के लिए अभय है।

और दूसरा सूत्र... पहला सूत्र है, बूढ़े चित्त का मतलब हैः क्रिपिल्ड विद फियर, भय से पुंज।

और दूसरा सूत्र है, बूढ़े चित्त का अर्थ हैः बर्डन विद नालेज, ज्ञान से बोझिल।

जितना बूढ़ा चित्त होगा उतना ज्ञान से बोझिल होगा। उतने पांडित्य का भारी पत्थर उसके सिर पर होगा। जितना युवा चित्त होगा, उतना ज्ञान से मुक्त होगा। उसने स्वयं ही जो जाना है, जानते ही उसके बाहर हो जाएगा। और आगे बढ़ जाएगा। ए कांस्टेंट अवेयरनेस ऑफ नाट नोन। एक सतत भाव उसके मन में रहेगा।। नहीं जानता हूं। कितना ही जान ले, उस जानने को किनारे हटाता हुआ, न जानने के भाव को सदा जिंदा

रखेगा। वह अतीत में भी क्षमता रखेगा। रोज सब सीख सकेगा, प्रतिपल सीख सकेगा। कोई ऐसा क्षण नहीं होगा, जिस दिन वह कहेगा कि मैं पहले से ही जानता हूं, इसलिए सीखने की अब कोई जरूरत नहीं है। जिस आदमी ने ऐसा कहा, वह बूढ़ा हो गया।

युवा चित्त का अर्थ हैः सीखने की अनंत क्षमता।

बूढ़े चित्त का अर्थ हैः सीखने की क्षमता का अंत।

और जिसको यह खयाल हो गया, मैंने जान लिया है, उसकी सीखने की क्षमता का अंत हो जाता है। और हम सब भी ज्ञान से बोझिल हो जाते हैं। हम ज्ञान इसीलिए इकट्ठा करते हैं कि बोझिल हो जाएं। ज्ञान को हम सिर पर लेकर चलते हैं। ज्ञान हमारा पंख नहीं बनता है, ज्ञान हमारा पत्थर बन जाता है।

ज्ञान बनना चाहिए पंख। ज्ञान बनता है पत्थर। और ज्ञान किनका पंख बनता है? जो निरंतर और-और-और जानने के लिए खुले हैं, मुक्त हैं, द्वार जिनके बंद नहीं हैं।

एक गांव में एक फकीर था। उस गांव के राजा को शिकायत की गई कि वह फकीर लोगों को भ्रष्ट कर रहा है।

असल में, अच्छे फकीरों ने दुनिया को सदा भ्रष्ट किया ही है। वे करेंगे ही। क्योंकि दुनिया भ्रष्ट है और इसको बदलने के लिए भ्रष्ट करना पड़ता है। दो भ्रष्टताएं मिल कर सुधार शुरू होता है। दुनिया भ्रष्ट है। इस दुनिया को ऐसा ही स्वीकार कर लेने के लिए कोई संन्यासी, कोई फकीर कभी राजी नहीं हुआ है।

गांव के लोगों ने खबर की, पंडितों ने खबर की कि यह आदमी भ्रष्ट कर रहा है। ऐसी बातें सिखा रहा है, जो किताबों में नहीं हैं। और ऐसी बातें कह रहा है कि लोगों का संदेह जग जाए। और लोगों को ऐसे तर्क दे रहा है कि लोग भ्रमित हो जाएं, संदिग्ध हो जाएं।

राजा ने फकीर को बुलाया दरबार में, और कहा कि मेरे दरबार के पंडित कहते हैं कि तुम नास्तिक हो। तुम लोगों को भ्रष्ट कर रहे हो। तुम गलत रास्ता दे रहे हो। तुम लोगों में संदेह पैदा कर रहे हो।

उस फकीर ने कहा, मैं तो सिर्फ एक काम कर रहा हूं कि लोगों को युवक बनाने की कोशिश कर रहा हूं। लेकिन अगर तुम्हारे पंडित ऐसा कहते हैं तो मैं तुम्हारे पंडितों से कुछ पूछना चाहूंगा।

राजा के बड़े सात पंडित बैठ गए। उन्होंने सोचा, वे तैयार हो गए!

पंडित वैसे भी एवररेडी, हमेशा तैयार रहता है, क्योंकि रेडिमेड उत्तर से पंडित बनता है। पंडित के पास कोई बोध नहीं होता है। जिसके पास बोध हो, वह पंडित बनने को राजी नहीं हो सकता है। पंडित के पास तैयार उत्तर होते हैं।

वे तैयार होकर बैठ गए हैं। उनकी रीढ़ें सीधी हो गईं।। जैसे छोटे बच्चे स्कूल में परीक्षाएं देने को तैयार हो जाते हैं। छोटे बच्चों में, बड़े पंडितों में बहुत फर्क नहीं। परीक्षाओं में फर्क हो सकता है। तैयार हो गया पंडितों का वर्ग। उन्होंने कहा, पूछो!

सोचा कि शायद पूछेगा, ब्रह्म क्या है? मोक्ष क्या है? आत्मा क्या है? कठिन सवाल पूछेगा। तो सब उत्तर तैयार थे। उन्होंने मन में दुहरा लिए जल्दी से कि क्या उत्तर देने हैं।

जिस आदमी के पास उत्तर नहीं होता है, उसके पास बहुत उत्तर होते हैं। और जिसके पास उत्तर होता है, उसके पास तैयार कोई उत्तर नहीं होता है। प्रश्न आता है तो उत्तर पैदा होता है। उनके पास प्रश्न पहले से तैयार होते हैं, जिनके पास बोध नहीं होता है। क्योंकि बोध न हो तो प्रश्न तैयार, प्रश्न का उत्तर तैयार होना चाहिए, नहीं तो वक्त पर मुश्किल हो जाएगा।

उन पंडितों ने जल्दी से अपने सारे ज्ञान की खोजबीन कर ली होगी। उसने चार-पांच कागज के टुकड़े उन पंडितों के हाथ में पकड़ा दिए, एक-एक टुकड़ा। और कहा कि एक छोटा सा सवाल पूछता हूं, व्हाट इ.ज ब्रेड? रोटी क्या है?

पंडित मुश्किल में पड़ गए, क्योंकि किसी किताब में नहीं लिखा हुआ है।। किसी उपनिषद में नहीं, किसी वेद में नहीं, किसी पुराण में नहीं।। व्हाट इ.ज ब्रेड, रोटी क्या है? कहा कि कैसा नासमझ आदमी है! कैसा सरल सवाल पूछता है।

लेकिन वह फकीर समझदार रहा होगा। उसने कहा, आप लिख दें एक-एक कागज पर। और ध्यान रहे, एक-दूसरे के कागज को मत देखना! क्योंकि पंडित सदा चोर होते हैं, वे सदा दूसरों के उत्तर सीख लेते हैं। आस-पास मत देखना। जरा दूर-दूर हट कर बैठ जाओ। अपना-अपना उत्तर लिख दो।

राजा भी बहुत हैरान हुआ। राजा ने कहा, क्या पूछते हो तुम?

उसने कहा, इतना उत्तर दे दें तो गनीमत है। पंडितों से ज्यादा आशा नहीं करनी चाहिए। बड़ा सवाल बाद में पूछूंगा, अगर छोटे सवाल का उत्तर आ जाए।

पहले आदमी ने बहुत सोचा, रोटी यानी क्या? फिर उसने लिखा कि रोटी एक प्रकार का भोजन है। और क्या करता? दूसरे आदमी ने बहुत सोचा, रोटी यानी क्या? तो उसने लिखा, रोटी आटा, पानी और आग का जोड़ है। और क्या करता? तीसरे आदमी ने बहुत सोचा, रोटी यानी क्या? उसे उत्तर नहीं मिलता। तो उसने लिखा, रोटी भगवान का एक वरदान है। पांचवें ने लिखा कि रोटी एक रहस्य है, एक पहेली है, क्योंकि रोटी खून कैसे बन जाती है, यह भी पता नहीं। रोटी एक बड़ा रहस्य है, रोटी एक मिस्ट्री है। छठे ने लिखा, रोटी क्या है, यह सवाल ही गलत है। यह सवाल इसलिए गलत है कि इसका उत्तर ही पहले से कहीं लिखा हुआ नहीं है। गलत सवाल पूछता है यह आदमी। सवाल वे पूछने चाहिए, जिनके उत्तर लिखे हों। सातवें आदमी ने कहा कि मैं उत्तर देने से इनकार करता हूं, क्योंकि उत्तर तब दिया जा सकता है, जब मुझे पता चल जाए कि पूछने वाले ने किस दृष्टि से पूछा है। तो रोटी यानी क्या? हजार दृष्टिकोण हो सकते हैं, हजार उत्तर हो सकते हैं। स्यादवादी रहा होगा। कहा कि यह भी हो सकता है, वह भी हो सकता है।

सातों उत्तर लेकर राजा के हाथ में फकीर ने दे दिए और उससे कहा कि ये आपके पंडित हैं! इन्हें यह पता नहीं है कि रोटी क्या है! और इनको यह पता है कि नास्तिक क्या है, आस्तिक क्या है! लोग किससे भ्रष्ट होंगे, किससे बनेंगे, यह इनको पता हो सकता है!

राजा ने कहा, पंडितो, एकदम दरवाजे के बाहर हो जाओ!

पंडित बाहर हो गए। उसने फकीर से पूछा कि तुमने बड़ी मुश्किल में डाल दिया है।

फकीर ने कहा, जिनकी खोपड़ी पर भी ज्ञान का बोझ है, उन्हें सरल सा सवाल मुश्किल में डाल सकता है। जितना ज्यादा बोझ, उतनी समझ कम हो जाती है। क्योंकि यह खयाल पैदा हो जाता है बोझ से कि समझ तो है। और समझ ऐसी चीज है कि कांस्टेंटली क्रिएट करनी पड़ती है, है नहीं। कोई ऐसी चीज नहीं है कि आपके भीतर रखी है समझ। उसे आप रोज पैदा करिए तो वह पैदा होती है, और बंद कर दीजिए तो बंद हो जाती है। समझ साइकिल चलाने जैसी है। जैसे एक आदमी साइकिल चला रहा है। अब साइकिल चल पड़ी है। अब वह कहता है, साइकिल तो चल पड़ी है, अब पैडल रोक लें। अब पैडल रोक लें, साइकिल चलेगी? चार-छह कदम के बाद गिरेगा। हाथ-पैर तोड़ लेगा। साइकिल का चलना निरंतर चलाने के ऊपर निर्भर है।

प्रतिभा भी निरंतर गति है। जीनियस कोई डेड, स्टैटिक एंटाइटी नहीं है। प्रतिभा कोई ऐसी चीज नहीं है कि कहीं रखी है भीतर, कि आपके पास कितनी प्रतिभा है, सेर भर और किसी के पास दो सेर! ऐसी कोई चीज नहीं है प्रतिभा। प्रतिभा मूवमेंट है, गति है, निरंतर गति है।

इसलिए निरंतर जो सृजन करता है, उसके भीतर मस्तिष्क, बुद्धि और प्रतिभा, प्रज्ञा पैदा होती है। जो सृजन बंद कर देता है, उसके भीतर जंग लग जाती है और सब खत्म हो जाती है।

रोज चलिए। और चलेगा कौन? जिसको यह खयाल नहीं है कि मैं पहुंच गया। जिसको यह खयाल हो गया कि पहुंच गया, वह चलेगा क्यों? वह विश्राम करेगा, वह लेट जाएगा। ज्ञान का बोध पहुंच जाने का खयाल पैदा करवा देता है कि हम पहुंच गए, पा लिया, जान लिया, अब क्या है? रुक गए।

ज्ञान कितना ही आए, और ज्ञान आने की क्षमता निरंतर शेष रहनी चाहिए। वह तभी रह सकती है, जब ज्ञान बोझ न बने। ज्ञान को हटाते चलें। रोज सीखें। और रोज जो सीख जाएं, राख की तरह झाड़ दें। और कचरे की तरह।। जैसे सुबह फेंक दिया था घर के बाहर कचरा।। ऐसे रोज सांझ, जो जाना, जो सीखा, उसे फेंक दें। ताकि कल आप फिर ताजे सुबह उठें, और फिर जान सकें, फिर सीख सकें, सीखना जारी रहे। ध्यान रहे, क्या हम सीखते हैं, यह मूल्यवान नहीं है। कितना हम सीखते हैं।। उस सीखने की प्रक्रिया से गुजरने वाली आत्मा निरंतर जवान होती चली जाती है।

सुकरात जितना जवानी में रहा होगा, मरते वक्त उससे ज्यादा जवान है। क्योंकि मरते वक्त भी सीखने को तैयार है। मर रहा है, जहर दिया जा रहा है, जहर बाहर बांटा जा रहा है। सारे मित्र रो रहे हैं, और सुकरात उठ-उठ कर बाहर जाता है, और जहर घोंटने वाले से पूछता है, बड़ी देर लगाते हो! समय तो हो गया, सूरज अब डूबा जाता है।

वह जहर घोंटने वाला कहने लगा, पागल हो गए हो सुकरात! मैं तुम्हारी वजह से धीरे-धीरे घोंटता हूं कि तुम थोड़ी देर और जिंदा रह लो। ताकि इतने अच्छे आदमी का पृथ्वी पर और थोड़ी देर रहना हो जाए। तुम पागल हो, तुम खुद ही इतनी जल्दी मचा रहे हो! तुम्हें जल्दी क्या है?

उसके मित्र पूछते हैं, इतनी जल्दी क्या है? क्यों इतनी मरने की आतुरता है?

सुकरात कहता है, मरने की आतुरता नहीं; जीवन को जाना, मौत भी जानने का बड़ा मन हो रहा है कि क्या है मौत?

क्या है मौत? मरने के क्षण पर खड़ा हुआ आदमी जानना चाहता है कि क्या है मौत? यह आदमी जवान है। इसको मार सकते हो? इसका मारना बहुत मुश्किल है। इसको मौत भी नहीं मार सकती है। यह मौत को भी जान लेगा और पार हो जाएगा।

जो जान लेता है, वह पार हो जाता है। जिसे हम जान लेते हैं, उससे पार हो जाते हैं।

लेकिन हम मरने के पहले ही जानना बंद कर देते हैं। आमतौर से बीस साल के, इक्कीस साल के करीब आदमी की बुद्धि ठप हो जाती है। उसके बाद बुद्धि विकसित नहीं होती, सिर्फ संग्रह बढ़ता चला जाता है।। सिर्फ संग्रह। दस पत्थर की जगह पंद्रह पत्थर हो जाते हैं, बीस पत्थर हो जाते हैं। दस किताबों की जगह पचास किताबें हो जाती हैं, लेकिन क्षमता जानने की फिर आगे नहीं बढ़ती। बस इक्कीस साल में आदमी बुद्धि के हिसाब से मर जाता है। बूढ़ा हो जाता है।

कुछ लोग और जल्दी मरना चाहते हैं।। और जल्दी! और जो जितनी जल्दी मर जाता है, समाज उसको उतना ही आदर देता है। जो जितनी देर जिंदा रहेगा, उससे उतनी तकलीफ होती है समाज को। क्योंकि जिंदा

आदमी, सोचने वाला आदमी, खोजने वाला आदमी नये पहलू देखता है, नये आयाम देखता है, डिस्टर्बिंग होता है। बहुत सी जगह चीजों को तोड़ता-मरोड़ता मालूम होता है।

हम सब ज्ञान के बोझ से दब गए हैं।

मैंने सुना है, एक आदमी घोड़े पर सवार जा रहा है एक गांव को। गांव के लोगों ने उसे घेर लिया है, और कहा कि तुम बहुत अदभुत आदमी हो। वह आदमी अदभुत रहा होगा। वह अपना पेटी-बिस्तर सिर पर रखे हुए था और घोड़े के ऊपर बैठा हुआ था। गांव के लोगों ने पूछा, यह तुम क्या कर रहे हो? घोड़े पर पेटी-बिस्तर रख लो।

उसने कहा, घोड़े पर बहुत ज्यादा वजन हो जाएगा, इसलिए मैं अपने सिर पर रखे हुए हूं!

उस आदमी ने सोचा कि घोड़े पर पेटी-बिस्तर रखने से बहुत वजन हो जाएगा, कुछ हिस्सा बंटा लें। खुद घोड़े पर बैठे हुए हैं और पेटी-बिस्तर अपने सिर पर रखे हुए हैं, ताकि अपने पर कुछ वजन पड़े और घोड़े पर वजन कम हो जाए।

ज्ञान को अपने सिर पर मत रखिए। जिंदगी काफी समर्थ है। आप छोड़ दीजिए, आपकी जिंदगी की धारा उसे सम्हाल लेगी। उसे सिर पर रखने की जरूरत नहीं। और सिर पर रखने से कोई फायदा नहीं। आप तो छोड़िए। जो भी उसमें एसेंशियल है, जो भी सारभूत है, वह आपकी चेतना का हिस्सा होता चला जाएगा। उसे सिर पर मत रखिए। किताबों को सिर पर मत रखिए। रेडीमेड उत्तर सिर पर मत रखिए, बंधे हुए उत्तर से बचिए, बंधे हुए ज्ञान से बचिए।। और भीतर एक युवा चित्त पैदा हो जाएगा।

जो व्यक्ति ज्ञान के बोझ से मुक्त हो जाता है, जो व्यक्ति भय से मुक्त हो जाता है, वह व्यक्ति युवा हो जाता है।

और जो व्यक्ति बूढ़ा होने की कोशिश में लगा है, अपने ही हाथों से, क्योंकि ध्यान रहे, मैं कहता हूं कि बुढ़ापा अर्जित है। बुढ़ापा है नहीं। हमारा अचीवमेंट है, हमारी चेष्टा से पाया हुआ फल है।

जवानी स्वाभाविक है, युवा चित्त होना स्वभाव है।

वृद्धावस्था हमारा अर्जन है।

अगर हम समझ जाएं, चित्त से कैसे वृद्ध होता है, तो हम तत्क्षण जवान हो जाएंगे।

बूढ़ा चित्त बोझ से भरा चित्त है, जवान चित्त निर्बोझ है। बोझिल है बूढ़ा चित्त।

जवान चित्त निर्बोझ है, वेटलेस है। जवान चित्त ताजा है। जैसे सुबह अंकुर खिला हो, निकला हो नये बीज से, ऐसा ताजा है। जैसे नया बच्चा पैदा हुआ हो, जैसे नया फूल खिला हो, जैसी नई ओस की बूंद गिरी हो, नई किरण उठी हो, नया तारा जगा हो, वैसा ताजा है।

बूढ़ा चित्त जैसे अंगारा बुझ गया, राख हो गया हो। पत्ता सड़ गया, गिर गया, मर गया। जैसे दुर्गंध इकट्ठी हो गई हो, सड़ गई हो लाश। इकट्ठी कर ली हैं लाशें, तो घर में रख दी हैं, तो बास फैल गई हो। ऐसा है बूढ़ा चित्त।

नया चित्त, ताजा चित्त, यंग माइंड नदी की धारा की तरह तेज, पत्थरों को काटता, जमीन को तोड़ता, सागर की तरफ भागता है।। अनंत, अज्ञात की यात्रा पर।

और बूढ़ा चित्त? तालाब की तरह बंद। न कहीं जाता, न कहीं यात्रा करता है; न कोई सागर है आगे, न कोई पथ है, न कोई जमीन काटता, न पत्थर तोड़ता, न पहाड़ पार करता।। कहीं जाता ही नहीं। बूढ़ा चित्त बंद,

अपने में घूमता, सड़ता, गंदा होता। सूरज की धूप में पानी उड़ता और सूखता और कीचड़ होता चला जाता है। इसलिए जवान चित्त जीवन है, बूढ़ा चित्त मृत्यु है।

और अगर जीवन को जानना हो, परम जीवन को, जिसका नाम परमात्मा है, उस परम जीवन को, तो युवा चित्त चाहिए, यंग माइंड चाहिए।

और हमारे हाथ में है कि हम अपने को बूढ़ा करें या जवान। हमारे हाथ में है कि हम वृद्ध हो जाएं, सड़ जाएं या युवा हों, ताजे और नये। नये बीज की तरह हमारे भीतर कुछ फूटे या पुराने रिकार्ड की तरह कुछ बार-बार रिपीट होता रहे। हमारे हाथ में है सब।

आदमी के हाथ में है कि वह प्रभु के लिए द्वार बन जाए। तो जो युवा है भीतर, प्रभु के लिए द्वार बन गया।

और जो बूढ़ा हो गया उसकी दीवाल बंद है, द्वार बंद है। वह अपने में मरेगा, गलेगा, सड़ेगा। कब्र के अतिरिक्त उसका कहीं और पहुंचना नहीं होता।

लेकिन अब तक जो समाज निर्मित हुआ है, वह बूढ़े चित्त को पैदा करने वाला समाज है।

एक नया समाज चाहिए, जो नये चित्त को जन्म देता हो। एक नई शिक्षा चाहिए, जो बूढ़े चित्त को पैदा न करती हो और नये चित्त को पैदा करती हो। एक नई हवा, नया प्रशिक्षण, नई दीक्षा, नया जीवन, एक नया वातावरण चाहिए, जहां अधिकतम लोग जवान हो सकें। बूढ़ा आदमी अपवाद हो जाए, वृद्ध चित्त अपवाद हो जाए, जहां युवा चित्त हो।

अभी उलटी बात है। युवा चित्त अपवाद है। कभी कोई बुद्ध, कभी कोई कृष्ण, कभी कोई क्राइस्ट युवा होता है और परमात्मा की सुगंध और गीत और नृत्य से भर जाता है। हजारों साल तक उसकी सुगंध खबर लाती रहती है। इतनी ताजगी पैदा कर जाता है कि हजारों साल तक उसकी सुगंध आती है। उसके प्राणों से उठी हुई पुकार गूंजती रहती है। कभी ये मनुष्यता के लंबे इतिहास में दो-चार लोग युवा होते हैं। हम सब बूढ़े ही पैदा होते हैं और बूढ़े ही मर जाते हैं!

लेकिन हमारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है। ये मैंने दो बातें निवेदन कीं। इन पर सोचना। मेरी बात मान मत लेना। जो मानता है, वह बूढ़ा होना शुरू हो जाता है। सोचना, गलत हो सकता हो, सब गलत हो सकता हो। जो मैंने कहा, एक भी ठीक न हो। सोचना, खोजना, शायद कुछ ठीक हो तो वह आपके जीवन को युवा करने में मित्र बन सकता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

आठवां प्रवचन

नारी और क्रांति

मेरे प्रिय आत्मन्!

व्यक्तियों में ही, मनुष्यों में ही स्त्री और पुरुष नहीं होते हैं--पशुओं में भी, पक्षियों में भी। लेकिन एक और भी नई बात आपसे कहना चाहता हूंः देशों में भी स्त्री और पुरुष देश होते हैं।

भारत एक स्त्री देश है और स्त्री देश रहा है। भारत की पूरी मनःस्थिति स्त्रैण है। ठीक उसके उलटे जर्मनी या अमेरिका जैसे देशों को पुरुष देश कहा जा सकता है। भारत की पूरी आत्मा नारी है। और इसलिए ही भारत कभी भी आक्रामक नहीं हो पाया--पूरे इतिहास में आक्रामक नहीं बन पाया। इसीलिए भारत में हिंसा का कोई प्रभाव पैदा नहीं हो सका। भारत की पूरे विचार की कथा अहिंसा की कथा है। भारत के पूरे इतिहास को देखें तो एक बहुत आश्चर्यजनक घटना मालूम पड़ती है। दुनिया का कोई भी देश उस अर्थों में स्त्रैण, नारी नहीं है, जिस अर्थों में भारत है।

यही भारत का दुर्भाग्य भी सिद्ध हुआ। क्योंकि सारा जगत पुरुषों का, सारा जगत पुरुष-वृत्तियों का, सारा जगत आक्रामक, सारा जगत हिंसात्मक, भारत अकेला आक्रामक नहीं, हिंसात्मक नहीं! तो भारत के पिछले तीन हजार वर्ष का इतिहास दुख, परेशानी और कष्ट का इतिहास रहा है।

लेकिन यही तथ्य आने वाले भविष्य में सौभाग्य का कारण भी बन सकता है। क्योंकि जिन देशों ने पुरुष के प्रभाव में विकास किया, वे अपनी मरण घड़ी के निकट पहुंच गए हैं। पुरुष का चित्त आक्रमण का चित्त है, एग्रेशन। पुरुष का चित्त हिंसा का चित्त है, वायलेंस का। पश्चिम के जिन देशों ने पुरुष चित्त के अनुकूल विकास किया, वे सारे देश धीरे-धीरे युद्धों से गुजर कर अंतिम युद्ध, टोटल वार के करीब पहुंच गए हैं। अब कोई परिणति नहीं मालूम होती सिवाय इसके कि या तो वे टकराएं और टूट जाएं, नष्ट हो जाएं; और उनके साथ पुरुष ने जो सभ्यता खड़ी की है आज तक, वह सारी की सारी नष्ट हो जाए। या दूसरा उपाय यह है कि इतिहास का चक्र घूमे और पुरुष की सभ्यता की कथा बंद हो, और एक नया अध्याय शुरू हो, जो अध्याय स्त्री चित्त की सभ्यता का अध्याय होगा।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। इसे हम समझें तो हम मनुष्य चेतना के भीतर चलने वाले सबसे बड़े ऊहापोह से परिचित हो सकेंगे।

नीत्शे जैसा व्यक्ति भारत में हम लाख कोशिश करें तो पैदा नहीं हो सकता है। नीत्शे जर्मनी में ही पैदा हो सकता है। और जर्मनी लाख उपाय करे तो भी गांधी और बुद्ध जैसे आदमी को पैदा करना जर्मनी के लिए असंभव है। गांधी और बुद्ध जैसे व्यक्ति भारत में ही पैदा हो सकते हैं। यह पैदा हो जाना आकस्मिक नहीं है, यह एक्सीडेंटल नहीं है। कोई व्यक्ति पैदा होता है, कोई विचारधारा पैदा होती है, पूरे देश के प्राणों के हजारों वर्षों के मंथन का परिणाम होता है।

यह आश्चर्यजनक है कि भारत का आज तक का पूरा इतिहास भूल कर भी पुरुष का इतिहास नहीं रहा है। और इसीलिए भारत में विज्ञान का जन्म भी नहीं हो सका। विज्ञान एक पुरुष कर्म है। विज्ञान का अर्थ हैः प्रकृति पर विजय। विज्ञान का अर्थ हैः जो चारों तरफ फैला हुआ जगत है, उसको जीतना है। पुरुष का मन जीत में बहुत आतुर है।

भारत ने प्रकृति को जीतने की कोई कोशिश नहीं की। असल में, भारत ने कभी भी किसी को जीतने की कोई कोशिश नहीं की। जीतने की धारणा ही भारत के चित्त में बहुत गहरे नहीं जा सकी। कभी किन्हीं ने छोटे-मोटे प्रयास किए तो भारत की आत्मा उनके साथ खड़ी नहीं हो सकी।

स्वभावतः, जिस दुनिया में सारे लोग जीतने के लिए आतुर हों, उसमें भारत पिछड़ता चला गया। यह भी दिखाई पड़ेगा कि इस पिछड़ जाने में अब तक तो दुर्भाग्य रहा। लेकिन आगे सौभाग्य हो सकता है। क्योंकि वे जो जीत की दौड़ में आगे गए थे, वे अपनी जीत के ही अंतिम परिणाम में वहां पहुंच गए हैं, जहां आत्मघात के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता।

बुद्ध ने कहा था, वैर से वैर को नहीं जीता जा सकता और हिंसा से हिंसा भी नहीं जीती जा सकती।

लेकिन यह किसी ने भी सुना नहीं। सुना नहीं जा सकता था, समय नहीं था परिपक्व सुनने के लिए। आज यह बात सुनी जा सकती है। आज यह समझ में आना शुरू हो गया कि आज तो हिंसा का अर्थ है सार्वजनिक विनाश!

पिछले महायुद्ध में हिरोशिमा और नागासाकी पर जो एटम गिराया गया था, उस समय विचारशील लोगों ने सोचा था, इससे खतरनाक अस्त्र अब पैदा नहीं हो सकेगा। लेकिन बीस ही वर्षों में उन विचारशीलों को पता चला कि आज हिरोशिमा और नागासाकी में गिराए गए एटम बम बच्चों के खिलौने मालूम पड़ते हैं। इतने बीस वर्षों में हमने बड़े अस्त्र पैदा कर लिए!

एक उदजन बम चालीस हजार वर्गमील में किसी तरह के जीवन को नहीं बचने देगा। और आज पृथ्वी पर पचास हजार उदजन बम तैयार हैं। ये पचास हजार उदजन बम जरूरत से ज्यादा हैं, सरप्लस हैं। अगर हम पूरी पृथ्वी को भी नष्ट करना चाहें तो थोड़े से बम से काम हो जाएगा, इतनों की जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन राजनैतिज्ञ बहुत होशियार हैं। वे सोचते हैं, कोई भूल-चूक न हो जाए, इसलिए पूरा--और पूरा जरूरत से ज्यादा--इंतजाम कर लेना उचित है। पचास हजार उदजन बम इस तरह की सात पृथ्वियों को नष्ट करने के लिए काफी हैं। यह पृथ्वी बहुत छोटी है। या हम ऐसा समझ सकते हैं कि अभी मनुष्य-जाति की कुल संख्या साढ़े तीन अरब है, पच्चीस अरब लोगों को मारने के लिए हमने इंतजाम कर लिया है। या हम ऐसा भी समझ सकते हैं कि अगर एक-एक आदमी को सात-सात बार मारना पड़े तो हमारे पास सुविधा और व्यवस्था है। हालांकि आदमी एक ही बार में मर जाता है, दुबारा मारने की जरूरत नहीं पड़ती है। लेकिन भूल-चूक न हो जाए, इसलिए इंतजाम कर लेना ठीक से उचित और जरूरी है।

एक-एक आदमी को सात-सात बार मारने के इंतजाम का अर्थ क्या है? प्रयोजन क्या है? यह क्या पागल दौड़ है? क्या मनुष्य-जाति का मन विक्षिप्त हो गया है?

मनुष्य-जाति का मन निश्चित विक्षिप्त हो गया है, क्योंकि मनुष्य-जाति का पूरा का पूरा अब तक का विकास अकेले पुरुष का विकास है। पुरुष आधा है मनुष्य-जाति का। आधी स्त्री का उस विकास में कोई भी हाथ नहीं है! इसलिए संतुलन खो गया है, बैलेंस खो गया है।

यह दुनिया करीब-करीब ऐसी है, जैसे एक देश में स्त्रियां बिल्कुल न हों, सिर्फ पुरुष ही पुरुष रह जाएं, तो वह देश पागल हो जाएगा। ठीक इससे उलटा भी हो जाएगा। अगर किसी देश में सिर्फ स्त्रियां ही स्त्रियां हों और पुरुष न हों, तो भी वह देश पागल हो जाएगा। स्त्री और पुरुष परिपूरक हैं। वे दोनों साथ हैं, तभी पूरे हैं। लेकिन सभ्यता के मामले में जो सभ्यता आज तक निर्मित हुई है, वह अकेले पुरुष की सभ्यता है, उसमें स्त्री का कोई

योगदान नहीं है। स्त्री से कोई मांग भी नहीं की गई। स्त्री ने आगे बढ़ कर योगदान किया भी नहीं। यह पुरुष की सभ्यता पागल होने के करीब आ गई है।

एक छोटी सी कहानी से मैं समझाने की कोशिश करूं, जो मुझे बहुत प्रीतिकर रही है।

एक झूठी कहानी है। मैंने सुना है कि ईश्वर दूसरे महायुद्ध के बाद बहुत परेशान हो गया। ईश्वर तो तभी से परेशान है, जब से उसने आदमी को बनाया। जब तक आदमी नहीं था, बड़ी शांति थी दुनिया में। जब से आदमी को बनाया, तब से ईश्वर बहुत परेशान है। सुना तो मैंने यह है कि तब से वह ठीक से सो नहीं सका है बिना नींद की दवा लिए। सो भी नहीं सकता है। आदमी सोने दे तब! न आदमी खुद सोता है, न किसी और को सोने देता है। और इतने आदमी मिल कर ईश्वर को तो सोने कैसे देंगे! इसीलिए आदमी को बनाने के बाद ईश्वर ने फिर और कुछ नहीं बनाया। बनाने का काम ही बंद कर दिया। इतना घबड़ा गया होगा कि अब बस क्षमा चाहते हैं, अब आगे बनाना ठीक नहीं।

दूसरे महायुद्ध के बाद वह घबड़ा गया होगा। ऐसे तो इतने युद्ध हुए हैं कि ईश्वर की छाती पर कितने घाव पड़े होंगे, कहना मुश्किल है। और सबसे बड़ा मजा तो यह है कि हर घाव पहुंचाने वाला ईश्वर की प्रार्थना करके ही घाव पहुंचाता है। और मजा तो यह है कि हर युद्ध करने वाला ईश्वर से प्रार्थना करता है कि हमें विजेता बनाना। चर्चों में घंटियां बजाई जाती हैं, मंदिरों में प्रार्थनाएं की जाती हैं--युद्धों में जीतने के लिए! पोप आशीर्वाद देते हैं--युद्धों में जीतने के लिए! ईश्वर की छाती पर जो घाव लगते होंगे, उन घावों का हिसाब लगाना मुश्किल है।

तीन हजार साल के इतिहास में पंद्रह हजार युद्ध हुए हैं। और आगे का पीछे का इतिहास तो पता नहीं है। हम यह मान नहीं सकते कि उसके पहले आदमी नहीं लड़ता रहा होगा। लड़ता ही रहा होगा। जब तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध करता है आदमी, प्रतिवर्ष पांच युद्ध करता है, तो ऐसा मानना बहुत मुश्किल है कि उसके पहले वह शांत रहा होगा। इतना ही है कि उसके पहले का इतिहास हमें ज्ञात नहीं।

दूसरे महायुद्ध के बाद तो ईश्वर बहुत घबड़ा गया। क्योंकि पहले महायुद्ध में साढ़े तीन करोड़ लोगों की हत्या हुई थी। दूसरे महायुद्ध में हत्या की संख्या साढ़े सात करोड़ पहुंच गई! क्या हो गया आदमी को? उसने दुनिया के तीन बड़े प्रतिनिधियों को अपने पास बुलाया--रूस को, अमेरिका को, ब्रिटेन को। और उनसे पूछा कि मैं तुम्हें वरदान देना चाहता हूं! तुम एक-एक वरदान मांग लो, ताकि यह दुनिया की पागल दौड़ बंद हो जाए। युद्ध बंद हो जाएं। आदमी बच सके। और फिर यह तो ठीक भी है, अगर आदमी यह तय करता हो कि हमें मरना है तो मर जाए। लेकिन अपने साथ सारे जीवन को नष्ट करने का तो कोई हक मनुष्य को नहीं है। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं!

ईश्वर से हमेशा प्रार्थना की गई थी, लेकिन समय बदल गया। कभी नाव नदी पर होती है, कभी नदी नाव पर हो जाती है! ईश्वर ने हाथ जोड़ कर घुटने टेक दिए उन तीनों के सामने कि हम प्रार्थना करते हैं, एक-एक वरदान मांग लो। तुम जो भी चाहते हो, मैं पूरा कर दूं।

अमेरिका के प्रतिनिधि ने कहा, हे महाप्रभु, एक ही इच्छा है हमारी, वह पूरी हो जाए, फिर दुनिया में कभी युद्ध नहीं होगा। रूस जमीन पर न बचे। उसका कोई निशान न रह जाए जमीन पर। इतना हम चाहते हैं। और हमारी कोई आकांक्षा नहीं।

ईश्वर ने घबड़ा कर रूस की तरफ देखा। जब अमेरिका यह कहता हो--धार्मिक देश! तो रूस क्या कहेगा?

रूस ने कहा, महाशय! या हो सकता है कहा हो, कामरेड! क्षमा करें। पहले तो मैं विश्वास नहीं करता कि आप हैं। कैपिटल पढ़ी है कार्ल मार्क्स की? कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो पढ़ा है एंजल्स और मार्क्स का? कितने जमाने पहले खबर कर दी उन्होंने कि भगवान नहीं है। और उन्नीस सौ सत्रह से रूस के गिरजों से आपको निकाल बाहर किया है। आप अब नहीं हैं। मुझे शक होता है कि या तो मैं वोदका शराब ज्यादा पी गया हूं, इसलिए आप दिखाई पड़ रहे हैं। और या यह भी हो सकता है कि मैं कोई सपना देख रहा हूं। लेकिन बड़ा आश्चर्यजनक कि सोवियत भूमि पर ऐसा धार्मिक सपना कैसे संभव हो पाता है! अगर सरकार को पता लग गया कि ऐसे धार्मिक सपने भी आदमी देखते हैं, तो सपने देखने पर भी पाबंदी हो जाएगी। सपने देखने की स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती आदमी को। गलत सपने देखने की स्वतंत्रता दी जा सकती है? रूस में नहीं दी जा सकती। चीन में नहीं दी जा सकती। लेकिन फिर भी मैं आपसे यह कहता हूं कि हो सकता है आप हों। एक सबूत दे दें अपने होने का, तो हम आपकी पूजा फिर शुरू कर देंगे--दीये जलेंगे, धूप जलेगी, मंदिरों में पूजा होगी, घंटियां बजेंगी--एक इच्छा पूरी कर दें। एक ही इच्छा है हमारी--दुनिया का नक्शा हो, लेकिन अमेरिका के लिए कोई रंग-रेखा उस नक्शे पर हम नहीं चाहते। और घबड़ाएं मत--क्योंकि ईश्वर घबड़ा गया होगा--घबड़ाएं मत! अगर आप न कर सकें तो फिकर मत करें, हमने खुद यह काम करने का पूरा इंतजाम कर लिया है। हम खुद भी कर लेंगे। हम आपके भरोसे पर नहीं कर रहे हैं यह इंतजाम। यह इंतजाम अपने पैरों पर किया है। और हमें इसकी भी कोई चिंता नहीं है कि अमेरिका को मिटाने में हम मिट जाएंगे। हम मिट जाएं, उसकी फिकर नहीं, लेकिन अमेरिका नहीं रहना चाहिए--यह हमारा कस्द है।

ईश्वर ने बहुत घबड़ा कर ब्रिटेन की तरफ देखा। और ब्रिटेन ने जो कहा, वह ध्यान से सुन लेना! ब्रिटेन ने कहा, हे परम पिता--चरणों पर सिर रख दिया, और कहा--हमारी कोई आकांक्षा नहीं, इन दोनों की आकांक्षाएं एक साथ पूरी कर दी जाएं, हमारी आकांक्षा पूरी हो जाएगी।

यह हमें हंसने जैसा मालूम होता है। लेकिन किस पर हंसते हैं हम--ब्रिटेन पर, अमेरिका पर, रूस पर, भगवान पर--किस पर हंसते हैं? या कि अपने पर, या कि मनुष्य पर, या कि मनुष्यता पर?

मनुष्य को क्या हुआ है? कौन सा रोग है उसके मन में? उसके प्राणों को कौन सी चीज खा रही है कि मिटाना, मिटाना, यही इसके प्राणों की पुकार बन गई है--मृत्यु और मृत्यु!

पुरुष जीतना चाहता है। और जीत उसको एक ही तरह सूझती है--मारने से, मृत्यु से, मिटाने से। पुरुष को सूझता ही नहीं कि मिटाने के अलावा भी कोई जीत होती है। उसे यह पता ही नहीं है कि मिटा कर कभी कोई जीता ही नहीं है। एक और जीत भी होती है, जो मिटाने से नहीं आती! उसे यह पता ही नहीं है कि एक और जीत भी होती है, जो हार जाने से आती है। यह पुरुष को पता ही नहीं है! एक ऐसी जीत भी हो सकती है, जो उसको मिलती है जो हार जाता है, जो लड़ता ही नहीं। इसका पुरुष को कोई भी पता नहीं। उसे पता हो भी नहीं सकता। उसके चित्त की पूरी की पूरी प्रकृति एग्रेसिव है, आक्रामक है। उसका एक ही खयाल हैः दबो या दबाओ, हारो या जीतो। और जीतने की दौड़ में चाहे कुछ भी हो जाए--खुद मिटो, चाहे कोई मिट जाए--लेकिन जीतना जरूरी है।

लेकिन जीतना किसलिए जरूरी है? जीतना जीने के लिए जरूरी है, और जीतने में मौत लानी पड़ती है और जीना मुश्किल हो जाता है। अजीब चक्कर है! जीतना जीने के लिए जरूरी मालूम पड़ता है, और जीतने में मौत आती है और जीना मुश्किल हो जाता है।

लेकिन इसी विसियस सर्किल में, इसी दुष्टचक्र में पिछले तीन-चार हजार वर्ष का इतिहास आदमी का घूमते-घूमते आखिरी जगह, क्लाइमेक्स पर आ गया है, जहां कि विश्वयुद्ध की पूरी संभावना खड़ी हो गई है। या तो विश्वयुद्ध होगा और सारी मनुष्यता समाप्त होगी। और या फिर अब तक मनुष्य-जाति के दूसरे हिस्से ने कोई भी कंट्रीब्यूशन, कोई भी मनुष्य की सभ्यता को निर्माण करने में, मनुष्य को जीने में, सहयोग देने में, जो आधी दुनिया अब तक चुपचाप खड़ी रही है, उसे कुछ करना पड़ेगा। और एक नई सभ्यता को, जो पुरुष प्रधान न हो, एक नई सभ्यता को, जो स्त्री के हृदय और स्त्री के गुणों पर खड़ी होती हो, उसको जन्म देना पड़ेगा।

नीत्शे ने बहुत क्रोध से यह बात लिखी है कि मैं बुद्ध को और क्राइस्ट को स्त्रैण मानता हूं, वूमेनिश मानता हूं। यह उसने गाली दी है बुद्ध को और क्राइस्ट को। अगर वह गांधी को जानता होता तो वह गांधी के बाबत भी यही कहता कि ये तीनों के तीनों आदमी ठीक अर्थों में पुरुष नहीं हैं। और उसने यह सोचा होगा कि किसी पुरुष को स्त्री कह देने से और बड़ी गाली क्या हो सकती है?

लेकिन पुरुष होना ही आज--वह जो पुरुष की आज तक की प्रकृति रही है, उसमें होना आज--संकट, क्राइसिस पैदा कर दिया है। और आज खोजबीन करनी जरूरी है कि स्त्री के चित्त से क्या सभ्यता का आधार, मूल आधार रखा जा सकता है? क्या यह हो सकता है कि हम दूसरी तरफ भी देखें और ध्यान करें कि क्या उस तरफ से भी जीवन की नई दिशाएं, विकास के नये स्रोत, मनुष्यता का एक नया इतिहास रचा जा सकता है?

मुझे लगता है कि रचा जा सकता है। और अगर नहीं रचा जा सकता तो फिर पुरुष के हाथ में अब आगे कोई भविष्य नहीं है, वह अपने अंतिम चरण क्षण पर आ गया है।

लेकिन स्त्रियों को कोई खयाल नहीं है। या तो स्त्रियां गुलाम हैं पुरुष की और या स्त्रियां नंबर दो के पुरुष बनने की कोशिश में संलग्न हैं। दोनों ही हालतें बुरी हैं और स्लेवरी की हैं, गुलामी की हैं। भारत जैसे मुल्कों में स्त्रियों की अपनी कोई आवाज नहीं, अपनी कोई आत्मा भी नहीं। भारत में स्त्री का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं। उसकी कोई पुकार नहीं। उसका कोई होना नहीं। वह न होने के बराबर है।

हालांकि पूरे देश का विचार कभी भी पुरुष चित्त के अनुकूल नहीं रहा, क्योंकि भारत को जिन लोगों ने प्रभावित किया, उन्होंने जीवन के बहुत कोमल गुणों पर जोर दिया--बुद्ध ने करुणा पर, महावीर ने अहिंसा पर। उन्होंने जोर दिया जीवन के प्रेम तत्व पर। लेकिन उनकी आवाज गूंज कर खोती रही। लेकिन यह किसी को खयाल नहीं आया कि यह आवाज अगर स्त्रियां पकड़ लेंगी तो ही सफल हो सकती है, अन्यथा यह आवाज सफल नहीं हो सकती।

अगर पुरुष प्रेम की बात भी करेगा तो अहिंसा से आगे नहीं जा सकता। और इसे थोड़ा समझ लेना। अहिंसा का मतलब होता है, हम हिंसा नहीं करेंगे। यह निगेटिव बात है। हम किसी को चोट नहीं पहुंचाएंगे। अहिंसा से आगे पुरुष का जाना मुश्किल है। वह या तो हिंसा कर सकता है या अहिंसा कर सकता है। लेकिन प्रेम का उसे सूझता ही नहीं! प्रेम पाजिटिव बात है। अहिंसा का मतलब है, हम दूसरे को दुख नहीं पहुंचाएंगे।

एक बात है कि हम दूसरे को दुख पहुंचाएंगे, यही हमारे जीवन का सूत्र होगा। चाहे दूसरे को कितना ही दुख पहुंचे, हम अपना सुख पाएंगे, यही जीवन की आधारशिला होगी। एक सूत्र तो यह है पुरुष का। फिर पुरुष अगर बहुत ही सोच-समझ और विचार का उपयोग करता है, तो वह इसके उलटे सूत्र पर पहुंचता है। वह कहता है, हम दूसरे को दुख नहीं पहुंचाएंगे।

लेकिन स्त्री का चित्त अहिंसा से राजी नहीं हो सकता। स्त्री का चित्त कहता हैः प्रेम।

प्रेम का अर्थ हैः हम दूसरे को सुख पहुंचाएंगे।

इसलिए अहिंसा ठीक अर्थों में हिंसा का विरोध नहीं है, सिर्फ हिंसा का अभाव है। हिंसा का ठीक विरोध प्रेम है। क्योंकि हिंसा कहती हैः हम दूसरे को दुख पहुंचाएंगे, यही हमारे सुख का मार्ग है। प्रेम कहता हैः हम दूसरे को सुख पहुंचाएंगे, यही हमारे सुख का मार्ग है। और अहिंसा बीच में है, अहिंसा कहती हैः हम दूसरे को दुख नहीं पहुंचाएंगे। अहिंसा बहुत इम्पोटेंट है। अहिंसा बीच में अटक जाती है, बहुत आगे नहीं जाती। वह पुरुष को हिंसा करने से रोक लेती है, लेकिन प्रेम करने तक नहीं पहुंचाती।

तो हिंदुस्तान ने अहिंसा की तो बात की। लेकिन चूंकि पुरुषों ने बात की थी, वह भी बहुत थी कि वे अहिंसा तक की बात कर सके। पश्चिम के पुरुषों से उन्होंने एक कदम बहुत आगे उठाया। स्त्री के हृदय की तरफ एक कदम आगे बढ़ाया। लेकिन आखिर पुरुष कितने दूर जा सकते हैं? वह बात अहिंसा पर आकर अटक गई।

और मैंने ऐसा अनुभव किया है कि अगर पुरुष अहिंसा की भी बात करे तो बहुत जल्दी उसकी अहिंसा में भी हिंसा शुरू हो जाती है। अगर पुरुष सत्याग्रह भी करेगा, अगर पुरुष अनशन भी करेगा, तो वह अनशन भी दूसरे की गर्दन दबाने के उपाय की तरह करेगा। वह भी प्रेशर, वह भी दबाव होगा, वह भी जबरदस्ती होगी। अगर दस आदमी अनशन करेंगे किसी काम के लिए, तो वे धमकी दे रहे हैं कि हम मर जाएंगे, नहीं तो हमारी बात मानो! यह धमकी बहुत हिंसापूर्ण है। यह धमकी अहिंसक नहीं है। यह बहुत हिंसापूर्ण है। अहिंसा का भी हिंसात्मक उपयोग है यह।

मैंने सुना है कि ऐसा ही एक युवक एक युवती को प्रेम करता था। उसने जाकर उसके घर के सामने अहिंसक अनशन कर दिया--कि मुझसे विवाह करो, अन्यथा मैं भूखा मर जाऊंगा!

उस घर के लोग घबड़ा गए। क्योंकि अगर वह छुरा लेकर आता तो पुलिस में खबर कर देते। वह छुरा लेकर नहीं आया था। वह धमकी देकर आया था कि मैं मर जाऊंगा। उसने बोरिया-बिस्तर लगा कर द्वार के सामने बैठ गया। गांव में उसका प्रचार करने वाले लोग मिल गए। बेवकूफों का प्रचार करने वालों की कोई कमी नहीं है। उन्होंने जाकर गांव भर में खबर कर दी कि एक अहिंसक आंदोलन हो रहा है! एक युवक ने अपने प्राण बाजी पर लगा दिए हैं!

सारे गांव की सहानुभूति उस युवक के साथ होने लगी। जो भी मरता हो, उसके साथ सहानुभूति स्वाभाविक हो जाती है। घर के लोग बहुत घबड़ा गए। उन्होंने कहा, हम क्या करें? यह तो बड़ी मुसीबत हो गई! तो घर के लोगों को किसी परिचित ने सलाह दी कि गांव में एक और भी अहिंसक सत्याग्रह करने वाला अनुभवी व्यक्ति है, तुम उससे जाकर पूछो। उन्होंने जाकर सलाह ली। उसने कहा, घबड़ाओ मत, हर चीज का उपाय है। अहिंसात्मक धमकी का उपाय अहिंसात्मक ढंग से दिया जा सकता है। मैं रात आ जाऊंगा। घबड़ाओ मत।

वह रात एक बूढ़ी औरत को लेकर वहां पहुंच गया। और उस बूढ़ी औरत ने जाकर अपना बिस्तर लगा दिया और उस युवक से कहा कि मेरे हृदय में तेरे लिए भारी प्रेम का उदय हुआ है। मैं मर जाऊंगी, अगर तूने मुझ से विवाह नहीं किया! मैं अनशन शुरू करती हूं। यह आमरण अनशन है।

उस युवक ने सुना और अपना पेटी-बिस्तर लेकर वह रात भाग गया। स्वाभाविक है।

इस देश में यह हो रहा है। अहिंसा के नाम पर यही हो रहा है। हर आदमी अहिंसा के नाम पर हिंसा की धमकी देता है। आंध्र को अलग करो, नहीं तो आमरण अनशन करके मर जाएंगे! पंजाब को अलग करो, नहीं तो यह हो जाएगा! कोई भी आदमी धमकी दे रहा है।

यह बड़ी हैरानी की बात है कि गांधी ने अहिंसा की बात की और अहिंसा का पुरुष उपयोग बिल्कुल हिंसात्मक ढंग से कर रहे हैं! किसी को कल्पना भी नहीं हो सकती कि पुरुष का मन ऐसा है कि उसके हाथ में जो भी हथियार आ जाएगा--चाहे तलवार और चाहे सत्याग्रह--वह दोनों का उपयोग हिंसात्मक ढंग से करेगा।

पुरुष के चित्त की बनावट आक्रामक है, हिंसात्मक है। और अब तक चूंकि सारी संस्कृति उसके आधार पर निर्मित हुई है, इसलिए सारी संस्कृति हिंसात्मक है।

क्या यह नहीं हो सकता कि स्त्री के हृदय की आवाज को भी इस संस्कृति के निर्माण में पत्थर बनाया जाए?

लेकिन स्त्री तो चुप है! या तो वह गुलाम है, जैसा मैंने कहा, या वह पुरुष होने की दौड़ में है।

पूरब की स्त्री गुलाम है। उसने कभी यह घोषणा ही नहीं की कि मेरे पास भी आत्मा है। वह चुपचाप पुरुष के पीछे चल पड़ती है।

अगर राम को सीता को फेंक देना है, तो सीता की कोई आवाज नहीं है। अगर राम कहते हैं कि मुझे शक है तेरे चरित्र पर, तो उसे आग में डाला जा सकता है।

यह बड़े मजे की बात है। यह किसी के खयाल में कभी नहीं आती कि सीता लंका में बंद थी, अकेली थी, तो राम को उसके चरित्र पर शक होता है। लेकिन सीता को राम के चरित्र पर शक नहीं होता--वे इतने दिन अकेले थे! और अगर अग्नि से गुजरना ही है तो राम को आगे और सीता को पीछे गुजरना चाहिए। जैसा कि हमेशा शादी-विवाह में राम आगे रहे और सीता पीछे रही, चक्कर लगाती रही। फिर आग में घुसते वक्त सीता अकेली आग में चली गई, राम बाहर खड़े निरीक्षण करते रहे। बड़े धोखे की बात मालूम पड़ती है!

और तीन-चार हजार वर्ष हो गए रामायण को लिखे, यह मैं आपसे पहली दफे कह रहा हूं। यह बात कभी नहीं उठाई गई कि राम की अग्नि-परीक्षा क्यों नहीं होती?

नहीं, पुरुष का तो सवाल ही नहीं है। ये सब सवाल स्त्री के लिए हैं।

स्त्री की कोई आत्मा नहीं, उसकी कोई आवाज नहीं। फिर यह अग्नि-परीक्षा से गुजरी हुई स्त्री भी एक दिन दूध में से मक्खी की तरह फेंक दी गई, तो भी कोई आवाज नहीं है! कोई आवाज नहीं है! और हिंदुस्तान भर की स्त्रियां राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहे चली जाएंगी; मंदिर में जाकर दीया घुमाती रहेंगी और पूजा-प्रार्थना करती रहेंगी।

राम की पूजा स्त्रियां करती रहेंगी! तो फिर स्त्रियों के पास कोई आत्मा नहीं है, कोई सोच-विचार नहीं है। सारे हिंदुस्तान की स्त्रियों को कहना था कि बहिष्कार हो गया राम का! कितने ही ऊंचे आदमी रहे होओगे, लेकिन बात खत्म हो गई। स्त्रियों के साथ भारी अपमान हो गया, भारी असम्मान हो गया।

लेकिन राम को स्त्रियां ही जिंदा रखे हैं। राम बहुत प्यारे आदमी हैं, बहुत अदभुत आदमी हैं, लेकिन राम को भी यह खयाल पैदा नहीं होता कि वे स्त्री के साथ क्या कर रहे हैं! वह हमारी कल्पना में नहीं है, वह हमारे खयाल में नहीं है।

युधिष्ठिर जैसा अदभुत आदमी द्रौपदी को जुए में दांव पर लगा देता है! फिर भी कोई यह नहीं कहता कि हम अब युधिष्ठिर को धर्मराज नहीं कहेंगे। नहीं, कोई यह नहीं कहता! बल्कि कोई कहेगा तो हम कहेंगे--अधार्मिक आदमी है, नास्तिक आदमी है, इसकी बात मत सुनो।

लेकिन स्त्री को जुए पर दांव पर लगाया जा सकता है, क्योंकि भारत में स्त्री संपदा है, संपत्ति है। हम हमेशा से कहते ही रहे हैं, स्त्री संपत्ति। शब्द भी उपयोग करते हैंः स्त्री संपत्ति। और इसीलिए तो पति को स्वामी कहते हैं। स्वामी का मतलब आप समझते हैं क्या होता है?

अगर हिंदुस्तान की स्त्री में थोड़ी भी अक्ल होगी तो एक-एक शब्दकोश से "स्वामी" को निकाल बाहर कर देना चाहिए। कोई पुरुष किसी स्त्री का स्वामी नहीं हो सकता। स्वामी का क्या मतलब होता है?

स्त्री दस्तखत करती है अपनी चिट्ठी में--आपकी दासी। और पतिदेव बहुत प्रसन्न होकर पढ़ते हैं, बड़े आनंदित होते हैं कि बड़ी प्रेम की बात लिखी है।

लेकिन इसका पता है कि स्वामी और दास में कभी प्रेम नहीं हो सकता। कैसे प्रेम हो सकता है? प्रेम की संभावना समान तल पर हो सकती है। स्वामी और दास में क्या प्रेम हो सकता है?

इसलिए हिंदुस्तान में प्रेम की संभावना ही समाप्त हो गई है। हिंदुस्तान में स्त्री-पुरुष साथ रह रहे हैं और उस साथ रहने को प्रेम समझ रहे हैं। वह प्रेम नहीं है। हिंदुस्तान में प्रेम का सरासर धोखा है। साथ रहना भर प्रेम नहीं है। किसी तरह कलह करके चौबीस घंटे गुजार देना प्रेम नहीं है। जिंदगी गुजार देनी प्रेम नहीं है। प्रेम की पुलक और है। प्रेम की प्रार्थना और है। प्रेम की सुगंध और है। प्रेम का संगीत और है।

लेकिन वह कहीं भी नहीं है! असल में, गुलाम में और दास में और मालिक में और स्वामी में कोई प्रेम नहीं हो सकता है। लेकिन हमारे खयाल में नहीं है यह बात कि पूरब की स्त्री ने--विशेषकर भारत की स्त्री ने--अपनी आत्मा का अधिकार ही स्वीकार नहीं किया है। आत्मा की आवाज भी नहीं दी है। उसने हिम्मत भी नहीं जुटाई कि वह कह सके--मैं भी हूं!

"अ" स्त्री को शादी करके ले आते हैं एक सज्जन। अगर उनका नाम कृष्णचंद्र मेहता है तो उनकी पत्नी मिसेज कृष्णचंद्र मेहता हो जाती है। लेकिन कभी उससे उलटा देखा कि इंदुमती मेहता को एक सज्जन प्रेम करके विवाह कर लाए हों और उनका नाम मिस्टर इंदुमती मेहता हो जाए? वह नहीं हो सकता। लेकिन क्यों नहीं हो सकता? नहीं, वह नहीं हो सकता, क्योंकि हमारी यह सिर्फ व्यवहार की बात नहीं है, उसके पीछे पूरा हमारे जीवन को देखने का ढंग छिपा हुआ है।

स्त्री पुरुष के पीछे आकर पुरुष का अंग हो जाती है, तो वह मिसेज हो जाती है। लेकिन पुरुष स्त्री का अंग नहीं होता! स्त्री पुरुष का आधा अंग है, लेकिन पुरुष स्त्री का अंग नहीं है! इसलिए पुरुष मरता है तो स्त्री को सती होना चाहिए, आग में जल जाना चाहिए। वह उसका अंग है, उसको बचने का हक कहां है? हिंदुस्तान में हजारों वर्षों में कितनी लाखों स्त्रियों को आग में जलाया है, उसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। बहुत मुश्किल है। और किस पीड़ा से उन स्त्रियों को गुजरना पड़ा है, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

फिर भी बड़ी कृपा थी--जो आग में जल गईं उन स्त्रियों के लिए। लेकिन जब से आग में जलना बंद हो गया है तो करोड़ों विधवाओं को हम रोके हुए हैं। उनका जीवन आग में जलने से भी ज्यादा बदतर है। सती की प्रथा विधवा की प्रथा से ज्यादा बेहतर थी। आदमी एक बार में मर जाता है, खत्म हो जाता है। आखिर एक बार में मरना फिर भी बहुत दयापूर्ण है, बजाय चालीस-पचास साल धीरे-धीरे मरने के, अपमानित होने के। और जिंदगी में जहां प्रेम की कोई संभावना न रह जाए, उस जीवन को जीवित कहने का क्या अर्थ है?

और यह ध्यान रहे कि पुरुष के लिए प्रेम चौबीस घंटे में आधी घड़ी, घड़ी भर की बात है। उसके लिए और बहुत काम हैं। प्रेम भी एक काम है। प्रेम से भी वह निपट कर जल्दी से दूसरे कामों में लग जाता है। स्त्री के लिए

प्रेम ही एकमात्र काम है, वह उसकी चौबीस घंटे की जिंदगी है। वह और कामों में एक काम नहीं है। प्रेम ही एकमात्र काम है। और सारे काम उसी प्रेम से निकलते हैं और पैदा होते हैं।

तो अगर पुरुष को विधुर रखा जाए तो उतना टार्चर नहीं है वह, जितना स्त्री को विधवा रखना अत्याचार है। क्योंकि उसकी चौबीस घंटे प्रेम की जिंदगी है। प्रेम गया--कि उसकी जिंदगी में फिर कुछ भी नहीं रह गया। और दूसरे प्रेम की कोई संभावना समाज छोड़ता नहीं।

लेकिन हजारों साल तक हम उसको जलाते रहे और कभी किसी ने न सोचा! और अगर कोई पूछता था कि स्त्रियों को क्यों जलना चाहिए आग में? तो पुरुष कहते कि उसका प्रेम है, वही जी नहीं सकती पुरुष के बिना। लेकिन किसी पुरुष को प्रेम नहीं था इस मुल्क में कि वह किसी स्त्री के लिए सती हो जाता? वह सवाल नहीं है। वह सवाल नहीं है, वह सवाल ही नहीं उठाना चाहिए। क्योंकि सारे धर्मग्रंथ पुरुष लिखते हैं, अपने हिसाब से लिखते हैं, अपने स्वार्थ से लिखते हैं। स्त्रियों का लिखा हुआ न कोई धर्मग्रंथ है, न स्त्रियों का कोई मनु है, न स्त्रियों का कोई याज्ञवल्क्य है! स्त्रियों का कोई स्मृतिकार नहीं, स्त्रियों का कोई धर्मग्रंथ नहीं! स्त्रियों का कोई सूत्र नहीं! उनकी कोई आवाज नहीं! तो पूरब की स्त्री तो एक गुलाम छाया है, जो पति के आगे-पीछे घूमती रहती है।

पश्चिम की स्त्री ने विद्रोह किया है। और मैं कहता हूं कि अगर छाया ही बना रहना है, तो उससे बेहतर है वह विद्रोह। लेकिन वह विद्रोह बिल्कुल गलत रास्ते पर चला गया। वह गलत रास्ता यह है कि पश्चिम की स्त्री ने विद्रोह का मतलब यह लिया है कि ठीक पुरुष जैसी वह भी खड़ी हो जाए! पुरुष जैसी हो जाए! तो पश्चिम की स्त्री पुरुष होने की दौड़ में पड़ गई। वह पुरुष जैसे वस्त्र पहनेगी, पुरुष जैसे बाल कटाएगी, पुरुष जैसे सिगरेट पीना चाहेगी, पुरुष जैसे सड़कों पर चलना चाहेगी, पुरुष जैसे अभद्र शब्दों का उपयोग करना चाहेगी। वह पुरुष के मुकाबले खड़ी हो जाना चाहती है।

एक लिहाज से फिर भी अच्छी बात है। कम से कम बगावत तो है। कम से कम हजारों साल की गुलामी को तोड़ने का खयाल तो है।

लेकिन गुलामी ही नहीं तोड़नी है; क्योंकि गुलामी तोड़ कर भी कोई कुएं से खाई में गिर सकता है। पश्चिम की स्त्री उसी हालत में खड़ी हो गई है। वह जितना अपने को पुरुष के जैसा बनाती जा रही है, उतना ही उसका व्यक्तित्व फिर खोता चला जा रहा है। भारत में वह छाया बन कर खत्म हो गई। पश्चिम में वह नंबर दो का पुरुष बन कर खत्म होती जा रही है। उसका अपना कोई व्यक्तित्व वहां भी नहीं रह जाएगा।

और यह ध्यान रहे, स्त्री के पास एक अपने तरह का व्यक्तित्व है, जो पुरुष से बहुत भिन्न, बहुत विरोधी, बहुत अलग, बहुत दूसरा है। उसका सारा आकर्षण, उसके जीवन की सारी सुगंध उसके अपने होने में है, उसके निज होने में है। अगर वह अपनी निजता के बिंदु से च्युत होती है और पुरुष जैसे होने की दौड़ में लग जाती है, तो यह बात उतनी ही बेहूदी होगी जैसे कोई पुरुष स्त्रियों के कपड़े पहन कर और दाढ़ी-मूंछ घुटा कर और स्त्रियों जैसा बन कर घूमने लगता है तो बेहूदा हो जाता है। यह बात उतनी ही बेहूदी है।

लेकिन पुरुष इसकी निंदा नहीं करेगा। पुरुष इसकी निंदा नहीं करेगा; क्योंकि स्त्रियां पुरुष जैसी हो रही हैं, पुरुष को क्या चिंता है? आपने हमेशा सुना होगा, अगर कोई पुरुष स्त्रियों जैसे ढंग से रहे तो लोग कहेंगे--नामर्द! उसकी निंदा होगी। लेकिन अगर कोई स्त्री पुरुषों जैसी रहे तो वे कहेंगे--खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी। इज्जत देंगे उसको। स्त्री अगर पुरुषों जैसे ढंग अख्तियार करे तो उसको इज्जत मिलेगी और पुरुष अगर स्त्रियों जैसे ढंग अख्तियार करे तो उसका अपमान होगा। पुरुष को भी इसमें मजा आता है कि स्त्री पुरुष

जैसे होने की कोशिश कर रही है। इसका अर्थ है कि उसने हमारी श्रेष्ठता फिर स्वीकार कर ली। कल तक वह पति के रूप में श्रेष्ठता स्वीकार करती थी, हम तब भी सुपीरियर थे, मालिक थे। अब भी हम सुपीरियर हैं, अब वह हमारे जैसे होने की कोशिश कर रही है।

और ध्यान रहे, स्त्री कितना ही पुरुष जैसी हो जाए, कार्बन कापी से ज्यादा नहीं हो सकती। कैसे हो सकती है? कैसे हो सकती है स्त्री पुरुष जैसी? और कार्बन कापी फिर छाया रह जाएगी। और यह बड़े मजे की बात है--हिंदुस्तान में पुरुष ने जबरदस्ती स्त्री को छाया बना दिया, पश्चिम की स्त्री अपने हाथ से मेहनत करके छाया बनी जा रही है।

क्या कोई तीसरा रास्ता नहीं है? ये दोनों बातें स्त्री जाति के लिए खतरनाक हैं। ये दोनों बातें प्रतिक्रियावादी हैं, रिएक्शनरी हैं। स्त्री की जिंदगी में एक क्रांति चाहिए। पश्चिम में क्रांति भटक गई और विद्रोह हो गई है। विद्रोह क्रांति नहीं है। बगावत क्रांति नहीं है।

क्रांति का मतलब हैः एक नये व्यक्तित्व का उदघाटन।

बगावत का मतलब हैः पुराने व्यक्तित्व को तोड़ देना है, इसकी बिना फिक्र किए कि नया व्यक्तित्व कुछ बनता है कि नहीं बनता है।

बगावत क्रोध है, क्रांति विचार है।

बगावत कर देना बहुत आसान है। क्रांति करना बहुत सोच-विचार और चिंतन की बात है।

भारत की स्त्री को भी पश्चिम की स्त्री की दौड़ पकड़ेगी, क्योंकि भारत के पुरुष को पश्चिम के पुरुष की दौड़ पकड़ी। उसी के पीछे स्त्री भी जाएगी। आज नहीं कल वह भी... और उसने होना शुरू कर दिया है, वह पुरुष के साथ पुरुष जैसा होने की दौड़ में वह शामिल हो गई है। आज नहीं कल भारत में भी वही होगा जो पश्चिम में हो रहा है। और पश्चिम में जो हो गया है वह इतना दुखद है कि अब भारत में उसको फिर दोहरा लेना, एक बहुत बढ़िया मौका खो देना है; एक परिवर्तन का, एक ट्रांजिशन का मौका खो देना है। एक बदलाहट का वक्त आया है और फिर बदलाहट में हम वही गलती किए ले रहे हैं--वही गलती जिसमें कुछ फर्क नहीं पड़ेगा, वही भूल फिर हो जाएगी।

सी.ई.एम.जोड ने कहीं लिखा है कि जब मैं पैदा हुआ, छोटा था, तो होम्स थे मेरे देश में, घर थे। अब सिर्फ हाउसेज हैं; अब सिर्फ मकान हैं।

स्वभावतः, अगर स्त्री पुरुष जैसी हो जाती है, तो होम जैसी चीज समाप्त हो जाएगी। घर जैसी चीज समाप्त हो जाएगी, मकान रह जाएंगे। मकान रह जाएंगे, क्योंकि मकान घर बनता था एक व्यक्तित्व से स्त्री के। वह खो गया। अब वह ठीक पुरुष जैसी कलह करती है, पुरुष जैसी झगड़ती है, पुरुष जैसी बात करती है, विवाद करती है। वह सब ठीक पुरुष जैसा कर रही है!

लेकिन उसे पता नहीं है कि उसकी आत्मा कभी भी यह करके तृप्त नहीं हो सकती। क्योंकि आत्मा तृप्त होती है वही होकर जो होने को आदमी पैदा हुआ है। एक गुलाब गुलाब बन जाता है तो तृप्ति आती है। एक चमेली चमेली बन जाती है तो तृप्ति आती है। वह तृप्ति फ्लावरिंग की है। जो हमारे भीतर छिपा है वह खिल जाए--पूरा खिल जाए--तो आनंद उपलब्ध होता है।

स्त्री आज तक कभी भी आनंदित नहीं रही, न पूरब के मुल्कों में, न पश्चिम के मुल्कों में। पूरब के मुल्कों में वह गुलाम थी, इसलिए आनंदित नहीं हो सकी; क्योंकि कोई आनंद बिना स्वतंत्रता के कभी उपलब्ध नहीं होता है। सारे आनंद के फूल स्वतंत्रता के आकाश में खिलते हैं।

और ध्यान रहे, अगर स्त्री आनंदित नहीं है तो पुरुष कभी आनंदित नहीं हो सकता है। वह लाख सिर पटके। क्योंकि समाज का आधा हिस्सा दुखी है। घर का केंद्र दुखी है। तो वह दुखी केंद्र अपने चारों तरफ दुख की किरणें फेंकता रहता है। और उस दुख के केंद्र की किरणों में सारा व्यक्तित्व समाज का दुखी हो जाता है। और मैं आपसे कहना चाहता हूं, जितना दुख होता है, उतनी हिंसा शुरू हो जाती है। क्यों? क्योंकि दुखी आदमी दूसरे को दुखी करने को आतुर हो जाता है। दुखी आदमी फिर किसी को सुखी नहीं देखना चाहता। दुखी आदमी चाहता है, दूसरे को दुख दो! दुखी आदमी का एक ही सुख होता है, दूसरे को दुख देने का सुख।

स्त्री के दुख ने सारे समाज के जीवन को दुख की छाया से भर दिया है।

स्त्री आनंदित हो सकती है मुक्त होकर, लेकिन पुरुष होकर नहीं। मुक्त हो जाए और पुरुष जैसी होने लगे, फिर दुखी हो जाएगी। आज पश्चिम की स्त्री कोई सुखी नहीं है। वह फिर उसने नये दुख खोज लिए हैं। फिर नये दुखों में उसने अपने व्यक्तित्व को कस लिया है। और फिर समाज वहां एक नये तनाव में भरता चला जाएगा। क्या किया जा सकता है? कौन सी क्रांति?

मैं एक तीसरा सुझाव देना चाहता हूं। और वह यह कि एक वक्त है, इस वक्त मुल्क के सामने बदलाहट होगी। बदलाहट का समय है। अब स्त्री की गुलामी ज्यादा दिन नहीं चलेगी। हालांकि स्त्री की अभी भी कोई इच्छा नहीं है बहुत कि गुलामी टूट जाए। और पुरुष तो चाहेगा क्यों।

लेकिन सारी दुनिया की हवाएं धक्के दे रही हैं और गुलामी टूट रही है। भारत की स्त्रियां यह न सोचें कि उनके कुछ करने से गुलामी टूट रही है।

भारत बहुत अजीब देश है। सारी दुनिया की हवाएं बदलीं। उन्नीस सौ सैंतालीस में हम आजाद हो गए। हमने समझा कि हमने आजादी ले ली। वह हमने आजादी ली नहीं। वह दुनिया की हवाएं बदलीं, दुनिया का पूरा मौसम बदला, दुनिया में एक परिवर्तन का वक्त आया--आजादी हमें मिली। हिंदुस्तान के किसी नेता को पता भी नहीं था कि आजादी उन्नीस सौ सैंतालीस में मिल सकती है। कल्पना भी नहीं थी। आंदोलन तो हमारा बयालीस में खत्म हो गया था! और बड़ा भारी आंदोलन था, सात दिन में खत्म हो गया था! ऐसी महान क्रांति दुनिया में कभी नहीं हुई थी! वह सात दिन में खत्म हो गया था, उसके बाद हम ठंडे पड़ चुके थे। अब बीस साल तक कोई दुबारा जाने को जेल में राजी भी नहीं हो सकता था। अचानक आजादी आ गई, तो हमने कहा कि हमने आजादी ले ली! ठीक वैसे ही भारत की स्त्री की आजादी भी आ रही है। यह भूल में मत पड़ना कि वह आजादी ले रही है।

और ध्यान रहे, जो आजादी आती है उस आजादी में और जो आजादी ली जाती है उस आजादी में जमीन-आसमान का फर्क होता है। जो आजादी मिलती है वह मुर्दा होती है। वह कभी जिंदा नहीं हो सकती। भीख रहती है। और आजादी भी भीख में मिल सकती है?

इसीलिए इस मुल्क को जो आजादी मिली, वह मुर्दा आजादी है, बिल्कुल डेड--उसमें कोई जिंदगी नहीं है। सड़ी हुई लाशों वाली आजादी है। इसलिए बीस साल से हम सड़ रहे हैं। उस आजादी से कोई पुलक नहीं आई जीवन में, न कोई नृत्य आया, न कोई खुशी आई, न कोई उत्साह आया, न कुछ ऐसा हुआ कि हम बदल दें अब जिंदगी को, हजारों साल के सिलसिले को तोड़ दें, नया मुल्क बनाएं, नया आदमी पैदा करें। वह कुछ भी पैदा नहीं हुआ। बस इतना हुआ कि हमने झंडा बदल दिया, दूसरा झंडा फहरा दिया और नेता बदल दिए। हालांकि सिर्फ शरीर बदला नेताओं का। उनकी बुद्धि वही रही, जो पिछले नेताओं की थी, जो पिछले हुकूमत करने वालों

की थी। बुद्धि वही की वही रही। कपड़े बदल गए, वे शेरवानी पहन कर खड़े हो गए। हमको लगा कि सब भारतीय हो गए।

ठीक वैसी ही आजादी स्त्रियों के मामले में घटित हो रही है।

नहीं, यह ठीक नहीं हो रहा है। हिंदुस्तान की नारी को, हिंदुस्तान की स्त्री को आजादी लेनी है। क्योंकि मूल्य आजादी मिलने का नहीं है। वह जो लेने की प्रक्रिया है, उसी में आत्मा पैदा होती है। इसको ठीक से समझ लेना चाहिए। वह जो लेने की प्रक्रिया है, वह जो जद्दोजहद है, वह जो संघर्ष है, वह जो स्ट्रगल है, उस स्ट्रगल में लेने की ही आत्मा पैदा होती है। आजादी मिलने से आत्मा पैदा नहीं होती। आजादी लेने की प्रक्रिया में से गुजरना ही आजाद आत्मा का पैदा हो जाना है। आजादी उसका परिणाम है। आजादी के परिणाम में आत्मा कभी पैदा नहीं होती। आत्मा पैदा हो जाए तो आजादी आती है।

लेकिन भारत की स्त्री के साथ भी वही हो रहा है। आजादी उस पर आ रही है, थोपी जा रही है। वह बेमन से उसको स्वीकार करती चली जा रही है। और धीरे-धीरे पश्चिम की हवाएं उसको पश्चिम की तरफ ले जाएंगी और एक मौका चूक जाएगा।

इस मौके को मैं बहुत क्रांति का अवसर कहता हूं। भारत की स्त्री को करना यह है कि पहले तो उसे स्पष्ट रूप से यह समझ लेना है कि पुरुष के व्यक्तित्व की शोध और खोज खत्म हो गई। पुरुष ने जो मार्ग पकड़ा था पांच-छह हजार वर्षों में, वह डेड एंड पर आ गया, अब उसके आगे कोई रास्ता नहीं है।

स्त्री को पहली दफे यह सोचना है कि क्या स्त्री भी एक नई संस्कृति को जन्म देने के आधार रख सकती है? कोई संस्कृति जहां युद्ध और हिंसा न हो। कोई संस्कृति जहां प्रेम, सहानुभूति और दया हो। कोई संस्कृति जो विजय के लिए बहुत आतुर न हो, जीने के लिए आतुर हो। जीने की आतुरता हो। जीवन को जीने की कला और जीवन को शांति से जीने की आस्था और निष्ठा पर खड़ी कोई संस्कृति स्त्री जन्म दे सकती है?

स्त्री जरूर जन्म दे सकती है।

आज तक चाहे युद्ध में कोई कितना ही मरा हो, स्त्री का मन निरंतर--प्राण उसके दुख से भरे रहे हैं। उसका भाई मरता है, बेटा मरता है, बाप मरता है, पति मरता है, प्रेमी मरता है। स्त्री का कोई न कोई युद्ध में जाकर मरता है। अगर सारी दुनिया की स्त्रियां एक बार तय कर लें--भाड़ में जाने दें रूस को और अमेरिका को--सारी दुनिया की स्त्रियां एक बार तय कर लें कि युद्ध नहीं होगा; दुनिया का कोई राजनीतिज्ञ युद्ध में कभी किसी को नहीं घसीट सकता। सिर्फ स्त्रियां तय कर लें कि युद्ध अब नहीं होगा, तो युद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि कौन जाएगा युद्ध पर? कोई बेटा जाता है, कोई पति जाता है, कोई बाप जाता है। अगर स्त्रियां एक बार तय कर लें!

लेकिन स्त्रियां पागल हैं। युद्ध होता है तो वे टीका करती हैं कि जाओ युद्ध पर! पाकिस्तानी मां पाकिस्तानी बेटे के माथे पर टीका करती है कि जाओ युद्ध पर! हिंदुस्तानी मां हिंदुस्तानी बेटे के माथे पर टीका करती है कि जाओ बेटे, युद्ध पर जाओ!

पता चलता है कि स्त्री को कुछ पता नहीं कि क्या हो रहा है। वह पुरुष के पूरे जाल में सिर्फ एक खिलौना, हर जगह एक खिलौना बन जाती है। चाहे पाकिस्तानी बेटा मरता हो और चाहे हिंदुस्तानी, किसी मां का बेटा मरता है--यह स्त्री को समझना होगा। और चाहे रूस का पति मरता हो और चाहे अमेरिका का, स्त्री को समझना होगा, उसका पति मरता है।

और अगर सारी दुनिया की स्त्रियों को एक खयाल पैदा हो जाए कि अब हमें अपने पति को, अपने बेटे को, अपने बाप को युद्ध पर नहीं भेजना है, तो फिर पुरुष की लाख कोशिश और राजनीतिज्ञों की हर चेष्टा व्यर्थ

हो सकती है। युद्ध नहीं हो सकता है। और यह स्त्री की इतनी बड़ी शक्ति है, लेकिन उसने उसका कभी कोई उपयोग नहीं किया। उसने कभी कोई आवाज नहीं दी, उसने कभी कोई फिक्र नहीं की। वह आदमी ने, पुरुष ने जो रेखाएं खींची हैं राष्ट्रों की, उनको वह भी मान लेती है।

प्रेम कोई रेखाएं नहीं मान सकता, हिंसा रेखाएं मानती है।

हम कहते हैं भारत माता! भारत माता जैसी कोई चीज दुनिया में नहीं है। अगर है भी कोई तो पृथ्वी माता जैसी कोई चीज हो सकती है। भारत माता पुरुष की ईजाद है! अपने हाथ से उसने कीलें ठोंक कर झंडे गाड़ लिए हैं और कहा है कि यह भारत अलग!

लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि स्त्री के मन में आज भी और हमेशा से कभी भी सीमा नहीं रही है, उस अर्थों में जिस अर्थों में पुरुष के मन में सीमा है। क्योंकि जहां भी प्रेम है, वहां सीमा नहीं होती।

सारी दुनिया की स्त्रियों को एक तो बुनियादी यह खयाल जाग जाना चाहिए कि हम एक नई संस्कृति को, एक नये समाज को, एक नई सभ्यता को जन्म दे सकते हैं--जो पुरुष के आधार हैं, उनके ठीक विपरीत आधार रख कर। भारत में यह बहुत सुविधा से हो सकता है। भारत में यह रूपांतरण बहुत आसानी से हो सकता है।

तो पहली तो बात यह है कि दुनिया की स्त्रियों की एक शक्ति और एक आवाज और एक आत्मा निर्मित होनी चाहिए। और वह आवाज दो तरह की बगावत करे। पुरुष की सारी संस्कृति को कहे कि गलत। और वह गलत है। अधूरी है और खतरनाक है।

दूसरी बात, स्त्री के मन में जो प्रेम है, उस प्रेम का भी पूरा विकास नहीं हो सका है। पुरुष ने उस पर भी दीवालें बांधी हैं। उस पर भी उसने कारागृह खड़ा किया है कि प्रेम की इतनी सीमा है, इससे आगे मत जाने देना। प्रेम से पुरुष बहुत भयभीत है। वह प्रेम पर पच्चीस रुकावटें डालता है, कारागृह बनाता है। उन कारागृहों ने दुनिया में स्त्रियों के प्रेम को विकसित नहीं होने दिया, फैलने नहीं दिया; उस सुगंध से दुनिया को भरने नहीं दिया। स्त्री को उस तरफ भी बगावत करनी जरूरी है कि वह कहे कि प्रेम पर सीमाएं हम तोड़ेंगे। प्रेम की कोई सीमा नहीं है और प्रेम की अपनी पवित्रता है। सारी सीमाएं उस पवित्रता को नष्ट करती हैं और गंदा करती हैं। उस सीमा को फैलाना है। उसकी सीमा बढ़नी चाहिए, फैलनी चाहिए।

और अगर वह फैलती है, तो जैसे पजेसिव पुरुष की एक प्रवृत्ति है पजेस करने की... । कभी आपने खयाल किया? पुरुष की सारी प्रवृत्ति है--इकट्ठा करो! मालिक बन जाओ! स्त्री की सारी प्रवृत्ति होती है--दे दो! मालकियत छोड़ दो, किसी को दे दो! स्त्री का सारा आनंद दे देने में है और पुरुष का सारा आनंद कब्जा कर लेने में है। यह कब्जा करने वाला पुरुष ही दुनिया में युद्ध का कारण बना है।

अगर दुनिया में कभी भी हमें एक गैर-युद्ध वाली दुनिया बनानी हो, तो ध्यान रखना पड़ेगा, इकट्ठा कर लेना, पजेस कर लेना, मालिक बन जाना, इसकी प्रवृत्ति की जगह दे देने की हिम्मत जुटानी पड़ेगी।

मैंने सुना है, एक छोटा सा गीत रवींद्रनाथ ने लिखा है। और मुझे बहुत प्रीतिकर लगी वह कहानी जो उस गीत में उन्होंने गाई है। गाया है कि एक भिखारी एक दिन सुबह अपने घर के बाहर निकला। त्यौहार का दिन है। आज गांव में बहुत भिक्षा मिलने की संभावना है। वह अपनी झोली में थोड़े से दाने डाल कर चावल के बाहर आया।

चावल के दाने उसने डाल लिए हैं अपनी झोली में। क्योंकि झोली अगर भरी दिखाई पड़े तो देने वाले को आसानी होती है, उसे लगता है कि किसी और ने भी दिया है। सब भिखारी अपने हाथ में पैसे घर से लेकर

निकलते हैं, ताकि देने वाले को संकोच मालूम पड़े कि नहीं दिया तो अपमानित हो जाऊंगा, और लोग दे चुके हैं! आपकी दया... आपकी दया काम नहीं करती भिखारी को देने में। आपका अहंकार काम करता है--और लोग दे चुके हैं, अब मैं कैसे न दूं!

वह डाल कर निकला है थोड़े से दाने। थोड़े से दाने उसने डाल रखे हैं चावल के। बाहर निकला है। सूरज निकलने के करीब है। रास्ता सोया है। अभी लोग जाग रहे हैं। देखा है उसने, राजा का रथ आ रहा है! स्वर्ण-रथ, सूरज की रोशनी में चमकता हुआ! उसने कहा, धन्य भाग्य मेरे! भगवान को धन्यवाद! आज तक कभी राजा से भिक्षा नहीं मांग पाया, क्योंकि द्वारपाल बाहर से ही लौटा देते हैं। आज तो रास्ता रोक कर खड़ा हो जाऊंगा। आज तो झोली फैला दूंगा। और कहूंगा, महाराज! पहली दफे ही भिक्षा मांगता हूं। फिर सम्राट तो भिक्षा देंगे तो वह कोई ऐसी भिक्षा तो न होगी। जन्म-जन्म के लिए मेरे दुख पूरे हो जाएंगे। वह कल्पनाओं में खोकर खड़ा हो गया।

रथ आ गया। वह भिखारी अपनी झोली खोले, इससे पहले ही राजा नीचे उतर आया। राजा को देख कर भिखारी घबड़ा गया है और राजा ने अपनी झोली, अपना वस्त्र उस भिखारी के सामने कर दिया। तब तो वह बहुत घबड़ा गया। उसने कहा, आप! और झोली फैलाते हैं?

राजा ने कहा, ज्योतिषियों ने कहा है कि देश पर हमले का डर है। और अगर मैं जाकर आज राह पर भीख मांग लूं तो देश बच सकता है। तो पहला आदमी जो मुझे मिले, उसी से भीख मांगनी है। तुम्हीं पहले आदमी हो। कृपा करो, कुछ दान दे दो! राष्ट्र बच जाए।

उस भिखारी के तो प्राण निकल गए। उसने हमेशा मांगा था। दिया तो कभी भी नहीं था। देने की उसे कोई कल्पना ही नहीं थी। कैसे दिया जाता है, इसका कोई अनुभव न था। सब मांगता था। बस मांगता था। और देने की बात आ गई, तो उसके प्राण तो रुक ही गए! मिलने का तो सपना गिर ही गया। और देने की उलटी बात! उसने झोली में हाथ डाला। मुट्ठी भर दाने हैं वहां। भरता है मुट्ठी, छोड़ देता है। हिम्मत नहीं होती कि दे दे।

राजा ने कहा, कुछ तो दे दो! देश का खयाल करो! ऐसा मत करना कि मना कर दो। अन्यथा बहुत हानि हो जाएगी।

बामुश्किल, बहुत कठिनाई से एक दाना भर उसने निकाला और राजा के वस्त्र में डाल दिया। राजा रथ पर बैठा। रथ चला गया। धूल उड़ती रह गई। और साथ में दुख रह गया कि एक दाना अपने हाथ से आज देना पड़ा है। भिखारी का मन देने का नहीं होता। दिन भर भीख मांगी, बहुत भीख मिली, लेकिन चित्त में दुख वही बना रहा एक दाने का, जो दिया था।

कितना ही मिल जाए आदमी को, जो मिल जाता है उसका धन्यवाद नहीं होता, जो नहीं मिल पाया, जो छूट गया, जो नहीं है पास, उसकी पीड़ा होती है।

लौटा सांझ दुखी। इतना कभी नहीं मिला था! झोला लाकर पटका। पत्नी नाचने लगी। कहा, इतनी मिल गई भीख!

उसने कहा, नाच मत पागल! तुझे पता नहीं, एक दाना कम है, जो अपने पास हो सकता था।

फिर झोली खोली। सारे दाने गिर पड़े। फिर वह भिखारी छाती पीट कर रोने लगा। अब तक तो सिर्फ उदास था, अब रोने लगा। देखा कि दानों की उस कतार में, उस भीड़ में, उस ढेर में, एक दाना सोने का हो गया है! तब तो वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा कि मैं अवसर चूक गया। बड़ी भूल हो गई। मैं सब दाने दे देता तो

वे सब सोने के हो जाते। लेकिन कहां खोजूं अब उस राजा को? कहां जाऊं? कहां वह रथ मिलेगा? कहां राजा द्वार पर हाथ फैलाएगा? बड़ी मुश्किल हो गई। अब क्या होगा? अब क्या होगा? वह तड़फने लगा।

उसकी पत्नी ने कहा, तुझे पता नहीं, तुझे आज तक पता नहीं शायद कि जो हम देते हैं, वही स्वर्ण का हो जाता है। जो हम इकट्ठा कर लेते हैं, वह सदा मिट्टी का हो जाता है।

जो जानते हैं, वे गवाही देंगे इस बात की--कि जो दिया है, वही स्वर्ण का हो गया है।

मृत्यु के क्षण में आदमी को पता चलता है, जो रोक लिया था, वह पत्थर की तरह छाती पर बैठ गया है। जो दिया था, जो बांट दिया था, वह हलका कर गया है। वह पंख बन गया है। वह स्वर्ण हो गया है। वह दूर की यात्रा पर मार्ग बन गया है।

लेकिन स्त्री का पूरा व्यक्तित्व देने वाला व्यक्तित्व है।

और अब तक हमने जो दुनिया बनाई है, वह लेने वाले व्यक्तित्व की है। लेने वाले व्यक्तित्व के कारण पूंजीवाद है। लेने वाले व्यक्तित्व के कारण साम्राज्यशाही है। लेने वाले व्यक्तित्व के कारण युद्ध हैं, हिंसा है। क्या हम देने वाले व्यक्तित्व के आधार पर कोई समाज का निर्माण कर सकते हैं?

यह हो सकता है। लेकिन यह पुरुष नहीं कर सकेगा। यह स्त्री कर सकती है। और स्त्री सजग हो, कांशस हो, जागे, तो कोई भी कठिनाई नहीं है। एक क्रांति--बड़ी से बड़ी क्रांति--दुनिया में स्त्री को लानी है। वह यह कि एक प्रेम पर आधारित, देने वाली संस्कृति--जो मांगती नहीं, इकट्ठा नहीं करती, देती है--ऐसी एक संस्कृति निर्मित करनी है। ऐसी संस्कृति के निर्माण के लिए जो भी किया जा सके, वह सब... उस सबसे बड़ा धर्म स्त्री के सामने आज कोई और नहीं।

यह थोड़ी सी बात मैंने कही। पुरुष के संसार को बदल देना है आमूल। स्त्री के हृदय में जो छिपा है, उसकी छाया को फैलाना है, उस वृक्ष को बड़ा करना है, तो शायद एक अच्छी मनुष्यता का जन्म हो सकता है। स्त्री के जीवन और चेतना की क्रांति सारी मनुष्यता के लिए क्रांति बन सकती है।

कौन करेगा लेकिन यह?

स्त्रियां न सोचतीं, न विचारतीं। स्त्रियां न इकट्ठी हैं, न उनकी कोई सामूहिक आवाज है, न उनकी कोई आत्मा है! शायद पुरानी पीढ़ी नहीं कर सकेगी। लेकिन नई पीढ़ी की लड़कियां कुछ अगर हिम्मत जुटाएंगी और सिर्फ पुरुष होने की नकल और बेवकूफी में नहीं पड़ेंगी, तो यह क्रांति निश्चित हो सकती है। उनकी तरफ बहुत आशा से भर कर देखा जा सकता है।

मेरी ये बातें इतने प्रेम और शांति से सुनीं, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नौवां प्रवचन

नारी--एक और आयाम

मनुष्य-जाति के इतिहास में भेद की, भिन्नता की लंबी कहानी जुड़ी हुई है। बहुत प्रकार के वर्ग हमने निर्मित किए हैं--गरीब का, अमीर का; धन के आधार पर, पद के आधार पर। और सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि हमने स्त्री-पुरुष के बीच भी वर्गों का निर्माण किया है! शायद हमारे और सारे वर्ग जल्दी मिट जाएंगे, स्त्री-पुरुष के बीच खड़ी की गई दीवाल को मिटने में बहुत समय लग सकता है। बहुत कारण हैं।

स्त्री और पुरुष भिन्न हैं, यह तो निश्चित है, लेकिन असमान नहीं। भिन्नता और असमानता दो अलग बातें हैं। भिन्न होना एक बात है। सच एक आदमी दूसरे आदमी से भिन्न है ही। कोई दो आदमी समान नहीं हैं। कोई दो पुरुष भी समान नहीं हैं। स्त्री और पुरुष भी भिन्न हैं। लेकिन भिन्नता को वर्ग बनाना, ऊंचा-नीचा बनाना मनुष्य का पुराना षड्यंत्र और शैतानी रही है।

हजारों वर्षों का पिछले अतीत का इतिहास स्त्री के शोषण का इतिहास भी है। पुरुष ने ही चूंकि सारे कानून निर्मित किए हैं, और पुरुष चूंकि शक्तिशाली था, उसने स्त्री पर जो भी थोपना चाहा, थोप दिया। और जब तक स्त्री के ऊपर से गुलामी नहीं उठती, तब तक दुनिया से गुलामी का बिल्कुल अंत नहीं हो सकता है।

राष्ट्र स्वतंत्र हो जाएंगे। आज नहीं कल, गरीब और अमीर के बीच के फासले भी कम हो जाएंगे। लेकिन स्त्री और पुरुष के बीच शोषण का जाल सबसे ज्यादा गहरा है। और स्त्री और पुरुष के बीच फासले की कहानी इतनी लंबी हो गई है कि करीब-करीब भूल गई है। स्वयं स्त्रियों को भी भूल गई है, पुरुषों को भी भूल गई है।

इस संबंध में थोड़ी बातें विचार करना उपयोगी होगा। इसलिए कि शायद आने वाली जिंदगी को--जिसे आप बनाने में लगेंगे--हो सकता है स्त्री और पुरुष के बीच समानता का, स्वतंत्रता का एक समाज और एक परिवार निर्मित कर सकें। अगर खयाल ही न हो तो हम पुराने ढांचों में ही फिर घूम कर जीने लगते हैं। हमें पता भी नहीं चलता कि हमने कब पुरानी लीकों पर चलना शुरू कर दिया! आदमी सबसे ज्यादा सुगम इसे ही पाता है कि जो हो रहा था, वैसा ही होता चला जाए, लीस्ट रेसिस्टेंस वहीं है। इसलिए पुराने ढंग का परिवार चलता चला जाता है। पुरानी समाज-व्यवस्था चलती चली जाती है। पुराने ढंग से सोचने के ढंग चलते चले जाते हैं। तोड़ने में कठिनाई मालूम पड़ती है, बदलने में मुश्किल मालूम पड़ती है--दो कारणों से। एक तो पुराने की आदत और दूसरा नये को निर्माण करने की मुश्किल।

सिर्फ वे ही पीढ़ियां पुराने को तोड़ती हैं, जो नये को सृजन देने की क्षमता रखती हैं, विश्वास रखती हैं स्वयं पर। और स्वयं पर विश्वास न हो तो हम पुरानी पीढ़ी के पीछे चलते चले जाते हैं। वह पुरानी पीढ़ी भी अपने से पुरानी पीढ़ी के पीछे चल रही थी! कुछ छोटी सी स्मरणीय बातें पहले हम खयाल कर लें--पुरुष और स्त्री के बीच फासले, असमानता किस-किस रूप में खड़ी हुई है।

भिन्नता सुनिश्चित है और भिन्नता होनी ही चाहिए।

भिन्नता ही स्त्री को व्यक्तित्व देती है और पुरुष को व्यक्तित्व देती है।

लेकिन हमने भिन्नता को ही असमानता में बदल दिया। इसलिए सारी दुनिया में स्त्रियां भिन्नता को तोड़ने की कोशिश कर रही हैं, ताकि वे ठीक पुरुष जैसी मालूम पड़ने लगें। उन्हें शायद खयाल है कि इस भांति असमानता भी टूट जाएगी।

मैंने सुना है, एक सिनेमागृह के सामने अमेरिका के किसी नगर में बड़ी भीड़ है, क्यू लगा हुआ है, लंबी कतार है, लोग टिकट लेने को खड़े हैं। एक बूढ़े आदमी ने अपने सामने खड़े हुए व्यक्ति से पूछा, आप देखते हैं, वह सामने जो लड़का खड़ा हुआ है, उसने किस तरह के लड़कियों जैसे बाल बढ़ा रखे हैं! उस सामने वाले व्यक्ति ने कहा, माफ करिए, वह लड़का नहीं है, वह मेरी लड़की है। उस बूढ़े ने कहा, क्षमा करिए, मुझे क्या पता था कि आपकी लड़की है। तो आप उसके पिता हैं? उसने कहा कि नहीं, मैं उसकी मां हूं!

कपड़ों का फासला कम किया जा रहा है। धीरे-धीरे कपड़े करीब-करीब एक जैसे होते चले जा रहे हैं। हो सकता है सौ वर्ष बाद कपड़ों के आधार पर फर्क करना मुश्किल हो जाए। लेकिन कपड़ों के फासले कम हो जाने से भिन्नता नहीं मिट जाएगी। भिन्नता गहरी है, बायोलाजिकल, जैविक और शारीरिक है। भिन्नता साइकोलाजिकल भी है बहुत गहरे में। कपड़ों से कुछ फर्क नहीं पड़ जाने वाला है।

पुरुष ने भी भिन्नता मिटाने के बहुत प्रयोग किए हैं। हमें खयाल में नहीं है, क्योंकि हम आदी हो जाते हैं। राम, कृष्ण या बुद्ध और महावीर की मूर्तियां और चित्र आपने देखे होंगे। और अगर सोचते होंगे थोड़ा-बहुत तो यह खयाल आया होगा--इन लोगों के चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ क्यों दिखाई नहीं पड़ती? असंभव है यह बात। एकाध के साथ हो भी सकता है कि किसी एक राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, किसी एक को दाढ़ी-मूंछ न रही हो। यह संभव है। कभी हजार में एक पुरुष को नहीं भी होती है। लेकिन चौबीस जैनियों के तीर्थंकर, हिंदुओं के सब अवतार, बुद्धों की सारी कल्पना, किसी को दाढ़ी-मूंछ नहीं है!

कुछ कारण है। पुरुष को ऐसा लगा है--स्त्री सुंदर है, तो स्त्री जैसे होने से जैसे पुरुष भी सुंदर हो जाएगा। फिर राम और कृष्ण को तो हमने मान लिया कि उनको दाढ़ी-मूंछ होती ही नहीं थी। फिर हम क्या करें? तो सारी जमीन पर पुरुष दाढ़ी-मूंछ को काटने की कोशिश में लगा है; स्त्री जैसा चेहरा बनाने की चेष्टा चल रही है। उससे भी कोई भेद मिट जाने वाले नहीं हैं। उससे भी कोई भेद मिट जाने वाले नहीं हैं।

न कपड़े बदलने से कोई फर्क पड़ने वाला है। न सपनों पर ऊपरी फर्क कर लेने से कुछ फर्क पड़ने वाला है। भेद गहरा है। और अगर भेद मिटाने की कोशिश से हम चाहते हों कि असमानता मिटे, तो असमानता कभी भी नहीं मिटेगी। असमानता हमारी थोपी हुई है। भेद में असमानता नहीं है। दो भिन्न व्यक्ति बिल्कुल समान हो सकते हैं। समान प्रतिष्ठा दी जा सकती है।

पहली भूल मनुष्य ने यह की कि भिन्नता को असमानता समझा, डिफरेंस को इनइक्वालिटी समझा। और अब उसी भूल पर दूसरी भूल चल रही है कि हम भिन्नता को कम कर लें। जो काम पुरुष करते हैं, वे ही स्त्रियां करें! जो कपड़े वे पहनते हैं, वे भी पहनें! जिस भाषा का वे उपयोग करते हैं, स्त्रियां भी वैसी ही करें! अमेरिका में, जिन शब्दों का उपयोग स्त्रियों ने कभी भी नहीं किया था मनुष्य के इतिहास में--कुछ गालियां सिर्फ पुरुष ही देते हैं, वह उनका ही गौरव है--अमेरिका की नई लड़कियां उन गालियों को देने के लिए भी चेष्टा में संलग्न हैं! उन गालियों का भी उपयोग कर रही हैं! क्योंकि पुरुष के साथ समान खड़े हो जाने की बात है। और समानता का खयाल ऐसा है कि हम शायद भेद, भिन्नता को किसी तरह से लीप-पोत कर एक सा कर दें, तो शायद समानता उपलब्ध हो जाए।

नहीं, समानता उससे उपलब्ध नहीं होगी, क्योंकि असमानता का भी मूल आधार वह नहीं है। असमानता किन्हीं और कारणों से निर्मित हुई है।

और, जैसे हम कहानी सुनते हैं कि सत्यवान मर गया है, सावित्री उसे दूर से जाकर लौटा लाई है। लेकिन कभी कोई कहानी ऐसी सुनी है जिसमें पत्नी मर गई हो और पति दूर से जाकर लौटा लाया हो? नहीं सुना है

हमने। स्त्रियां लाखों वर्ष तक इस देश में पुरुषों के ऊपर बर्बाद होती रही हैं, मर कर सती होती रही हैं। कभी ऐसा सुना कि कोई पुरुष भी किसी स्त्री के लिए सती हो गया हो? नहीं! क्योंकि सारा नियम, सारी व्यवस्था, सारा अनुशासन पुरुष ने पैदा किया है। वह स्त्री पर थोपा हुआ है। सारी कहानियां उसने गढ़ी हैं। तो वह कहानियां गढ़ता है, जिसमें पुरुष को स्त्री बचा कर लौट आती है। वह ऐसी कहानी नहीं गढ़ता, जिसमें पुरुष स्त्री को बचा कर लौटता हो। वह तो स्त्री गई कि पुरुष दूसरी स्त्री की खोज में लग जाता है, उसको बचाने का सवाल नहीं है। पुरुष ने अपनी सुविधा के लिए सारा इंतजाम कर लिया है। असल में, जिनके पास थोड़ी सी भी शक्ति हो, किसी भी भांति की, वे, जो थोड़े भी निर्बल हों किसी भी भांति से, उनके ऊपर सवार हो ही जाते हैं, मालिक बन ही जाते हैं। गुलामी पैदा हो जाती है।

पुरुष थोड़ा शक्तिशाली है शरीर की दृष्टि से। ऐसे यह शक्तिशाली होना किन्हीं और कारणों से पुरुष को पीछे भी डाल देता है। पुरुष के पास स्ट्रेंग्थ और शक्ति तो ज्यादा है, लेकिन रेसिस्टेंस उतना ज्यादा नहीं है जितना स्त्री के पास है। और अगर पुरुष और स्त्री दोनों को किसी पीड़ा में, सफरिंग में से गुजरना पड़े, तो पुरुष जल्दी टूट जाता है, स्त्री ज्यादा देर तक टिकती है। रेसिस्टेंस उसका ज्यादा है, प्रतिरोधक शक्ति ज्यादा है। लेकिन सामान्य शक्ति कम है। शायद प्रकृति के लिए जरूरी है कि दोनों में यह भेद हो। क्योंकि स्त्री कुछ पीड़ाएं झेलती है जो पुरुष अगर एक बार भी झेले, तो फिर सारी पुरुष जाति कभी झेलने को राजी नहीं होगी। नौ महीने तक एक बच्चे को पेट में रखना और फिर उसे जन्म देने की पीड़ा और फिर उसे बड़ा करने की पीड़ा, वह कोई पुरुष कभी राजी नहीं होगा। अगर एक रात भी एक छोटे बच्चे के साथ पति को छोड़ दिया जाए, तो या तो वह उसकी गर्दन दबाने की सोचेगा या अपनी गर्दन दबाने की सोचेगा।

मैंने सुना है, एक दिन सुबह मास्को की सड़क पर कोई एक आदमी छोटी सी बच्चों की गाड़ी को धक्का देता हुआ चला जा रहा है। सुबह है, लोग घूमने निकले हैं, फूल खिले हैं, पक्षी बोल रहे हैं। वह आदमी रास्ते में चलते-चलते बार-बार यह कहता है, अब्राहम शांत रह! अब्राहम उसका नाम होगा, बच्चे का नाम होगा। पता नहीं वह किससे कह रहा है। वह बार-बार कहता है, अब्राहम शांत रह! अब्राहम धीरज रख! बच्चा रो रहा है। वह गाड़ी को धक्के दे रहा है। एक बूढ़ी औरत उसके पास आकर कहती है, क्या बच्चे का नाम अब्राहम है?

वह आदमी कहता है, क्षमा करना, अब्राहम मेरा नाम है। मैं अपने को समझा रहा हूं--कि शांत रह! धीरज रख! अभी घर आया चला जाता है! इस बच्चे को तो समझाने का सवाल ही नहीं है। अपने को समझा रहा हूं कि किसी तरह दोनों सही-सलामत घर पहुंच जाएं।

स्त्री के पास एक प्रतिरोधक शक्ति है जो प्रकृति ने उसे दी है। एक रेसिस्टेंस की ताकत है। बहुत बड़ी ताकत है। कितनी ही पीड़ा और कितने ही दुख और कितने ही दमन के बीच भी वह जिंदा रहती है और मुस्कुरा भी सकती है। पुरुषों ने जितना दबाया है स्त्री को, अगर स्त्रियों ने उस दमन को, उस पीड़ा को कष्ट से लिया होता, तो शायद वे कभी की टूट गई होतीं। लेकिन वे नहीं टूटी हैं। उनकी मुस्कुराहट भी नहीं टूटी है। इतनी लंबी परतंत्रता के बाद भी उनके चेहरे पर कम तनाव है पुरुष की बजाय। रेसिस्टेंस की, झेलने की, सहने की, टालरेंस की, सहिष्णुता की बड़ी शक्ति उनके पास है। लेकिन मस्कुलर, बड़े पत्थर उठाने की और बड़ी कुल्हाड़ी चलाने की शक्ति उनके पास कम है। शायद जरूरी है कि पुरुष के पास वैसी शक्ति ज्यादा हो। उसे कुछ जो काम करने हैं जिंदगी में, वे वैसी शक्ति की मांग करते हैं। स्त्री को जो काम करने हैं, वे वैसी शक्ति की मांग करते हैं। और प्रकृति या अगर हम कहें परमात्मा इतनी व्यवस्था देता है जीवन को कि सब तरफ से जो जरूरी है जिसके लिए, वह उसे मिल जाता है।

कभी हमने खयाल भी नहीं किया। जमीन पर, इतनी बड़ी पृथ्वी पर कोई तीन, साढ़े तीन अरब लोग हैं स्त्रियां-पुरुष सब मिला कर। किसी घर में लड़के ही लड़के पैदा हो जाते हैं। किसी घर में लड़कियां भी हो जाती हैं। लेकिन अगर पूरी पृथ्वी का हम हिसाब रखें तो लड़के और लड़कियां करीब-करीब बराबर पैदा होते हैं। पैदा होते वक्त बराबर नहीं होते, लेकिन पांच-छह साल में बराबर हो जाते हैं। पैदा होते वक्त एक सौ पच्चीस लड़के पैदा होते हैं सौ लड़कियों पर। क्योंकि लड़कों का रेसिस्टेंस कम है; पच्चीस लड़के तो जवान होते-होते मर जाने वाले हैं। लड़के ज्यादा पैदा होते हैं, लड़कियां कम पैदा होती हैं, लेकिन जवान होते-होते लड़के और लड़कियों की संख्या दुनिया में करीब-करीब बराबर हो जाती है। कोई बहुत गहरी व्यवस्था भीतर से काम करती है।

नहीं तो कभी ऐसा भी हो सकता है, इसमें कोई दुर्घटना तो नहीं कि जमीन पर स्त्रियां ही स्त्रियां हो जाएं एक बार या पुरुष ही पुरुष हो जाएं। यह संभावना है, अगर बिल्कुल अंधेरे में व्यवस्था चल रही हो। लेकिन भीतर कोई नियम काम करता है। और नियम के पीछे बायोलाजिकल व्यवस्था है। जितने अणु होते हैं, वीर्याणु होते हैं, उनमें आधे स्त्रियों को पैदा करने में समर्थ हैं, आधे पुरुषों को। इसलिए कितना ही एक घर में भेद पड़े, लंबे विस्तार पर भेद बराबर हो जाता है।

स्त्री को वे शक्तियां मिली हुई हैं, जो उसे अपने काम को--और स्त्री का बड़े से बड़ा काम उसका मां होना है। उससे बड़ा काम संभव नहीं है। और शायद मां होने से बड़ी कोई संभावना पुरुष के लिए तो है ही नहीं, स्त्री के लिए भी नहीं है। मां होने की संभावना हम सामान्य रूप से ग्रहण कर लेते हैं।

कभी आपने नहीं सोचा होगा, इतने पेंटर हुए, इतने मूर्तिकार हुए, इतने चित्रकार, इतने कवि, इतने आर्किटेक्ट, लेकिन स्त्री कोई एक बड़ी चित्रकार नहीं हुई! कोई एक स्त्री बड़ी आर्किटेक्ट, वास्तुकला में कोई अग्रणी नहीं हुई! कोई एक स्त्री ने बहुत बड़े संगीत को जन्म नहीं दिया! और कोई एक स्त्री ने कोई बहुत अदभुत मूर्ति नहीं काटी! सृजन का सारा काम पुरुष ने किया है। तो कई बार पुरुष को ऐसा खयाल आता है कि क्रिएटिव, सृजनात्मक शक्ति हमारे पास है; स्त्री के पास कोई सृजनात्मक शक्ति नहीं है।

लेकिन बात उलटी है। स्त्री पुरुष को पैदा करने में इतना बड़ा श्रम कर लेती है कि और कोई सृजन करने की जरूरत नहीं रह जाती। स्त्री के पास अपना एक क्रिएटिव एक्ट है, एक सृजनात्मक कृत्य है, जो इतना बड़ा है कि पत्थर की मूर्ति बनाना और एक जीवित व्यक्ति को बड़ा करना... लेकिन स्त्री के काम को हमने सहज स्वीकार कर लिया है। और शायद इसीलिए स्त्री की सारी सृजनात्मक शक्ति उसके मां बनने में लग जाती है। उसके पास और कोई सृजन की न सुविधा बचती, न शक्ति बचती; न कोई आयाम, कोई डायमेंशन बचता; न सोचने का कोई सवाल है।

एक छोटे से घर को सुंदर बनाने में--लेकिन हम कहेंगे, छोटे से घर को सुंदर बनाना, कोई माइकलएंजलो तो पैदा नहीं हो सकता, कोई वानगाग तो पैदा नहीं हो जाएगा, कोई इजरा पाउंड तो पैदा नहीं होगा, कोई कालिदास तो पैदा नहीं होगा--एक छोटे से घर को...

लेकिन मैं कुछ घरों में जाकर ठहरता रहा हूं। एक घर में ठहरा था, मैं हैरान हो गया! गरीब घर है, बहुत संपन्न नहीं है। लेकिन इतना साफ-सुथरा, इतना स्वच्छ मैंने कोई घर नहीं देखा। लेकिन उस घर की प्रशंसा करने कोई कभी नहीं जाएगा। घर की गृहिणी उस घर को ऐसा पवित्र बना रही है कि कोई मंदिर भी उतना स्वच्छ और पवित्र नहीं मालूम पड़ता। लेकिन उसकी कौन फिक्र करेगा? कौन माइकलएंजलो, कालिदास और वानगाग में उसकी गिनती करेगा? वह खो जाएगी। वह एक बहुत ऐसा काम कर रही है, जिसके लिए कोई प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी।

क्यों नहीं मिलेगी? नहीं मिलेगी, क्योंकि यह दुनिया पुरुषों की दुनिया है। स्त्री के विकास, स्त्री की संभावनाओं, स्त्रियों की जो पोटेंशिएलिटीज हैं, उनके जो आयाम, ऊंचाइयां हैं, उनको हमने गिनती में ही नहीं लिया है। अगर एक आदमी गणित में कोई नई खोज कर ले तो नोबल प्राइज मिल सकती है। लेकिन स्त्रियां निरंतर प्रेम के बहुत नये-नये आयाम खोजती हैं, कोई नोबल प्राइज उनके लिए नहीं है। वह स्त्रियों की दुनिया नहीं है। स्त्रियों को सोचने के लिए, स्त्रियों को दिशा देने के लिए, उनके जीवन में जो हो उसे भी मूल्य देने का हमारे पास कोई आधार नहीं है। हम सिर्फ पुरुषों को आधार देते हैं!

इसलिए अगर हम इतिहास उठा कर देखें तो उसमें चोर, डकैत, हत्यारे बड़े-बड़े आदमी मिल जाएंगे। उसमें चंगीज खां, तैमूर लंग और हिटलर और स्टैलिन और माओ, सबका स्थान है। लेकिन उसमें हमें ऐसी स्त्रियां खोजने में बड़ी मुश्किल पड़ जाएगी--उनका कोई उल्लेख ही नहीं है--जिन्होंने एक सुंदर घर बनाया हो, जिन्होंने एक बेटा पैदा किया हो और जिसके साथ, जिसे बड़ा करने में सारी मां की ताकत, सारी प्रार्थना, सारा प्रेम लगा दिया हो। इसका कोई हिसाब नहीं मिलेगा।

पुरुष की एकतरफा अधूरी दुनिया अब तक चली है। और जो पूरा इतिहास है वह पुरुष का ही इतिहास है, इसलिए युद्धों का, हिंसाओं का इतिहास है।

जिस दिन स्त्री भी स्वीकृत होगी और विराट मनुष्यता में उतना ही समान स्थान पा लेगी जितना पुरुष का है, तो इतिहास भी ठीक दूसरी दिशा लेना शुरू करेगा।

मेरी दृष्टि में, जिस दिन स्त्री बिल्कुल समान हो जाती है, शायद युद्ध असंभव हो जाएं। क्योंकि युद्ध में कोई भी मरे, वह किसी का बेटा होता है, किसी का भाई होता है, किसी का पति होता है।

लेकिन पुरुषों को मरने-मारने की ऐसी लंबी बीमारी है, क्योंकि बिना मरे-मारे वे अपने पुरुषत्व को ही सिद्ध नहीं कर पाते हैं, वे यह बता ही नहीं पाते हैं कि मैं भी कुछ हूं। तो मरने-मारने का एक लंबा जाल! और फिर जो मर जाए ऐसे जाल में उसको आदर देना! और उन्होंने स्त्रियों को भी राजी कर लिया है कि जब तुम्हारे बेटे युद्ध पर जाएं तो तुम टीका करना! रो रही है मां, आंसू टपक रहे हैं, और वह टीका कर रही है! और आशीर्वाद दे रही है! यह पुरुष ने जबरदस्ती तैयार करवाया हुआ है। अगर दुनिया भर की स्त्रियां तय कर लें, तो युद्ध असंभव हो जाएं।

लेकिन सब व्यवस्था, सब सोचना, सारी संस्कृति, सारी सभ्यता पुरुष के गुणों पर खड़ी है। इसलिए पूरा मनुष्य का इतिहास युद्धों का इतिहास है। अगर हम तीन हजार वर्ष की कहानी उठा कर देखें तो मुश्किल मालूम पड़ती है कि आदमी कभी ऐसा रहा हो जब युद्ध न किया हो। युद्ध चल ही रहा है। आज इस कोने में आग लगी है जमीन के, कल दूसरे कोने में, परसों तीसरे कोने में। आग लगी ही है, आदमी जल ही रहा है, आदमी मारा ही जा रहा है। और अब? अब तो हम उस जगह पहुंच गए हैं जहां हमने बड़ा इंतजाम किया है। अब हम आगे आदमी को बचने नहीं देंगे।

अगर पुरुष सफल हो जाता है अपने अंतिम उपाय में, तीसरे महायुद्ध में, तो शायद मनुष्यता नहीं बचेगी। इतना इंतजाम तो कर लिया है कि हम पूरी पृथ्वी को नष्ट कर दें। पूरी तरह से नष्ट कर दें--यह पुरुष के इतिहास की आखिरी जो क्लाइमेक्स हो सकती थी चरम, वहां हम पहुंच गए हैं।

यह हम क्यों पहुंच गए हैं? क्योंकि पुरुष गणित में सोचता है, प्रेम उसके सोचने की भाषा नहीं है।

ध्यान रहे, विज्ञान विकसित हुआ है, धर्म विकसित नहीं हो सका। और धर्म तब तक विकसित नहीं होगा जब तक स्त्री समान जीवन और संस्कृति में दान नहीं करती है और उसे दान का मौका नहीं मिलता है।

गणित से जो चीज विकसित होगी, वह विज्ञान है। गणित परमात्मा तक ले जाने वाला नहीं है। चाहे दो और दो कितने ही बार जोड़ो, तो भी बराबर परमात्मा होने वाला नहीं है। गणित कितना ही बढ़ता चला जाए वह पदार्थ से ऊपर जाने वाला नहीं है।

प्रेम परमात्मा तक पहुंच सकता है।

लेकिन हमारी सारी खोज गणित की है, तर्क की है। वह विज्ञान पर लेकर खड़ा हो गया है। उसके आगे नहीं जाता है। प्रेम की हमारी कोई खोज नहीं है। शायद प्रेम की बात करना भी हम स्त्रियों के लिए छोड़ देते हैं। या कवियों के लिए, जिनको हम करीब-करीब स्त्रियों जैसा गिनती करते हैं। उनकी गिनती हम कोई पुरुषों में नहीं करते।

नीत्शे ने तो एक अदभुत बात लिखी है, खतरनाक, किसी को बहुत बुरी भी लग सकती है। नीत्शे ने तो यह बात लिखी है; मैं मानता हूं, सच है। उसने तो क्रोध में लिखी है और गाली देने के इरादे से लिखी है, लेकिन बात सच है।

नीत्शे ने लिखा है कि बुद्ध और क्राइस्ट को मैं वूमेनिश मानता हूं! स्त्रैण मानता हूं! बुद्ध और क्राइस्ट को मैं स्त्रैण मानता हूं; मैं पुरुष नहीं मानता। क्योंकि जो लड़ने की बात ही नहीं करते और जो लड़ने से बचने की बात करते हैं, वे पुरुष कैसे हो सकते हैं? पुरुषत्व तो लड़ने में ही है।

नीत्शे ने कहा है, मैंने सुंदरतम जो दृश्य देखा है जीवन में, वह तब देखा, जब सूरज की उगती रोशनी में सिपाहियों की चमकती हुई तलवारें, और उनके चमकते हुए बूटों की आवाजें, और उनका एक पंक्तिबद्ध रास्ते से गुजरना, सूरज की रोशनी का गिरना, और पंक्तिबद्ध उनके पैरों की आवाज और उनकी चमकती हुई संगीनें--मैंने उससे सुंदर दृश्य जीवन में दूसरा नहीं देखा है।

अगर यह आदमी, और यह मानता है कि ऐसा दृश्य सुंदर है, तो फूल स्त्रैण हो जाएंगे। निश्चित ही, जब चमकती हुई संगीनें सुंदर हैं तो फूल कहां टिकेंगे? फूलों को बाहर कर देना होगा सौंदर्य के।

और जब नीत्शे कहता है, जो लड़ते हैं, और लड़ सकते हैं, और लड़ते रहते हैं, युद्ध ही जिनका जीवन है, वे ही पुरुष हैं! तो ठीक है, बुद्ध और क्राइस्ट और महावीर को अलग कर देना होगा। उनकी स्त्रियों में ही गिनता करनी पड़ेगी।

लेकिन दुनिया में जो भी प्रेम के रास्ते से गया हो, उसमें किसी न किसी अर्थों में नीत्शे का कहना ठीक ही है कि वह स्त्रैण है। यह अपमानजनक नहीं है। अगर पुरुष ने भी प्रेम किया हो, तो वह जो पुरुष की जो आम धारणाएं हैं--युद्ध की, संघर्ष की, हिंसा की, वायलेंस की--वे गिर जाती हैं। और नई धारणाएं पैदा होती हैं--सहयोग की, क्षमा की, प्रेम की।

एक बुद्ध का भिक्षु था। उस भिक्षु का नाम था पूर्ण। उसकी शिक्षा पूरी हो गई। और शिक्षा पूरी हो जाने पर बुद्ध ने उससे कहा कि पूर्ण, अब तू जा और मेरे प्रेम की खबर लोगों तक पहुंचा दे। तू उन जगहों में जा जहां कोई भी न गया हो। तू मेरी खबर ले जा प्रेम की। हिंसा की खबरें बहुत पहुंचाई गईं, कोई प्रेम की खबर भी पहुंचाए!

उस पूर्ण ने बुद्ध के पैर छुए और कहा, मुझे आज्ञा दें कि मैं सूखा नाम का छोटा सा बिहार का एक हिस्सा है, वहां जाऊं और आपका संदेश ले जाऊं। बुद्ध ने कहा, वहां तू मत जा तो बड़ी कृपा हो। वहां के लोग अच्छे नहीं हैं। वहां के लोग बहुत बुरे हैं।

पूर्ण ने कहा, तब मेरी वहां जरूर ही जरूरत है। जहां लोग बुरे हैं और अच्छे नहीं हैं, वहीं तो प्रेम का संदेश ले जाना पड़ेगा।

बुद्ध ने कहा, फिर मैं तुझसे दो-तीन प्रश्न पूछता हूं। तू उत्तर दे दे। तब जा। मैं तुझसे पहले पूछता हूं कि अगर वहां के लोगों ने तेरा अपमान किया, गालियां दीं, तो तुझे क्या होगा?

पूर्ण ने कहा, क्या होगा! मैं सोचूंगा, लोग कितने अच्छे हैं, सिर्फ गालियां देते हैं, अपमान करते हैं, मारते नहीं हैं। मार भी सकते थे।

बुद्ध ने कहा, यहां तक भी ठीक। लेकिन अगर वे मारने लगे--वे लोग बुरे हैं, मार भी सकते हैं--अगर उन्होंने मारा और तेरे प्रेम के संदेश पर पत्थर फेंके और लकड़ियां तेरे सिर पर बरसीं, तो तुझे क्या होगा?

पूर्ण ने कहा, क्या होगा! मुझे यही होगा कि लोग अच्छे हैं। सिर्फ मारते हैं, मार ही नहीं डालते।

बुद्ध ने कहा, मैं तीसरी बात और पूछता हूं। अगर उन्होंने तुझे मार ही डाला, तो मरते क्षण में तेरे मन को क्या होगा?

पूर्ण ने कहा, मेरे मन को होगा, कितने भले लोग हैं, मुझे उस जीवन से मुक्त कर दिया, जिसमें भूल-चूक हो सकती थी, जिसमें मैं भटक भी सकता था, जिसमें मैं भी मारने को तैयार हो सकता था--उससे मुक्त कर दिया।

बुद्ध ने कहा, अब तू जा। तेरा प्रेम पूरा हो गया। और जिसका प्रेम पूरा हो गया है वही युद्ध के विपरीत, हिंसा के विपरीत खबर और हवा ले जा सकता है। तू जा!

स्त्रियां जिस दिन मनुष्य की संस्कृति में समान पुरुष के साथ खड़ी हो सकेंगी और मनुष्य की संस्कृति में आधा दान उनका होगा, उस दिन गणित अकेली चीज नहीं होगी, उस दिन प्रेम भी एक चीज होगी। और प्रेम गणित से बिल्कुल उलटा है। धर्म विज्ञान से बिल्कुल उलटा है। गणित की और ही दुनिया है।

मिलिट्री में हम आदमियों के नाम हटा देते हैं, नंबर दे देते हैं। अगर आप भर्ती हो गए हैं या मैं भर्ती हो गया हूं, तो ग्यारह, बारह, पंद्रह, ऐसे नंबर हो जाएंगे। और जब एक आदमी मरेगा तो मिलिट्री के आफिस के बाहर नोटिस लग जाएगाः बारहवां नंबर गिर गया। आदमी नहीं मरता मिलिट्री में, सिर्फ नंबर मरते हैं! आदमी के ऊपर भी हम नंबर लगा देते हैं। इसका फर्क बहुत ज्यादा है। अगर पता चले कि फलां आदमी मर गया--जिसकी पत्नी है, जिसके दो बेटे छोटे हैं, जिसकी बूढ़ी मां है--वे सब असहाय हो गए, फलां आदमी मर गया, तो एक आदमी की तस्वीर उठती है। लेकिन बारह नंबर की न कोई पत्नी होती, न कोई बेटे होते। नंबर की कहीं पत्नियां और बेटे हुए हैं? नंबर बिल्कुल नंबर है। जब बारह नंबर गिरने का बोर्ड पर नोटिस लगता है, तो लोग पढ़ कर निकल जाते हैं। गणित का एक सवाल जैसा होता है कि इतने नंबर गिर गए, इतने नंबर खत्म हो गए। दूसरे नंबर उनकी जगह खड़े हो जाएंगे। बारह नंबर दूसरे आदमी पर लग जाएगा। दूसरा आदमी बारह नंबर की जगह खड़ा हो जाएगा।

गणित में रिप्लेसमेंट संभव है। जिंदगी में तो नहीं। एक आदमी मरा, उसको अब दुनिया में कोई दूसरा आदमी उसकी जगह रिप्लेस नहीं हो सकता। लेकिन गणित में कोई कठिनाई नहीं है। गणित में हो सकता है। इसीलिए तो मिलिट्री में तकलीफ नहीं होती। नंबर ही गिरते हैं, नंबर ही मरते हैं। और हमने पूरी जो व्यवस्था की है, गणित से सोचने वाला आदमी जो व्यवस्था करता है, वह इतनी ही कठोर, यांत्रिक, मेकेनिकल और इतनी ही जड़ होती है।

मैंने सुना है कि जिस आदमी ने सबसे पहले एवरेज, औसत का नियम खोजा...

जब कोई आदमी कोई नया नियम खोज लेता है तो बड़ी उत्फुल्लता से भर जाता है। हम तो जानते हैं, आर्किमिडीज तो नंगा ही बाहर निकल आया था अपने टब के, और चिल्लाने लगा--यूरेका! यूरेका! मिल गया! मिल गया! और भूल गया कि वह कपड़े नहीं पहने है, इतनी खुशी से भर गया।

जिस आदमी ने एवरेज का सिद्धांत खोजा, वह भी इतनी ही खुशी से भर गया होगा। जिस दिन उसने सिद्धांत खोजा, अपनी पत्नी, अपने बच्चों को लेकर वह खुशी में पिकनिक पर गया।

एवरेज का मतलब? एवरेज का मतलब यह है कि हिंदुस्तान में एवरेज आदमी की कितनी आमदनी है। और मजा यह है कि एवरेज आदमी होता ही नहीं। एवरेज आदमी बिल्कुल झूठी बात है। एवरेज आदमी कहीं नहीं मिलेगा। एवरेज आदमी एक रुपया है, तो आप ऐसा आदमी नहीं खोज सकते कि जो एवरेज आदमी हो। पंद्रह आने वाला मिलेगा, सत्रह आने वाला मिलेगा, लाख वाला मिलेगा, पौने सोलह आने वाला मिलेगा, पैसे वाला मिलेगा, भूखा मिलेगा। ठीक एवरेज आदमी पूरे हिंदुस्तान में खोजने से नहीं मिलेगा। क्योंकि एवरेज गणित से निकली हुई बात है, आदमी की जिंदगी से नहीं।

हम यहां इतने लोग बैठे हैं। हम सब की एवरेज उम्र निकाली जा सकती है। सब की उम्र जोड़ दी और सब आदमियों की गणना का भाग दे दिया। आ गया ग्यारह साल, पंद्रह दिन या पचास साल या कुछ भी। उस आदमी को खोजने निकलो कि एक्.जेक्ट--पचास साल, पांच दिन, तीन घंटे, पंद्रह मिनट का कौन आदमी है? वह नहीं मिलेगा। वह है ही नहीं कहीं। एवरेज आदमी गणित का सिद्धांत है, आदमी की जिंदगी का नहीं।

उस गणितज्ञ ने एवरेज का सिद्धांत निकाल लिया। और अपनी पत्नी-बच्चों को लेकर पिकनिक पर गया। रास्ते में एक छोटा सा नाला पड़ा। उसकी पत्नी ने कहा, नाले को जरा ठीक से देख लो, छोटे बच्चे हैं, पांच-सात बच्चे हैं, कोई डूब-डाब न जाए।

उसने कहा, ठहर, मैं बच्चों की एवरेज ऊंचाई नाप लेता हूं और नाले की एवरेज गहराई। अगर एवरेज गहराई से एवरेज बच्चा ऊंचा है, फिर बेफ्रिक होकर पार हो सकते हैं। उसने जाकर अपना फुट निकाला। फुट साथ रखा हुआ था। नाप कर लिया, बच्चे नाप लिए। एवरेज बच्चा, एवरेज गहराई से ऊंचा था। कोई बच्चा बिल्कुल छोटा था, कोई बच्चा बड़ा भी था। और कहीं नाला बिल्कुल उथला था और कहीं गहरा भी था। लेकिन वह एवरेज में नहीं आती बातें, गणित में नहीं आतीं। उसने कहा, बेफिक्र रह, मैंने बिल्कुल हिसाब ठीक कर लिया है।

रेत पर हिसाब लगा लिया। आगे गणितज्ञ हो गया, बीच में उसके बच्चे हैं, पीछे उसकी पत्नी है। पत्नी थोड़ी डरी हुई है। स्त्रियों का गणित पर कभी भरोसा नहीं रहा है। थोड़ा भय है उसे कि कुछ गड़बड़ हुई जा रही है। क्योंकि नाले में कई जगह हरापन दिखाई पड़ता है, नाला कई जगह गहरा मालूम पड़ता है। उसने देखा कि उसका पति खुद कहीं बिल्कुल डूब गया है, और साथ एक छोटा बच्चा भी है! वह सचेत है, लेकिन पति अकड़ कर आगे चला जा रहा है। एक बच्चा डूबने लगा। उसकी पत्नी ने चिल्ला कर कहा कि देखिए, बच्चा डूब रहा है!

आप समझते हैं कि उस आदमी ने क्या किया? पुरुष ने क्या किया? उसने कहा, यह हो ही नहीं सकता। क्योंकि गणित गलत कैसे हो सकता है? बच्चे को बचाने की बजाय वह भाग कर नदी के उस तरफ गया जहां उसने रेत पर गणित किया था! पहले उसने गणित देखा, कि गणित गलत तो नहीं है? उसने वहीं से चिल्लाया कि यह हो नहीं सकता, गणित बिल्कुल ठीक है!

गणित की एक दिशा है, जहां जड़ नियम होते हैं। चीजें तौली, नापी जा सकती हैं।

अब तक पुरुष ने जो संस्कृति बनाई है, वह गणित की संस्कृति है। वहां नाप, जोख, तौल सब है। स्त्री का कोई हाथ इस संस्कृति में नहीं है; क्योंकि उसे समानता का कोई हक नहीं है। उसे हमने कभी पुकारा नहीं कि तुम आओ और तुम एक बिल्कुल दूसरे आयाम से, प्रेम के आयाम से भी दान करो कि समाज कैसा हो।

स्त्री अगर सोचेगी तो और भाषा में सोचती है। असल में, उसका सोचना भी हमसे बहुत भिन्न है। उसे हम सोचना भी नहीं कह सकते। भावना कह सकते हैं। पुरुष सोचता है, स्त्री भावना करती है। सोचना नहीं कह सकते, क्योंकि सोचना गणित की दुनिया का ही हिसाब है। और इसलिए पुरुष हमेशा हिसाब लगाता है। स्त्री हिसाब के आस-पास चलती है। ठीक हिसाब नहीं लगा पाती। ठीक हिसाब नहीं है उसके पास।

लेकिन जिंदगी अकेला गणित नहीं है। जिंदगी बहुत बड़े अर्थों में प्रेम है, जहां कोई हिसाब नहीं होता, जहां कोई गणित नहीं होता। जिंदगी बहुत बेबूझ है। और इस जिंदगी को अगर हमने सिर्फ गणित की सीधी-साफ रेखाओं पर निर्मित किया, तो हम सीधी-साफ रेखाएं बना लेंगे। लेकिन आदमी पुंछता चला जाएगा, मिटता चला जाएगा। और यह हो रहा है। रोज यह हो रहा है कि आदमी की जड़ें नीचे से कट रही हैं। क्योंकि हम जो इंतजाम कर रहे हैं, वह ऐसा इंतजाम है जिसके ढांचे में जिंदगी नहीं पल सकती।

जैसे कि अगर समझ लें कि मुझे एक फूल बहुत प्यारा लगे तो मैं एक तिजोरी में उसे बंद कर लूं। गणित यही कहेगा कि तिजोरी में बंद कर लो, ताला लगा दो जोर से! मुझे सूरज की रोशनी बहुत अच्छी लगे, एक पेटी में बंद कर लूं, अपने घर रखूं बांध कर।

लेकिन जिंदगी पेटियों में बंद नहीं होती--न गणित की पेटियों में, न साइंस की पेटियों में--कहीं बंद नहीं होती। जिंदगी बाहर छूट जाती है, एकदम छूट जाती है। मुट्ठी बांधी--अगर यहां हवा है और मैं मुट्ठी जोर से बांधूं और सोचूं कि हवा को हाथ के भीतर बंद कर लूंगा--मुट्ठी जितने जोर से बंधेगी, हवा उतनी ही हाथ के बाहर हो जाएगी। जिंदगी बंधना मानती नहीं। जिंदगी एक तरलता और एक बहाव है।

लेकिन हमारी पुरुष की चिंतना की सारी जो कैटेगरी.ज हैं, पुरुष के सोचने का जो ढंग है, वह सब चीजों को बांधता है। व्यवस्थित बांध लेता है, हिसाब में बांध लेता है। अगर उससे पूछो कि मां का क्या मतलब है? अगर ठीक पुरुष से पूछो कि मां का क्या मतलब है? तो वह कहेगा, बच्चे पैदा करने की एक मशीन! और क्या हो सकता है?

एक वैज्ञानिक की मैं किताब पढ़ रहा था। उस वैज्ञानिक से किसी ने पूछा, मुर्गी क्या है? तो उस आदमी ने कहा, मुर्गी अंडे की तरकीब है, और अंडे पैदा करने के लिए। अंडे की तरकीब, और अंडे पैदा करने के लिए! मुर्गी क्या है? अंडे की तरकीब है, और अंडे पैदा करने के लिए। और क्या हो सकता है?

गणित ऐसा सोचेगा--सोचेगा ही! गणित इससे भिन्न सोच भी नहीं सकता। विज्ञान इससे भिन्न सोच भी नहीं सकता। विज्ञान आत्मा की गणना नहीं करता! जीवन की गणना नहीं करता! चीजों को काट लेता है। काट कर खोज कर लेता है, विश्लेषण कर लेता है। और विश्लेषण में जो जीवन था, वह एकदम खो जाता है।

पुरुष ने जो दुनिया बनाई है... वह पुरुष अधूरा है, अधूरी दुनिया बन गई है। पुरुष अधूरा है, यह ध्यान रहे। और स्त्री के साथ बिना उसकी संस्कृति अधूरी होगी।

तो एक-एक घर में तो पुरुष एक-एक स्त्री को ले आया है। एक-एक घर में तो पुरुष अकेला रहने को राजी नहीं है। स्त्री भी अकेले रहने को राजी नहीं है। चाहे कितनी ही कलह हो, स्त्री और पुरुष साथ रह रहे हैं! लेकिन संस्कृति और सभ्यता की जहां दुनिया है, वहां स्त्री का बिल्कुल प्रवेश नहीं हुआ है, वहां पुरुष बिल्कुल अकेला है।

और पुरुष के अकेले, अधूरेपन ने... और पुरुष बिल्कुल अधूरा है, जैसे स्त्री अधूरी है। वे कांप्लीमेंटरी हैं, दोनों मिल कर एक पूर्ण व्यक्तित्व बनता है।

लेकिन मनुष्य की संस्कृति अधूरी सिद्ध हो रही है, क्योंकि वह आधे पुरुष ने ही निर्मित की है, स्त्री से उसने कभी मांग नहीं की। स्त्री सब गड़बड़ कर देती है, अगर वह आए तो। अगर लेबोरेटरी में उसे ले जाओ, तो बजाय इसके कि वह आपकी परखनली और आपकी टेस्ट-ट्यूब में क्या हो रहा है यह देखे, हो सकता है टेस्ट-ट्यूब को रंग कर सुंदर बनाने की कोशिश करे। स्त्री को लेबोरेटरी में ले जाओ, गड़बड़ होनी शुरू हो जाएगी। या पुरुष को स्त्री की बगिया में ले जाओ तो भी गड़बड़ होनी शुरू हो जाएगी।

इस गड़बड़ के डर से हमने कंपार्टमेंट बांट लिए हैं। पुरुष की एक दुनिया बना ली है। स्त्री की एक अलग दुनिया बना दी है। और दोनों के बीच एक बड़ी दीवाल खड़ी कर ली है। और दीवाल खड़ी करके पुरुष अकड़ गया है और वह कहता है, मुझसे तुम्हारा मुकाबला क्या? तुम कुछ कर ही नहीं सकतीं। इसलिए घर में बंद रहो। तुमसे कुछ हो नहीं सकता। हम पुरुष ही कुछ कर सकते हैं। हम पुरुष श्रेष्ठ हैं। स्त्रियां, तुम्हारा काम है कि तुम बर्तन मलो, खाना बनाओ, बस इतना! इससे ज्यादा तुम्हारा कोई काम नहीं है। बच्चों को बड़ा करो!

यह सब पुरुष ने स्त्री को एक दीवाल बंद करके वहां सौंप दिया है और वह बाहर अकेला मालिक होकर बैठ गया है। सब तरफ पुरुष इकट्ठे हो गए हैं। कल्चर की जहां दुनिया है, संस्कृति की, वहां पुरुष इकट्ठे हो गए हैं! स्त्रियां वर्जित हैं! स्त्रियां अस्पृश्य की, अनटचेबल की भांति बाहर कर दी गई हैं!

मेरी दृष्टि में, इसीलिए मनुष्य की सभ्यता अब तक सुख और आनंद की सभ्यता नहीं बन सकी है। अब तक मनुष्य की सभ्यता पूर्ण इंटीग्रेटेड नहीं बन सकी है। उसका आधा अंग बिल्कुल ही काट दिया गया है। इस आधे अंग को वापस समान हक न मिले, इसे वापस जीवन का पूरा अवसर, स्वतंत्रता न मिले, तो मनुष्य का बहुत भविष्य नहीं माना जा सकता। मनुष्य का भविष्य एकदम अंधकारपूर्ण कहा जा सकता है।

स्त्री को लाना है। भेद हैं, भिन्नताएं हैं। भिन्नताएं आनंदपूर्ण हैं, भिन्नताएं दुख का कारण नहीं हैं। असमानता दुख का कारण है। और असमानता को, हमने भिन्नता के आधार पर असमानता को इतना मजबूत कर लिया है कि कल्पना के बाहर है कि स्त्री और पुरुष मित्र हो सकते हैं। पुरुष को लगता ही नहीं कि स्त्री और मित्र! मित्र नहीं हो सकती, पत्नी हो सकती है। पत्नी यानी दासी। और जब वह चिट्ठी लिखती है कि आपकी चरणों की दासी! तो पुरुष बड़ा प्रसन्न होता है पढ़ कर। बहुत प्रसन्न होता है कि ठीक पत्नी मिल गई है। ऐसी ही पत्नी होनी चाहिए।

पुरुषों के ऋषि-मुनि समझाते हैं--पत्नी परमात्मा माने पुरुष को! पुरुष खुद ही समझा रहा है कि मुझे परमात्मा मानो! और स्त्रियों के दिमाग को वह तीन हजार साल से कंडीशंड कर रहा है। और उनके दिमाग में यह प्रचार कर रहा है कि मुझे यह मानो! पुरुषों ने किताबें लिखी हैं, जिसमें उन्होंने लिखा है कि स्त्री तो अगर कल्पना भी कर ले दूसरे पुरुष की, तो पापिनी है! और पुरुष अगर वेश्या के घर भी जाए, तो पवित्र स्त्री वही है जो उसे कंधे पर बिठा कर वेश्या के घर पहुंचा दे!

मजेदार लोग हैं! बहुत मजेदार लोग हैं! और हम... लेकिन यह स्वीकृत हो गया! इसमें स्त्रियों को भी एतराज नहीं है, यह स्वीकृत हो गया है! स्त्रियों को इतने दिन से प्रोपेगंडा किया गया है, उनकी खोपड़ी पर हैमरिंग की गई है कि उन्होंने मान लिया है। बचपन से ही उन्हें नंबर दो की स्थिति स्वीकार करने के लिए मां-बाप तैयार करते हैं। वह नंबर एक नहीं है। वह नंबर एक नहीं है, नंबर दो है, इसकी स्वीकृति बचपन से उनके मन पर थोपती चली जाती है पूरी संस्कृति, पूरी सभ्यता, पूरी व्यवस्था।

कैसे यह छुटकारा हो? कैसे यह स्त्री पुरुष के समान खड़ी हो सके?

बहुत कठिन मामला मालूम पड़ता है। लेकिन दो-तीन सूत्र सुझाना चाहता हूं। इनके बिना शायद स्त्री पुरुष के समान खड़ी नहीं हो सकती।

और ध्यान रहे, जब तक पूरी परिस्थिति नहीं बदलती है--पुरुष कितना ही कहे कि तुमको भी तो समान हक है वोट करने का, तुम समान हो, सब बातें ठीक हैं, असमानता क्या है--इससे कुछ हल नहीं होगा। स्त्री के नीचे उसके जीवन की गुलामी में, उसकी असमानता में कुछ कारण हैं।

जैसे, जब तक स्त्रियों की अपनी कोई आर्थिक स्थिति नहीं है, जब तक उनकी कोई अपनी इकोनामिक, अर्थगत, संपत्तिगत अपनी कोई स्थिति नहीं है, तब तक स्त्रियों की समानता बातचीत की बात होगी। गरीब-अमीर समान हैं, हम कहते हैं। हम कहते हैं, गरीब-अमीर समान हैं, बराबर वोट का हक है, सब ठीक है। लेकिन गरीब-अमीर समान कैसे हो सकते हैं? वह अमीरी और गरीबी इतनी बड़ी असमानता पैदा कर देती है।

और स्त्रियों से ज्यादा गरीब कोई भी नहीं है, क्योंकि हमने उनको बिल्कुल अपंग कर दिया है कमाने से। पैदा करने से अपंग कर दिया है। वे कुछ पैदा नहीं करतीं, न वे कुछ कमातीं, न वे जिंदगी में आकर बाहर कुछ काम करतीं। घर के भीतर बंद कर दिया है। उनकी गुलामी का मूल सूत्र यह हैः वे जब तक आर्थिक रूप से बंधी हैं, तब तक वे समान हक में हो भी नहीं सकतीं।

और बुरा है यह। एकदम बुरा है। क्योंकि स्त्रियां सब तरफ फैल जाएं, सब कामों में, तो पुरुष के सब तरफ कामों में जो पुरुषपन आ गया है, वह सब शिथिल हो जाए। फर्क हम जानते हैं। फर्क बहुत स्पष्ट है। स्त्री के प्रवेश से ही एक और हवा हर दफ्तर में प्रविष्ट हो सकती है, हो ही जाती है।

एक क्लास, जहां लड़के ही लड़के पढ़ रहे हैं और पुरुष ही पढ़ा रहा है, एक और तरह की क्लास है। जहां चार लड़कियां भी आकर बैठ गई हैं--क्लास की हवा में फर्क पड़ गया है, बुनियादी फर्क पड़ गया है। ज्यादा कोमल, ज्यादा सुगंध से भरी वह हवा हो गई है। कम पुरुष, कम कठोर, चीजें शिथिल हो गई हैं और चीजें ज्यादा शिष्ट हो गई हैं।

स्त्री को जीवन के सब पहलुओं पर फैला देने की जरूरत है। ऐसा कोई काम नहीं है जो कि स्त्रियां न कर सकती हों। रूस में स्त्रियों ने सब काम करके बता दिया है। हवाई जहाज के पायलट होने से छोटे-मोटे काम तक। एक स्त्री ने अंतरिक्ष में उड़ कर भी बताया है। वह इस बात की खबर है कि स्त्रियां करीब-करीब सब काम कर सकती हैं।

कुछ काम होंगे, जो एकदम मस्कुलर हैं। कुछ काम होंगे! अब तो नहीं रह गए। क्योंकि मसल का सब काम मशीन करने लगी है। पुराना जमाना गया। कोई शेर-वेर से लड़ने जाना नहीं पड़ता और गामा वगैरह बनना सब अब बेवकूफी हो गई है, कोई समझ की बातें नहीं हैं। अब तो मसल का काम मशीन ने कर दिया है, इसलिए स्त्री को समान होने का पूरा मौका मिल गया है। मशीन बड़े से बड़ा काम कर देती है, बड़े से बड़ा पत्थर उठा देती है, बड़ी से बड़ी गाड़ी को खींच देती है, बड़े से बड़े वजन को धका देती है। अब पुरुष को भी धकाना नहीं पड़ता। अब कोई जरूरत नहीं है। अब स्त्री प्रत्येक काम में पुरुष के साथ खड़ी हो सकती है।

और जैसे ही स्त्री जीवन के सब पहलुओं में प्रविष्ट कर जाएगी, सभी पहलुओं के वातावरण में बुनियादी फर्क पड़ेगा। और कुछ काम तो ऐसे हैं... अब यह हैरानी की बात है, ऐसा अब शायद ही कोई काम अब बचा है पुरुष के पास जो स्त्री नहीं कर सकती, लेकिन कुछ काम ऐसे हैं जो स्त्रियां ही कर सकती हैं और पुरुष नहीं कर सकते हैं। और उन कामों को भी पुरुष पकड़े हुए हैं। जैसे शिक्षक का काम है। शिक्षक के काम से पुरुष को हट

जाना चाहिए। पुरुष शिक्षक हो ही नहीं सकता। उसका डिक्टेटोरियल माइंड इतना ज्यादा है कि वह शिक्षक नहीं हो सकता है। वह थोपने की कोशिश करता है। और वह जो भी मानता है, उसे थोपने की कोशिश करता है। उसका आग्रह हैः जो मैं कहता हूं, वह ठीक है। वह यील्डिंग नहीं है, वह झुक नहीं सकता। वह विनम्र नहीं हो सकता। ह्युमिलिटी नहीं है, हंबलनेस नहीं है। शिक्षक अगर जरा भी थोपने वाला है तो दूसरी तरफ के मस्तिष्क को बुनियादी रूप से नुकसान पहुंचाता है। और नुकसान पहुंचता है सारी मनुष्य-जाति को। क्योंकि शिक्षक कैसे-कैसे व्यवहार कर रहा है!

निश्चित ही, सारी दुनिया में शिक्षा का करीब-करीब सारा काम--करीब-करीब कहता हूं--सारा काम स्त्रियों के हाथ में चला ही जाना चाहिए। यह बिल्कुल ही उचित होगा, हितकर होगा, महत्वपूर्ण होगा। क्योंकि शिक्षा तब एक रूखी-सूखी बात नहीं रह जाएगी, उसके साथ एक रस और एक पारिवारिक वातावरण जुड़ जाएगा और संबंधित हो जाएगा।

बहुत काम ऐसे हो सकते हैं, जो कि स्त्रियों को पूरी तरह उपलब्ध हो जाने चाहिए। और बहुत काम जो स्त्रियां कर सकती हैं, उन्हें सब तरफ से निमंत्रण मिलने चाहिए। और बहुत दिशाएं, जो हमेशा से अधूरी पड़ी हैं, जिनको कभी छुआ नहीं गया, वे खोली जानी चाहिए। उन दिशाओं के दरवाजे तोड़े जाने चाहिए, ताकि एक और तरह की चिंतना--स्त्री की चिंतना, स्त्री की भावना, बिल्कुल और तरह की है। उसमें कुछ डायमेट्रिकली अपोजिट, कुछ बुनियादी रूप से उलटे तत्व हैं। वह ज्यादा इनट्यूटिव है, इंटलेक्चुअल नहीं है। वह बहुत बुद्धि और तर्क की नहीं है, ज्यादा अंतर-अनुभूति की है। मनुष्य अंतर-अनुभूति से शून्य हो गया है, बिल्कुल शून्य है।

स्त्रियां अगर सब दिशाओं में फैल जाएं और जीवन भर घरों में बंद न रह जाएं, क्योंकि घरों का काम इतना उबाने वाला है, इतना बोरिंग है, इतना बोर्डम से भरा हुआ है कि उसे तो मशीन के हाथ में धीरे-धीरे छोड़ देना चाहिए। आदमी को करने की--न स्त्रियों को, न पुरुषों को--कोई जरूरत नहीं है। रोज सुबह वही काम, रोज दोपहर वही काम, रोज सांझ वही काम! एक स्त्री चालीस-पचास वर्ष तक एक मशीन की तरह सुबह से शाम यंत्र की तरह घूमती रहती है और वही काम करती रहती है। और इसका परिणाम क्या होता है? इसका परिणाम है कि मनुष्य के पूरे जीवन में विष घुल जाता है।

एक स्त्री जब चौबीस घंटे ऊब वाला काम करती है। रोज बर्तन मलती है--वही बर्तन, वही मलना; वही रोटी, वही खाना, वही उठाना; वही कपड़े धोना, वही बिस्तर लगाना; रोज एक चक्कर में सारा काम चलता है। थोड़े दिन में वह इस सबसे ऊब जाती है। लेकिन करना पड़ता है। और जिस काम से कोई ऊब गया हो और करना पड़े, तो उसका बदला वह किसी न किसी से लेगी। इसलिए स्त्रियां हर पुरुष से हर तरह का बदला ले रही हैं। हर तरह का बदला! पुरुष घर आया कि स्त्री तैयार है टूटने के लिए। इसीलिए पुरुष घर के बाहर-बाहर घूमते फिरते हैं। क्लब बनाते हैं, सिनेमा जाते हैं, पच्चीस उपाय सोचते हैं। घर से बचने की सारी कोशिश करते हैं। जब नहीं बच सकते, तब घर पहुंचते हैं।

मैं शिक्षक था, तो जिस युनिवर्सिटी में शिक्षक था, मैं हैरान हुआ। युनिवर्सिटी की क्लासेस तो मुश्किल से एक बजे शुरू होती थीं। लेकिन प्रोफेसर्स, मैं देखता कि ग्यारह बजे ही आकर कामन रूम में बैठ गए हैं। युनिवर्सिटी क्लासेस चार बजे खत्म हो जातीं। मैं देखता कि पांच, साढ़े पांच बजे तक वे वहीं जमे हुए हैं! मैंने उनसे पूछा, बात क्या है? इतनी जल्दी क्यों आ जाते हो? इतनी देर से क्यों लौटते हो? उन्होंने कहा, जितनी देर घर के बाहर रह जाएं, उतनी ही शांति समझनी चाहिए। घर पहुंचे कि तैयारी है। और इन सबको, सारे पुरुषों को यह खयाल आता है कि स्त्रियों में कुछ गड़बड़ है, इससे ये कष्ट दे रही हैं!

नहीं, स्त्रियों का सारा काम बोर्डम का है। वे इतनी ऊब जाती हैं कि ऊब का बदला किससे लें? और आपके लिए वे ऊब रही हैं, आपके लिए सारा काम कर रही हैं, तो निश्चित ही आपसे बदला लिया जाने वाला है। अपने बच्चों को पीट रही हैं, उनसे बदला ले सकती हैं। पतियों से लड़ रही हैं, उनसे बदला ले सकती हैं। और फिर एक विसियस सर्किल शुरू होता है, जिसमें सब कलह और सब दुख हो जाता है।

नहीं, स्त्रियां तो जो भी काम घरों में कर रही हैं, अब वैज्ञानिक सुविधाएं उपलब्ध हो जाने पर वह सारा काम धीरे-धीरे यंत्रों के हाथ में चला जाना चाहिए। और स्त्रियां बाहर आएं। और निश्चित ही, जितना वे बाहर आएंगी उतना उनका मन विकसित होने का उपाय पाएगा। जितने बंद घेरे में कोई जीए, उतना छोटा मन, उतनी छोटी बुद्धि, उतनी सीमा हो जाती है।

हम स्त्रियों को कहां जिलाते रहे हैं? बंद घरों में! अब तो थोड़ी-बहुत खिड़कियां हो गई हैं, नहीं तो पुरुष खिड़कियां-विड़कियां नहीं होने देता था। खिड़की से कोई देख भी सकता है उसकी पत्नी को। पत्नी भी खिड़की के बाहर देख सकती है। और ऊबी हुई पत्नी देख ही सकती है। और पड़ोस के ऊबे हुए लोग भी देख सकते हैं। खिड़कियां भी नहीं थीं! और स्त्रियों के ऊपर हमने काले कपड़े भी लादे हुए थे। चेहरा भी नहीं देखने देते थे।

टर्की में कमाल जब हुकूमत में आया तो उसने पहला नियम बनाया कि आज से बुर्का ओढ़ना सबसे बड़ा अपराध है और कोई स्त्री बुर्का ओढ़े सड़क पर दिखाई नहीं पड़ेगी। तो जबरदस्ती बुर्के छीनने पड़े; क्योंकि स्त्रियां भी डरती थीं बुर्का छोड़ने में। और जब बुर्के छीने गए तो लाखों स्त्रियों के चेहरे देख कर लोग हैरान हो गए। पतियों ने भी अपनी पत्नियों के चेहरे रोशनी में नहीं देखे थे। रोशनी में स्त्री देखने के बाबत बड़ा विरोध रहा है। समझदार लोग बड़ा इनकार करते रहे हैं। चेहरे पीले पड़ गए थे! क्योंकि घर की बंद कोठरियों में, जहां न हवा जाती है, न सूरज की किरणें जाती हैं, वहां वे बंद थीं। जानवरों की तरह, पशुओं की तरह हमने उन्हें अलग काट रखा था। उनका पता नहीं चलता था--स्त्री का। आज भी कुछ मुल्कों में पता नहीं चलता--कुछ समाजों में--कि स्त्रियां भी हैं।

अगर चांद से कोई आदमी उतरे किसी के घर में और बैठकखाने में जाए, तो पता नहीं चलेगा कि इस घर में स्त्रियां भी हैं। स्त्रियां कहीं छिपी हैं दूर कोनों में। उनके किचन, उनके दिन भर जीने की जगह को आप देखें तो घबड़ा जाएंगे--अंधेरे में, धुएं में! रोशनी नहीं, हवा नहीं! और जब बाहर रोशनी-हवा में निकलें तो बुर्के हैं, पर्दे हैं! सब तरह से ढंकी हुई स्त्रियां! सब तरफ से बंद! बाहर भी कोठरी उनके साथ चल रही है, सड़क पर भी! वे कोठरी में ही बंद हैं।

स्वभावतः इसका परिणाम उनकी चेतना पर पड़ा होगा, मन पर पड़ा होगा, बुद्धि पर पड़ा होगा, शरीर पर पड़ा होगा। और ये ही स्त्रियां मनुष्य को जन्म देंगी, मनुष्य के जीवन को आगे बढ़ाएंगी। तो निश्चित ही इसका सारा परिणाम पूरी मनुष्यता पर पड़ने वाला है।

नहीं, स्त्रियों को बाहर... लेकिन पुरुष डरता है स्त्रियों को बाहर लाने में। डर उसके बहुत गहरे हैं। सबसे बड़ा डर तो उसे मालकियत का डर है। क्योंकि पुरुष ने एक मालकियत बना कर रखी है और वह मालकियत टूट सकती है। स्त्रियां बाहर आएं तो मालकियत टूट सकती है। स्त्रियां बाहर आएं तो उन्हें और पुरुष भी परमात्मा जैसे लग सकते हैं, अपने पुरुष को छोड़ कर। वह डर की बात है, वह घबड़ाने की बात है। इसलिए उन्हें बंद ही रखना जरूरी है। लेकिन इतनी बंद, इतनी जेलेस, इतना ईर्ष्यालु जो व्यवस्था है, वह हिंसक हो ही जाएगी। वह घबड़ाने वाली हो ही जाएगी।

और इसके परिणाम... अगर हम मनुष्य के मन को थोड़ा खोजें, उसके रोगों को खोजें, स्त्री या पुरुषों के, तो हम हैरान हो जाएंगे। सौ में से पचहत्तर मानसिक रोग किसी न किसी तरह से सेक्सुअल जेलेसी से, कामुक ईर्ष्या से जुड़े हुए हैं। और वह हमने जो व्यवस्था बनाई है, उसमें होना बिल्कुल अनिवार्य मालूम पड़ता है। यह सारा तोड़ देना आवश्यक है।

पहली बात मैंने कहीः स्त्री की आर्थिक व्यवस्था उसके हाथ में होनी चाहिए।

और अगर घर में भी स्त्री काम करे, घर में भी अगर स्त्री काम करती हो, तो उसके काम का मूल्यांकन होना चाहिए। वह बिना मूल्य, निर्मूल्य नहीं हो जाना चाहिए।

एक आदमी जूते बना रहा है, तो वह तो तीन सौ रुपये महीने की हैसियत है उसकी आपके घर में। और एक स्त्री चौबीस घंटे काम कर रही है, उसका कोई आर्थिक मूल्यांकन नहीं है कि वह कितना आर्थिक काम कर रही है। ऐसा लगता है कि वह कुछ भी नहीं कर रही है। पुरुष कहता है, सब हम कर रहे हैं! हम तुम्हें पाल रहे हैं, हम तुम्हें पालने वाले हैं! और उससे ज्यादा काम--कम नहीं--स्त्री किए चली जा रही है। अगर स्त्री घर में भी काम करती है तो उसका आर्थिक मूल्यांकन होना चाहिए। अगर बाहर ला सकें हम स्त्री को तो बड़ा सुखद होगा--काम बढ़े, उसकी बुद्धि बढ़े, उसका विकास बढ़े।

निश्चित ही, बाहर लाते ही हमारा परिवार का ढांचा बदलना पड़ेगा, विवाह की व्यवस्था बदलनी पड़ेगी। पुराने ढंग बहुत से बदल देने पड़ेंगे। स्त्री-पुरुष करीब आएंगे तो ढंग हमें नये करने पड़ेंगे। लेकिन वे ढंग नये किए जाने अशुभ नहीं हैं। वे शुभ होंगे, वे अत्यंत शुभ होंगे।

तीसरी बातः निरंतर जिन देशों ने भी, जिन समाजों ने भी स्त्री को नीचा किया है, उन देशों और समाजों में स्त्री को नीचा करने का एक बुनियादी कारण उस देश के साधु, संत, महात्मा रहे हैं। वे समझाते हैं कि स्त्री नरक का द्वार है। असल में, साधु-संत स्त्री से बहुत डरे हुए लोग होते हैं। स्त्री से उनको बहुत डर लगता है। क्योंकि वही उनको भगवान से भी ज्यादा ताकतवर मालूम पड़ती है, खींच सकती है अपनी तरफ। वे उसकी वजह से इतने घबड़ाए रहते हैं कि रात-दिन स्त्री के सपने ही देखते हैं। और उसको गालियां देते हैं, नरक का द्वार बताते हैं। आपको नहीं, वे अपने को समझा रहे हैं कि स्त्री नरक का द्वार है। सावधान! बचना! स्त्री की तरफ देखना भी मत!

ये इन घबड़ाए हुए, भागे हुए, एस्केपिस्ट, पलायनवादी लोगों ने स्त्री को समझने, स्त्री को आदृत होने, सम्मानित होने, साथ खड़े होने का मौका नहीं दिया।

अभी जब मैं बंबई था कुछ दिन पहले, एक मित्र ने मुझे आकर खबर दी कि एक बहुत बड़े संन्यासी वहां प्रवचन कर रहे हैं। आपने भी उनके प्रवचन सुने होंगे, नाम तो सुना ही होगा, वे प्रवचन कर रहे हैं। भागवत की कथा कर रहे हैं या कुछ कर रहे हैं। और स्त्री नहीं छू सकती उन्हें! एक स्त्री अजनबी आई होगी, उसने उनके पैर छू लिए! तो महाराज भारी कष्ट में पड़ गए हैं। अपवित्र हो गए हैं। उन्होंने सात दिन का उपवास किया है शुद्धि के लिए। तो जहां दस-पंद्रह हजार स्त्रियां पहुंचती थीं, वहां सात दिन के उपवास के कारण एक लाख स्त्रियां इकट्ठी होने लगी हैं कि यह आदमी असली साधु है!

स्त्रियां भी यही सोचती हैं कि जो उनके छूने से अपवित्र हो जाए वह असली साधु है। हमने उनको समझाया हुआ है। नहीं तो वहां एक स्त्री नहीं जानी थी फिर; क्योंकि स्त्री के लिए भारी अपमान की बात है। लेकिन अपमान का खयाल ही मिट गया है। लंबी गुलामी अपमान के खयाल मिटा देती है। लाख स्त्रियां वहां

इकट्ठी हो गई हैं! सारी बंबई में यही चर्चा है कि यह आदमी है असली साधु! स्त्री के छूने से अपवित्र हो गया, सात दिन का उपवास कर रहा है!

उन महाराज से किसी को पूछना चाहिए, पैदा किससे हुए थे? हड्डी-मांस-मज्जा किससे बना था? वह सब स्त्री से लेकर आ गए हैं। और अब अपवित्र होते हैं स्त्री के छूने से! हद्द कमजोर साधुता है, जो स्त्री के छूने से अपवित्र हो जाती है!

लेकिन इन्हीं सारे लोगों की लंबी परंपरा ने स्त्री को दीन-हीन और नीचा बनाया है। और मजा यह है--मजा यह है कि यह जो दीन-हीनता की लंबी परंपरा है, इस परंपरा को स्त्रियां ही पूरी तरह बल देने में अग्रणी हैं! कभी के मंदिर मिट जाएं और कभी के गिरजे समाप्त हो जाएं--स्त्रियां ही पालन-पोषण कर रही हैं मंदिरों, गिरजों, साधु, संतों-महंतों का। चार स्त्रियां दिखाई पड़ेंगी एक साधु के पास, तब कहीं एक पुरुष दिखाई पड़ेगा। वह पुरुष भी अपनी पत्नी के पीछे बेचारा चला आया हुआ होगा।

तो तीसरी बात मैं आपसे यह कहना चाहता हूंः जब तक हम स्त्री-पुरुष के बीच के ये अपमानजनक फासले, ये अपमानजनक दूरियां--कि छूने से कोई अपवित्र हो जाए--नहीं तोड़ देते हैं, तब तक शायद हम स्त्री को समान हक भी नहीं दे सकते।

को-एजुकेशन शुरू हुई है। सैकड़ों विश्वविद्यालय, महाविद्यालय को-एजुकेशन दे रहे हैं। लड़कियां और लड़के साथ पढ़ रहे हैं। लेकिन बड़ी अजीब सी हालत दिखाई पड़ती है। लड़के एक तरफ बैठे हुए हैं, लड़कियां दूसरी तरफ बैठी हुई हैं, बीच में पुलिसवाले की तरह प्रोफेसर खड़ा हुआ है! यह कोई मतलब है? यह कितना अशोभन है, अनकल्चर्ड है!

को-एजुकेशन का एक ही मतलब हो सकता है कि कालेज या विश्वविद्यालय स्त्री-पुरुष में कोई फर्क नहीं करता। को-एजुकेशन का एक ही मतलब हो सकता है कि कालेज की दृष्टि में सेक्स डिफरेंसेस का कोई सवाल नहीं है। जो लड़की जहां आए...

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आ जाएं अलग से तो जरा बात हो सके। और यहां से तो नंबर हैं आप, आवाज भी करेंगे तो मैं नहीं समझ पाता कौन आवाज कर रहा है। अकेले आ जाएं तो थोड़ा मजा हो। आप आवाज करें, मैं सुनूं।

आखिरी बात, और अपनी चर्चा मैं पूरी कर दूंगा।

एक बात आखिरी, और वह यह कि अगर एक बेहतर दुनिया बनानी हो तो स्त्री-पुरुष के समस्त फासले गिरा देने हैं। भिन्नता बचेगी, लेकिन समान तल पर दोनों को खड़ा कर देना है। और ऐसा इंतजाम करना है कि स्त्री को स्त्री होने की कांशसनेस और पुरुष को पुरुष होने की कांशसनेस चौबीस घंटे न घेरे रहे। यह पता भी नहीं चलना चाहिए। यह चौबीस घंटे खयाल भी नहीं होना चाहिए।

अभी तो हम इतने लोग यहां बैठे हैं। एक स्त्री आए तो सारे लोगों को खयाल हो जाता है--स्त्री आ गई! स्त्री को भी पूरा खयाल है कि पुरुष यहां बैठे हुए हैं। यह अशिष्टता है, अनकल्चर्डनेस है, असंस्कृति है, असभ्यता है। यह बोध नहीं होना चाहिए। ये बोध गिरने चाहिए। अगर ये गिर सकें तो हम एक अच्छे समाज का निर्माण कर सकते हैं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।